भूदानी सोनिया

उदयराज सिंह

प्रस्तावना
श्री जयप्रकाश नारायण

अशोक प्रेस
पटना—६

इस पुस्तक से प्राप्त कुल आय
भूदान-यज्ञ को समर्पित है।

मूल्य : चार रुपए
मुद्रक : अशोक प्रेस, पटना ६
प्रथम संस्करण : २०००
नवम्बर १९५७

भूदान-यज्ञ के पुनीत हवन में

निष्ठा की लौ जगाये

सभी

श्रद्धालु होताओं को

प्रस्तावना

अंग्रेजी का एक मुहावरा है, 'चिप ऑफ दी ओल्ड ब्लॉक'। इस पुस्तक को पढ़ते समय इस मुहावरे की बार-बार याद आई। श्री उदयराज सिंह को अपने ख्यातनामा पिता से साहित्यकारिता वरासत में मिली है, यह तो स्पष्ट ही है। राजा राधिकारमण सिंह हिन्दी के उच्चतम कोटि के उपन्यासकार हैं। उनकी शैली में जो रवानी है वह अन्य लेखकों में कम पाई जाती है। श्री उदयराज सिंह की शैली में भी गतिशीलता है और कहीं-कहीं तो भाषा फड़क उठी है।

'भूदानी सोनिया' में सन् '४२ की क्रांति की कहानी है और स्वराज्य के बाद किस प्रकार से देश का राजनीतिक [illegible] बदला, सेवा का व्रत छोड़कर सत्ता की दौड़ कैसे शुरू हुई, नेता जनता से दूर कैसे पड़ गए, किस प्रकार देश में निराशा का अंधेरा छाया और उस अंधेरे में कैसे एक नई ज्योति जगी—भूदान की—यह सब चित्रण किया गया है। सन् '४२ और उसके बाद की घटनाओं से पुस्तक का तीन चौथाई भाग भर गया है और अन्त में एक छोटा-सा हिस्सा भूदान के सम्बन्ध में है। पुस्तक के नाम की दृष्टि से इसमें सन्तुलन की कुछ कमी दीखती है। जब भूदान आरोहण के सातवें वर्ष में यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है तब अच्छा होता कि उसके

क्रमिक विकास का भी थोड़ा चित्रण इसमें होता। फिर भी लेखक ने सफलतापूर्वक यह दिखाया है कि सन् '४२ की स्वराज्य-क्रांति की परिसमाप्ति १५ अगस्त की सफलता में नहीं हो चुकी थी बल्कि उसका सहज विकास भूदान आरोहण में हुआ है। 'भूदानी सोनिया' ने कला के माध्यम से सेवा बनाम सत्ता का प्रश्न मार्मिक ढंग से उठाया है और राष्ट्रजीवन के इस गम्भीर तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि असली उन्नति नैतिक विकास में है न कि आर्थिक समृद्धि में। मैं आशा करता हूँ कि यह उपन्यास पाठकों में जीवन की सत्प्रेरणा पैदा करेगा और विशेष करके राजनीतिक जगत् के सभी नवीन बाबुओं को ठिठक के सोचने को बाध्य करेगा।

नवयुवक लेखक को मेरी हार्दिक बधाई।

पटना
१५-१०-५७ }

—जयप्रकाश नारायण

अपनी बात



'नवतारा', 'अधूरी नारी' और 'रोहिणी' के बाद श्री उदयराज सिंह की यह नई पुस्तक 'भूदानी सोनिया' पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह प्रसन्नता इस बात से और बढ़ जाती है कि यह उपन्यास एक ऐसे पुनीत यज्ञ के आकर्षण से उभरा है, जो हमारे देश के राजनीतिक एवं आर्थिक आन्दोलन को आध्यात्मिक आरोहण की निष्ठा दे रहा है और जिसकी ओर आज सारी दुनिया की आँखें अपलक लगी हुई हैं।

आदरणीय श्री जयप्रकाश नारायण जी ने अपने शरीर की अस्वस्थता और कार्यक्रम की व्यस्तता के बीच भी जिस सुन्दर शैली और आन्तरिक आत्मीयता से लेखक को आशीर्वाद दिया है वह लेखक के लिए तो धरोहर है ही, प्रकाशक के नाते हमारे लिए भी वैसा ही गौरवास्पद है। किन शब्दों में हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर पाएँगे ?

लेखक की इच्छा का आदर कर इस पुस्तक से प्राप्त कुल आय भूदान-यज्ञ को निवेदित है—इस शुभ निश्चय का स्वागत सभी करेंगे—ऐसी हमारी आस्था है।

—प्रकाशक



"आइए-आइए, प्रोफेसर साहब ! पधारिए; बस, आपका ही इन्तजार था; डॉक्टर तो आध घंटे पहले ही पहुँच गया था; नमस्ते, नमस्ते····।"

"नमस्ते भाई नवीन, माफ़ करना, आज क्लास देर से छोड़ा, इसलिए पहुँचने में देर हो गई।····ओ हो ! तो डॉक्टर सतीश भी यहीं हैं ? बधाई डॉक्टर साहब, बधाई है। आज सुबह ही अखबार में पढ़ा कि आपको डी० फिल० की डिग्री मिली है। खूब, बहुत खूब ! भई, आपने तो कमाल कर दिखाया। बड़ी चर्चा हो रही थी आपकी थीसिस की। आज यह भी सुनने में आया कि विदेशी 'जर्नल्स' में टिप्पणियाँ भी प्रकाशित हुई हैं।"—प्रोफेसर गोकुलदास ने कुर्सी पर बैठते-बैठते जैसे एक ही साँस में कह डाला।

"अजी साहब, आपने भी खूब कहा ! इलाहाबाद युनिवर्सिटी से तो हर साल जाने कितने डी० फिल० ढलकर तैयार होते हैं—बस, उन्हीं में से एक अदना-सा मैं भी हूँ। मुझमें कोई सुरखाब का पर तो लग नहीं गया है जो····"—झेंपते हुए डॉक्टर सतीश ने ये बातें कह डालीं।

"नहीं, नहीं, मजाक की बात नहीं। बात यह है कि विज्ञान की दुनिया

को आपने कुछ ऐसी नई दिशा दिखाई है कि सब लोग चकित हैं।"—प्रोफेसर गोकुलदास ने अपने चश्मे को रूमाल से पोंछते हुए कहा।

"जो भी कहिए प्रोफ़ेसर साहब, मैं तो इसे आप स्वजनों के आशीर्वाद का ही फल मानता हूँ। सच पूछें तो मुझमें ऐसी क्षमता ही कहाँ कि....."

"डॉ॰ सतीश, मेरी शुभ कामनाएँ तो तुम्हारे साथ बराबर रही हैं और रहेंगी। मैं तो सदा तुम दोनों की सफलता की कामना करता हूँ"—प्रोफ़ेसर ने जम्हाई लेकर थकावट जाहिर की।

इसी बीच नवीन ने अन्तू खोंचेवाले को आवाज देकर बुला लिया था। अन्तू गर्म तवे पर आलू की पकौड़ियाँ सेंकने लगा और तीन प्याली चाय भी बनाकर तैयार कर लाया।

प्रोफ़ेसर साहब ने फिर छेड़ा—"दिन-भर की थकान के बाद इस समय अन्तू की यह चाय और गर्म-गर्म पकौड़ियाँ सचमुच बड़ी प्यारी लगती हैं।"

"प्रोफ़ेसर साहब, दो-एक दही-बड़े लें और मटर की घुघुनी भी—" नवीन ने चाय का एक 'सिप्' लेते हुए कहा।

"दही-बड़े तो नहीं, हाँ, दो चम्मच घुघुनी दे दो....और भई, डॉक्टर का मुँह भी तो मीठा करो। खिलाओ इन्हें रसगुल्ले—रस-भरे, मीठे।—" प्रो॰ साहब ने कहा।

"अन्तू! फिर चलाओ दो-दो रसगुल्ले हर प्लेट में।"—नवीन ने बड़े तपाक से कहा।

"नहीं-नहीं, मुझे नहीं, तुम दोनों।"

"वाह प्रोफेसर साहब, सबसे पहले आप मुँह मीठा करें, फिर नवीन और तब मैं।"—डॉ॰ सतीश ने हँसते हुए कहा।

उधर इशारा पाते ही अन्तू ने तीनों प्लेट में दो-दो रसगुल्ले गिरा दिये। बड़े जोरों का कहकहा लगा और दूसरा दौर चाय का फिर चला। कुछ क्षण सन्नाटा रहा, फिर प्रोफेसर ने मौन भंग किया—"नवीन, अभी तुम अपना कमरा पूरे तौर पर ठीक नहीं कर पाए हो। इस साल तो तुम्हें काफी बड़ा कमरा मिल गया।"

"साहब, गर्मी की लम्बी छुट्टियों के बाद सोमवार को ही तो इलाहाबाद युनिवर्सिटी खुली है और आज बृहस्पतिवार है। एक दिन तो कमरे को एलौट कराने में ही बरबाद हो गया। देखिए न, मैं एम० ए० फाइनल का छात्र और मुझे कमरा मिला छोटा; बस, मैं लड़ पड़ा और ठान लिया कि पोर्टिको में पड़ा रहूँगा। फिर क्या, मेरी जीत हुई। बड़ा कमरा मिल गया। कल ही तो इसमें सामान लाया हूँ।"

"नवीन! कुछ भी कहो, सर पी० सी० बनर्जी हॉस्टल के कमरे तो काफी बड़े होते ही हैं। जरा 'म्योर' में तो जाओ। कमरे क्या हैं, कबूतर के दरबे हैं।"—प्रोफेसर ने डॉक्टर की ओर आँख मटकाते हुए कहा।

"देखिये साहब, मेरे हॉस्टल की शिकायत नहीं होनी चाहिये। वहाँ स्कॉलर्स रहते हैं और यहाँ फिसड्डी! समझे—? जी जनाब!"—डॉ० सतीश ने जैसे उचक कर कहा।

फिर तीनों हँस पड़े।

चाय के बाद नवीन ने कैप्सटन का डिब्बा खोल दिया तो सतीश ने उज्र किया—"म्याँ, क्या टकाही चीज़ लाकर मेज पर रख देते हो! लो यह तम्बाकू और सिगरेट के कागज। मैं कागज में तम्बाकू भरकर रोल बना

देता हूँ और अपने-अपने होंठों से एक-एक चिपकाकर तुम और प्रोफेसर साहब देखें तो—क्या मज़ा देता है!"

"ओ! माफ़ करना यार, अब तुम डॉक्टर जो ठहरे! नई डिग्री और नया शौक! हाई स्कूल पास किया तो पान शुरू किया, आई० ए० के बाद तम्बाकू तालू तले आ बैठा, ग्रैजुएट होते ही सिगरेट, एम० ए० पास करते ही चुरुट और फिर आज डॉक्टरेट पाते ही यह रोल सिगरेट। तरक्की कायम है तुम्हारी। ज़िन्दा रहो बेटा!"—नवीन ने उसकी पीठ थपथपा कर दाद दी।

प्रोफेसर ने भी मुस्कुराते हुए कहा—"ज़िन्दा रहो भई, लाओ, आज यही सही। मगर यार, इसे जलाते-जलाते तो जी आफत में रहता है। हाँ, तुम्हारे लिये तो यह ब्रेक है बेशक। कम पिओगे, कम पैसे बरबाद होंगे।"

सिगरेट का कश लेते ही कमरे में एक गम्भीर वातावरण छा गया और उस गम्भीरता को सिगरेट के धुएँ ने और भी घना कर दिया। तीनों कुछ देर धुएँ की दीवार में छिपकर अपने-आप में खो गये। फिर नवीन ने कहना आरम्भ किया—"प्रो० साहब! क्रिप्स मिशन की धज्जियाँ उड़ गईं। अब आगे देखिये क्या होता है, क्या जाता है।"

"हाँ भई, देश का वातावरण तो कुछ गम्भीर हुआ जा रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी बिगड़ी हुई है, बिगड़ती ही जा रही है। फिर जापानी बर्मा में बढ़ते चले आ रहे हैं और हम यहाँ हाथ पर हाथ रखे चुप बैठे हैं। जनता हमारे नेताओं के साथ है और ब्रिटिश सरकार के सर पर बस, अपनी ही धुन सवार है। जब तक लड़ाई है वह किसी तरह भी राष्ट्रीय सरकार बनने न देगी।....तो क्या हम अपने देश की बर्बादी यों ही चुप देखते रहेंगे? ऐसे गिर गए हैं हम? खैर, ऑल-इण्डिया-कॉंग्रेस-कमिटी की

बैठक अगले माह बम्बई में होने जा रही है, देखें हमें क्या हुक्म होता है। जी उठ-उठ कर बैठ जाता है नवीन !····उफ····।"

प्रो० साहब अपने अन्दर किसी उमड़न को, किसी तैश को दबाने की चेष्टा करने लगे।

"अजी साहब, सच मानिए, मेरा तो आज-कल सोना हराम है। रगों में बराबर खून दौड़ता रहता है। अब यदि कुछ न होगा तो मेरी नसें फूल कर फट जायेंगी। इतना 'टेन्शन' है प्रो० साहब !"

"························"

"गाँधीजी कभी-कभी जाने क्या कर बैठते हैं, कुछ समझ में नहीं आता। चौरी-चौरा का काण्ड तो आपको याद ही होगा। मैं तो उस समय गोद का बच्चा था। कहाँ आज़ादी के दीवाने जवानों के जोश की तेज रफ्तार, कहाँ लगा दी एकाएक ब्रेक। उधर टेन्शन और इधर पस्ती। सारा देश तिलमिला कर रह गया। फिर नमक-सत्याग्रह के समय बेमौके ब्रेक लगा दी; और आज जब देश पागल हो रहा है, अँग्रेजों को धताने का सबसे अच्छा मौक़ा आ गया है तो अभी भी आप ब्रेक से पैर हटाते ही नहीं। हाँ, इंजन गर्म हो रहा है—गर्म; अब देखिए, ज्वालामुखी फूटेगी—अगर अँग्रेज खुशी-खुशी हमारी माँगें पूरी न करेंगे तो अपना हक़ हम लड़ के लेंगे, ले के रहेंगे।"

"पागल न बनो नवीन, गाँधीजी देश के थरमामीटर हैं। उनका भी पारा चढ़ रहा है। उनके अन्तर की आवाज़ सारे देश की पुकार बनकर देश ही नहीं, सारी दुनिया में ज़मीन-आसमान के बीच गूँजना ही चाहती है। भाई, धीरज धरो, कप्तान की चाल और कमांड पर प्रश्न नहीं उठाते और

फिर गाँधीजी ऐसे कप्तान, जिनकी वाणी कभी-कभी कबीर-जैसी अटपटी जान पड़ती है, बिल्कुल निराली।"

"प्रो० साहब, धीरज तो रखता ही आ रहा हूँ, मगर अब रहा नहीं जाता। भाई की जीवात्मा मुझे सदा धिक्कारती रहती है। लगता है वह मुझे पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मैं तो अँग्रेजों के जेल में सड़-सड़ कर मर गया और तू आराम से पड़ा-पड़ा सुख-भोग के सपने सँजोता रहता है। आज तक भी तूने उनसे बदला नहीं लिया! जुलूस में उनका गोली खाना, फिर खून के फव्वारे, अस्पताल में उनके साथ वह बेरहमी का वर्ताव, फिर जेल में सड़ना और मर जाना—यह सब क्या भूल जाने की बात है? हैमलेट के पिता की तरह उनकी जीवात्मा की तीखी फिटकार मुझे बेचैन किये रहती है। मैं चिल्ला-चिल्ला कर कहता—बदला लूँगा, लूँगा बदला, जरूर लूँगा। अशान्त न हो, शान्त रहो, धैर्य रखो। तब कहीं उसकी तड़प शान्त होती, मैं नींद में खो जाता। सुबह उठता तो अपने नौकर से पूछता—"बड़ी लम्बी छुट्टी बिताकर घर से लौटे हो, खूब मजे में रहे न? नई घरवाली की याद तो तुम्हें अभी बहुत सताती होगी।" तो वह आँखों में आँसू भर लेता, कहता—"बाबू, गाँवों की हालत बड़ी दयनीय है। मेरे यहाँ आबपाशी का कोई इन्तजाम नहीं और इस साल मेरे इलाके में पूरा पानी नहीं बरसा। फसल सारी मारी गई। लगान न चुका सका, इसलिये खेत भी महाजन के हाथों रेहन करना पड़ा। इतना ही नहीं बाबू, जेठ में शीतला का प्रकोप हुआ और इसी साल फागुन में ब्याही मेरी नई जोरू उस आग में स्वाहा हो गई। माँ कहती थी कि उसके पेट में बच्चा भी था। दोनों चले गये बाबू, दोनों।" उसकी आँखें भर आतीं, जबान बन्द हो जाती। यह तो हाल है हमारे हर गाँव का, सारे देश का।

चारों ओर गरीबी, चारों ओर हाहाकार। जब तक यह देश आज़ाद नहीं होता, हुकूमत की बागडोर हमारे हाथों नहीं आती, तबतक न हमारा कल्याण होगा और न निस्तार। देश को आज़ाद कर हमें गरीबी दूर करनी होगी, नहीं तो हम पिट जायेंगे, मिट जायेंगे—समझे प्रो० साहब, आज़ादी चाहिये हमें, पहले आज़ादी फिर गरीबी की बिदाई। मगर हाँ, आज़ादी तो ऐसे मिलती नहीं, हासिल करनी होती है, हासिल करनी होगी; जालिम फिरंगियों के पंजों से छुड़ाना होगा, छीनना होगा उसे—छीनना...."

और नवीन ने तैश में आकर मेज़ पर वह जोर से मुक्का जमाया कि प्यालियाँ थर्रा कर नीचे आने पर आईं और बची हुई चाय मेज पर गिर गई।

"देखो-देखो, बेजान प्यालियों पर वार न करो। आखिर इतने तैश में न आओ। देखो, ऑल-इण्डिया-काँग्रेस कमिटी का एलान होने ही वाला है। उसके बाद तो रास्ता साफ़ हो जायगा; फिर अपना रास्ता चुन लेना बेखटके, चल देना बेरोक, अब शायद ज्यादा इन्तजार न करना पड़े। क्रान्ति अब टाले न टलेगी। गाँधीजी को झंडा उठाना ही पड़ेगा।"—नवीन के उतावलेपन पर हँसते हुए सतीश ने कहा।

"देखो सतीश, आज़ादी की लड़ाई के बाद ही तुम्हें विलायत पढ़ने जाना होगा। इस आहुति में यदि तुम साथ न दोगे तो देश तुम्हें कभी भी माफ़ न करेगा। तुम जैसे वैज्ञानिकों की, जंगे-आज़ादी में बहुत ज़रूरत है। समझे?—"

"अम्याँ यार, अभी पैसे कहाँ हैं कि विलायत जाऊँ? पहले किसी की जेब कतरूँ तब तो सात समुन्दर पार जाने का सपना देखूँ! और आजकल वहाँ विद्यालयों में प्रवेश पाना भी तो कोई आसान काम नहीं। फिर मेरा-

तुम्हारा साथ भी तो बराबर रहा है तो आज कैसे छूटेगा ?"—सतीश ने बुझे हुए सिगरेट को फिर से जलाया।

"हुँ, हुँ, जो इस संग्राम में गद्दारी करेगा वह नरक का भागी बनेगा, तीनों लोक में उसके लिये कोई भी जगह नहीं। मगर ऐसा भी गिरा कोई क्या होगा ? मैं तो कहता हूँ, हर कोई साथ देगा, देकर रहेगा—हुँ—हुँ—"

तैश में आकर प्रो० साहब ने सिगरेट फेंक दिया और कुछ बड़बड़ाते हुए कुर्सी पर झूमने लगे। वह चुप हो गये मगर उनका गर्व से भरा प्रशस्त ललाट, चमकती हुई बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बे कान, हिलते हुए होंठ और फड़कते हुए बाजू कुछ देर तक बोलते रहे—बोलते रहे—"वह इन्सान नहीं जो आज हमारा साथ न देगा—हाँ—हाँ—हाँ...."

और सुनाई न पड़नेवाली यह आवाज़ दीवारों से टकरा-टकरा कर और भी गूँज उठी और उनकी हृत्तंत्री को छूकर झकझोरने लगी।

जन्म लेने के पहले ही नवीन अपने पिता को खो बैठा था। माँ भी उसे इस धरती पर गिरा कर चल बसीं। बड़े भाई और उसकी उम्र में काफ़ी अन्तर था। अतः उसकी भाभी ही उसकी माँ बनीं। आज भी वह अपनी भाभी को 'माँजी' कहकर पुकारता है।

बड़े भाई के जीवन की छाप उस पर बहुत पड़ी। नवीन के बड़े भाई पक्के देशसेवक थे। वे सन् २१ के असहयोग और ३० के सत्याग्रह आन्दोलनों में जेल जा चुके थे। किसानों के एक जुलूस की सदारत करते उन्हें एक बार गोली खानी पड़ी और जेल भी जाना पड़ा। घाव की वेदना और जेल की यातना ने उनके शरीर को जर्जर कर दिया और आखिर वहीं उनकी क़ुर्बानी हो गई; वे शहीद हो गये। इतना ही नहीं, इस काण्ड के बाद उनकी ज़मीन-जायदाद भी सरकार द्वारा जब्त कर ली गई।

पति और सम्पत्ति दोनों को खोकर उनकी पत्नी अनाथ हो गईं। वह कहाँ जायँ, क्या करें? आखिर बालक नवीन को लेकर शहर चली आईं। पढ़ी-लिखी थीं ही, एक महिला-विद्यालय में अध्यापिका हो गईं। उन दिनों

ग्रैजुयेट महिलाओं की बड़ी कमी थी। अतएव उन्हें महिला-विद्यालय में नौकरी प्राप्त करने में ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ी।

आँखों का नीर आँखों में ही सुखाकर तथा दिल को फौलाद बनाकर वह वहीं, समय के साथ चलती हुई, बालक नवीन की शिक्षा-दीक्षा एवं भरण-पोषण का सारा खर्च अपने ऊपर उठाये रहीं। आज का छः फुट लम्बा, उन्नत ललाटवाला, सुफेद चिट्टा जवान नवीन अपनी भाभी की ही देन है इस बड़े राष्ट्र को। अपने पितातुल्य भाई की वीर-गाथा बचपन में वह अपनी भाभी से बड़े चाव से सुनता रहा और उसी समय से देशभक्ति का बीज उसके हृदय में आकर जम गया जो आज प्रस्फुटित हो रहा है।

ग्रैजुयेट होने के बाद भी वह नौकरी खोजने की ओर न मुड़ा अपितु सर ऊँचा किए तथा नथुने फुलाये वह अक्सर देश की उलझी गुत्थियों को सुलझाने में बेचैन नज़र आता। एम० ए० प्रीवियस पास करने के बाद तो वह और भी उतावला हो उठा और ऐसा जान पड़ने लगा कि वह जल्द ही पढ़ना छोड़कर देश-सेवा का बाना पहिन लेगा। युनिवर्सिटी में आने पर ही उसे सतीश से मित्रता हुई। सतीश था तो उससे कई साल सीनियर, मगर दोनों की आर्थिक दशा कुछ ऐसी समान दयनीय रही कि दोनों जल्द ही एक दूसरे के समीप खिंच कर चले आये। हाँ, उधर नवीन की भाभी प्रेम और कोमलता की जीवित प्रतिमा थीं तो इधर सतीश की भाभी ईर्षा और द्वेष की घृणित मूर्त्ति। दोनों ही नारी, मगर दोनों की चाह अलग, राह अलग। सतीश भी नवीन ही की तरह जन्म का अनाथ था। माँ-बाप छुटपन में ही चल बसे थे। बड़े भाई की देख-रेख में वह सयाना हुआ मगर भाभी आईं तो उसे अपनी जायदाद का पट्टीदार समझकर उसे घृणा की दृष्टि से देखने

लगीं। यहाँ तक कि जी-जान से कोशिश में लग गईं कि किसी हीले उसे कहीं दूर हटा दें। पहले तो उन्होंने पति को चट्टान के सदृश अटल पाया मगर कुछ साल बाद उनकी जादूगरी कुछ इस तरह चल निकली कि वह बालू की भीत की तरह धराशायी हो गये—'का नहिं अबला करि सके!' फिर तो सतीश कालिज में पढ़नेवाले अन्य विद्यार्थियों के साथ इलाहाबाद भेज दिया गया और घर से जो एक नियत रक़म मिलती उसी पर उसे अपना गुज़र करना पड़ता।

ईश्वर की देन ही समझिए, बुद्धि उसकी कुछ ऐसी पैनी थी कि वह सदा परीक्षाओं में सर्वप्रथम आता रहा और हर साल उसे वजीफ़ा भी मिलता रहा। ऊँची कक्षा में जब वह आया तो उसने प्राइवेट ट्यूशन भी शुरू किया और आजकल तो वह तीन-चार सौ रुपये प्राइवेट ट्यूशन से ही कमा लेता है। अब तो वह सदा सूट ही डाटे रहता है और बुज़ुर्गी की शान में अँग्रेजी चुरुट पीता रहता है। घर से आना-जाना बहुत ही कम है। छठे-छमाहे कभी पर्व-त्योहार के दिन चला गया तो चला गया, नहीं तो कटरा का एक लॉज ही उसका घर है, उसकी गृहस्थी का प्रतीक। उसके जीवन का आज एक ही लक्ष्य है—वैज्ञानिक अनुसन्धान; प्रतिदिन, रातदिन।

सुबह आठ बजते वह 'लैब' चला जाता, दो पहर में वहीं खाना मँगा लेता, चाय भी वहीं पीता और बेर डूबते-डूबते लॉज को लौटता। फिर नवीन के साथ सिनेमा और कॉफी-हाउस की चहलपहल चलती और रात गये वापस आता। कभी प्रो० गोकुलदास के यहाँ वार्त्तालाप जम गया तो रात का खाना वहीं हो जाता।

प्रोफेसर गोकुलदास राजनीति के लेक्चरर हैं। नमक-सत्याग्रह के बाद

जब वह दुबारा जेल से निकले तो घर की स्थिति कुछ इतनी गिर चुकी थी कि आइन्दा राजनीति में सक्रिय भाग लेना उनके लिए मुश्किल हो उठा। जी तो चाहता था कि गाँवों में घूम-घूमकर किसानों की सेवा करते रहें मगर दो-दो बेटियों के वर ढूँढ़ने तथा उनकी शादी की चिन्ता ने उन्हें बूढ़ा बना दिया। वह राजनीति से दूर घर की झंझट में फँस गये। खेती-बारी में भी कोई दम नहीं। अतः उन्हें नौकरी की शरण लेनी पड़ी।

पहले हेडमास्टरी, फिर ट्रेनिंग कालिज की पढ़ाई और तब प्रोफेसरी। डॉ० सतीश तथा नवीन से तो उन्हें दोस्ती तब हुई जब वे दोनों कुछ साल पहले प्रोफेसर के साथ पुराने कटरे के एक लॉज में रहते थे।

प्रोफेसर साहब का जीवन गहरे अध्ययन तथा संसार के तीते-मीठे अनुभवों से कुछ इतना निखर गया था कि जो-जो उनके समीप आया उनका होकर रहा। उस प्रतिभाशाली व्यक्ति के प्रभाव से सतीश और नवीन भी वंचित न रह सके और पीछे तो वे उनके इतने आत्मीय हो गये कि हर बड़े सवाल का जवाब वे उन्हीं से माँगते।

आज जब वे तीनों पर्ल बक का 'गुड अर्थ' (Good Earth) देखकर सिटी रोड से हॉस्टल की ओर लौट रहे थे तो नवीन ने सायकिल पर गम्भीर होकर कहा—"प्रोफेसर साहब! अँग्रेजों से खिलाफत करने की मेरी प्रवृत्ति कुछ इस कदर जोर पकड़ रही है कि मुझे भय है कि मैं किसी भी दिन Defence of India Act की धार में पकड़ न जाऊँ। मैं तो समझ नहीं पाता कि मेरा यह कदम सही है या गलत। अभी पढ़ाई खत्म भी नहीं हुई, फिर इसी 'स्टेज' पर अपनी पढ़ाई छोड़ दूँ तो माँजी को कितना दुख होगा! मुझी पर उनके जीवन का सपना जिन्दा है।........"

"नवीन, जहाँ देश की आज़ादी का सवाल खड़ा हो वहाँ घर की माँ के आँसू भूलने ही होंगे। राष्ट्र के आगे तुम्हारी क्या मर्यादा ? सुनी थी तुमने उस दिन पुरुषोत्तमदास पार्क में मौलाना की तक़रीर ? जिस दिन देश की पुकार होगी कॉलिज के हर विद्यार्थी को अपना जौहर दिखाना होगा। आज तुम्हारे अन्दर यह कमज़ोरी कैसी ?"

"नहीं-नहीं, यों ही मैं सोचने लगता हूँ कि आज मैं आज़ादी की लड़ाई में कहीं कूद पड़ूँ तो फिर मेरा यह कदम ठीक होगा या नहीं, मगर उस दिन की आज़ाद साहब की तक़रीर कुछ ऐसी रही कि रास्ता साफ़-साफ़ दिखाई पड़ने लगा है। दूसरा कोई चारा है भी तो नहीं।—"

"मैं तुम्हारी भावनाओं का प्रशंसक हूँ। जंगे-आज़ादी में यही जोश होना चाहिये।"

गोकुलदास इतना कहते-कहते युनिवर्सिटी के अहाते के समीप पहुँच गये। म्योर कॉलिज के अहाते में घुसते ही डॉ० सतीश ने कहा—"प्रोफेसर साहब, बात तो आप सही फरमाते हैं मगर अहिंसा को अस्त्र मानकर तो कोई भी लड़ाई चल न सकेगी। हम जीत न सकेंगे। आपको क्या पता नहीं, आज वैज्ञानिकों ने लड़ाई के जाने कितने विध्वंसक अस्त्र बना रखे हैं ? फिर उनकी शक्ति के खिलाफ हमारी क्या बिसात ? आप लोग चट्टान से सर टकराते हैं। आप हार के फन्दे में फँस चुके हैं।"

"खैर, इसे तो समय बतायेगा। इस तलवार और आत्मबल की लड़ाई में कौन विजयी होगा—राम जाने !"

कहते-कहते प्रोफेसर साहब की मुद्रा गम्भीर हो गई। म्योर हॉस्टल पहुँच चुका था। डॉक्टर उनसे विदा ले दाईं ओर मुड़े। वे दोनों आगे बढ़ गए।

खट्-खट्-खट् !

"ओ आज़ादी के दीवाने ! ज़रा आँखें तो खोलो ···· "

चुप । कोई जवाब नहीं । जोर से—खट्—खट्—खट् ।

"एँ क्या है ?·······अभी सबेरा नहीं हुआ—आज इस समय···· कौन है ?"—नवीन टेबिल फैन को बन्द करते हुए सोये-सोये चिल्लाया ।

"ओ, उठो नवीन, सबेरा हो गया, सबेरा—"

"अरे, डॉक्टर ?····अभी आया—"

नवीन चौंक कर उठ बैठा और एक छलांग में सिटकिनी खोलकर आँख मलते हुए बड़े कौतूहल से पूछा—"क्या बात है डॉक्टर ?"

"लो यह आज का अखबार ! बापू गिरफ्तार और साथ-ही-साथ कार्यकारिणी कमिटी के सारे सदस्य भी ।—" डॉक्टर ने उसके हाथ में अखबार थमा दिया ।

नवीन को जैसे बिजली छू गई । रोम-रोम में सिहरन, ललाट पर पसीने की बूँदें, कंठ बन्द और शरीर झन्‌झन् । उसे मानों जाड़ा हो आया । फिर

आँखें अखबार पर गईं—बापू का वही हँसता हुआ फोटो। आँखें भर आईं। अक्षर आँसू में खोने लग गये। वह कुर्सी पर बैठ गया तो डॉक्टर ने सिगरेट का कश लेते हुए पूछा—"क्यों भई, कितनी 'सेन्सेशनल' खबर है! बधाई दो मुझे—।"

"बधाई! सचमुच आज सबेरा हो गया। हाँ, ऐसी आशंका तो थी ही। यह कोई अनहोनी नहीं। बस, चलो, अब हम भी कूद पड़ें। अब हिचक कैसी—सोचना क्या? अब तो रास्ता साफ़-साफ़ दीखने लगा। अब सर पी० सी० बनर्जी हॉस्टल, इलाहाबाद युनिवर्सिटी से विदाई है—विदाई। अब तो हमारे सर पर कफ़न होगा, हाथ में तिरंगा झंडा और घर-घर से होगी पुकार—"अँग्रेजो, भारत छोड़ दो!"

नवीन कुर्सी पर से उछल पड़ा—"डॉक्टर, कमर कस लो, फिर ऐसा मौका हाथ न आयेगा। देश-सेवा के लिए इससे बढ़कर अवसर फिर कभी आने का नहीं।"

"शान्त हो नवीन, शान्त! जाओ, मंजन-ब्रश कर आओ; फिर प्रोफेसर साहब के यहाँ चलेंगे। पौ फटने दो, देखो क्या गुल खिलता है फिर—!"

"पौ फट गयी डॉक्टर! देखते नहीं, पूरब से लाल चक्का निकला चला आ रहा है। इसकी ज्योति में जागरण का सन्देश है और उषा की लाली देश के तरुणों से लाली माँगने के लिये कर बढ़ा रही है। दोगे न उसे लाली, डॉक्टर, बोलो—दोगे न लाली····लाली—?"—नवीन आनन्दविभोर हो उठा। डॉ० सतीश नवीन के चेहरे पर भावनाओं की लहरियों का टकराना देखकर चकित हो रहे हैं।

पुराने सत्याग्रही होने के नाते प्रोफेसर गोकुलदास का नाम पुलिस के

रजिस्टर में पहिले से ही दर्ज था। गिरफ्तारियाँ शुरू होते ही उनके नाम भी वारंट कटा। नवीन और सतीश के पहुँचते-पहुँचते पुलिस-वान उनके दरवाजे पर आकर लग गई। प्रो० साहब नहा-धोकर पूरे तैयार होकर जब बाहर बरामदे में आये तो टोले-मुहल्ले के लोगों के हाथों में फूलों की माला देखकर हँसते हुए बोले—"इस पुनीत अवसर पर आपकी शुभकामनायें मुझे बल देंगी। धन्यवाद !"

सतीश और नवीन दोनों ने इस घटना को अनहोनी समझा। वे जानने को उत्सुक थे कि आखिर ऐसा हुआ कैसे ? जाते-जाते प्रो० साहब ने मुड़कर दोनों को छाती से लगा लिया। नवीन की आँखों में आँसू भर आए और सतीश—चुप, बेजान ! फिर प्रो० साहब ने ललकारते हुए कहा—"एँ, आज फिर यह कमजोरी ! छाती कड़ी करो; आगे बढ़ो !"

"जो आज्ञा—" नवीन ने सर झुका लिया।

"इस सरकार से असहयोग करो—यह सरकार नासमझ है। गाँधी जैसे अपने सच्चे बन्धु को इसने जेल के सीखचों में बन्द कर दिया। भला इससे बढ़कर भी कोई और बेवकूफी हो सकती है ? नवीन, दृढ़ बनो। मैं तो बदकिस्मत हूँ कि जेल जा रहा हूँ, तुम तो सचमुच भाग्यवान् हो कि बाहर हो। जाओ, राष्ट्र की सेवा करो। भगवान् ने जब सृष्टि की तो मनुष्य के सामने सेवा का इतना विशाल क्षेत्र खोल दिया कि यदि वह चाहे तो उसी बल पर धन्य-धन्य हो जाय। फिर त्याग का क्या कहना ! वह तो तुम्हारे माथे का तिलक बन सकता है। मगर याद रहे, अहिंसा ही तुम्हारा अस्त्र हो, सत्य ही उसकी आधार-शिला, और 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को सफल बनाने का भार आज उन पर है जो बाहर हैं। जाओ, आगे बढ़ो—आगे।"

एस० पी० ने फिर याद दिलाई और प्रो० साहब सबसे विदा हो गाड़ी में सवार हो गये। उनकी जय-जय के नारे से मकान गूँज उठा। वान का दरवाजा बन्द हो गया। गाड़ी बौखलाती निकल भागी। नवीन और डॉक्टर जल्द ही हॉस्टल लौट आये। दोनों ने रास्ते में एक भी बात नहीं की; बस, बढ़े जा रहे थे—बढ़े जा रहे थे।

युनियन हॉल में सार्वजनिक सभा होगी दस बजे दिन में—इसकी खबर नवीन को हॉस्टल लौटते ही हो गई। वह झट तौलिया और साबुन लेकर 'बाथरूम' की ओर लपका और डॉक्टर भी तैयार होकर जल्द ही लौट आने के ख्याल से सीधे म्योर हॉस्टल चला गया। नवीन बेचैन था। जेल जाने के समय गाँधीजी ने देश को क्या संदेश दिया, इसकी खबर उसे नहीं मिल रही थी। देश क्या करे, ऑल इण्डिया-काँग्रेस-कमिटी के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को किस तरह कार्यान्वित करे?—इसके लिए वह प्रकाश ढूँढ़ रहा था। मगर उसकी एक भी झलक उसे कहीं मिल नहीं रही थी। इसी उधेड़-बुन में सभा में जाने के लिये तैयार होकर जब वह नीचे उतरा तो विद्यार्थी-समाज में एक अजीब समाँ देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। कोई कह रहा था कि कचहरी में चलकर आग लगा दो। कोई कह रहा था कि सिविल-लाइन्स में बसे हुए तमाम सफेद सूरतवालों को बम्बई पार पहुँचा दिया जाय और कोई बक रहा था कि अभी चलकर पुलिस-चौकी से राइफलें छीन ली जायँ। वह तरह-तरह की बातें को सुनता युनियन हॉल में पहुँचा।

हॉल ठसाठस भरा था। तिल रखने की भी जगह नहीं थी। कार्यकारिणी समिति के सदस्य होने के नाते उसे मंच पर ही बैठना पड़ा। बड़े जोशीले भाषण हुए। वक्ताओं ने अपने-अपने सुझाव पेश किये और यह तय पाया कि सिविल लाइन्स होते हुए उनका जुलूस पुरुषोत्तमदास पार्क में खत्म होगा और वहीं एक महती सभा होगी जिसमें नेताओं की और प्रोफेसर गोकुलदास की गिरफ्तारी पर सरकार के प्रति रोष जाहिर किया जायेगा।

दुपहरी के बाद एक मील लम्बा जुलूस युनियन के अहाते से निकल पड़ा। आगे-आगे तिरंगे झंडे लिये बालिकायें थीं और उनके बाद विद्यार्थियों की कतार। बीच-बीच में 'अँग्रेजो, भारत छोड़ दो' के नारे बुलन्द होते और राष्ट्रीय गान भी चलते। जूलूस के दोनों किनारे कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे जो विद्यार्थियों को सदा शान्ति से रहने की चेतावनी देते रहते। अलबर्ट रोड होकर जब जुलूस पुरुषोत्तमदास पार्क की ओर बढ़ रहा था तो वहाँ के एँग्लो-इन्डियन परिवारों में आतंक-सा छा गया। सभी औरतें घरों में घुसकर दरवाजे बन्द कर लेती थीं। इलाहाबाद की जनता इस समुदाय को खड़ी होकर एक-टक देख रही थी। चारों ओर स्थिर वातावरण था। कोई समझ नहीं पाता था कि कौन कदम सही होगा।

पुरुषोत्तमदास पार्क में पहुँचते-पहुँचते भीड़ उमड़ पड़ी। कॉलिजों तथा स्कूलों के विद्यार्थियों की जमघट वहाँ पहिले ही से लग चुकी थी। कुछ लोग पेड़ों पर भी चढ़ कर तमाशा देखने लगे। सभा में परचे बँट रहे थे जिनमें छपा था कि जेल जाते समय गाँधीजी ने देश को कुछ यों संदेश भेजा है—
"तारों को काट दो, रेल की पटरियों को उखाड़कर ट्रेन चलना बन्द कर दो, स्कूल-कॉलिज छोड़ दो, अन्तर्राष्ट्रीय लड़ाई से देश का कोई साथ नहीं,

पुलिस को अपने साथ में ले लो और सरकारी इमारतों तथा ऑफिसों में आग लगा दो।" नवीन उस परचे को पढ़ कर गुम था। सभी कहते थे कि गाँधीजी का यह आखिरी सन्देश है—मगर.........।

नवीन माथा खुजलाता हुआ मंच की ओर बढ़ा। सभापति जी अपना प्रस्ताव पेश कर चुके थे और देश की इस बिगड़ी हुई परिस्थिति का डटकर मुकाबला करने को विद्यार्थी-समाज को ललकार रहे थे। दो-चार और वक्ताओं ने उनका समर्थन किया और साँझ होते-होते सभा विसर्जित हुई। कुछ निर्णय नहीं हो सका और आज की बात कल को टली।

नवीन की आँखों को नींद हराम है। सारा हॉस्टल सो रहा है मगर नवीन अपने अन्धेरे कमरे में पलंग पर पड़ा-पड़ा अन्धकार में आलोक ढूँढ़ रहा है। ····गाँधीजी जेल में हैं····नेताओं को भी बन्द कर दिया गया—आज देश का नेतृत्व कौन करे?····फिर हर कोई लीडर है—हर कोई अपने ढंग से सरकार से असहयोग करे। जो जहाँ है—वह वहीं अपने समुदाय की सदारत करे—हम लोग गाँव-गाँव में बिखर जायँ। भारत की आत्मा को जाकर छुएँ, उसे जगायें। मगर भारत एक जिन्दा देश है। उसकी जनता सोई न होगी, वह तो स्वतः जाग पड़ी होगी—फिर हमें उनके बीच रहना चाहिए—उनका साथ देश को चाहिए।···चलो नवीन, गुलगुल बिछौने को छोड़ दो—उन करोड़ों में एक तुम भी बनो····बनो····बनो।

वह कब सोया और कब उठा—उसे नहीं मालूम। हाँ, आज जब उठा तो अपने को बदला हुआ पाया। शान्त पाया, अशान्त नहीं; स्थिर पाया, अस्थिर नहीं; बुद्धि और हृदय में एकता थी, विवेक और भावनाओं में समन्वय रहा। जो कल था वह आज नहीं। जड़ चेतन है, संसार में गति है और

उसमें शान्ति, अपूर्व स्फूर्ति। आज वह झट तैयार हो गया। बाहर निकला तो देखा लड़के मसहरी के डन्टे लिए दौड़ रहे हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि लाठी चार्ज होगी, इसलिए तैयारी हो रही है। वह जोर से हँस पड़ा—गुनाह बेलज्जत!

नीचे पोर्टिको में आया तो देखा कि लड़के चूने के पानी में भिंगो-भिंगो कर अपने तौलिये गीले कर रहे हैं। पूछने पर पता चला कि आज टियरगैस छोड़ा जायगा, इसलिए उससे बचाव का सामान साथ ले जाना जरूरी है।

नवीन क्षणभर रुका, फिर उसने हॉस्टल के लड़कों से बहुत गम्भीर होकर कहा—"आप सब लोग छत पर चलें और तिरंगा फहरा कर पहिले झंडा-अभिवादन करें, फिर जुलूस बनाकर युनियन हॉल में चलें।" लड़कों को यह बात जँच गई। हॉस्टल सुपरिन्टेन्डेन्ट के बिना 'आर्डर' के उनलोगों ने झंडा फहरा दिया। 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' के मधुर गान से सारा वातावरण मुखरित हो उठा। देश-प्रेम की लहर से लड़के पुलकित हो उठे।

युनियन हॉल में नवीन ही आज प्रमुख वक्ता था। उसकी ओजस्वी वाणी ने चमत्कार पैदा कर दिया और लगभग तीन हजार की संख्या में खड़े विद्यार्थियों की सभा में उसने क्रान्ति की लहर दौड़ा दी। सब-के-सब जानते थे कि अब अधिकारियों की आँखें उनपर गड़ गई हैं और आज ही कल में कुछ भी चरम काण्ड होकर रहेगा। परन्तु भय से विचलित होने के बदले सभी आज की लहकती ज्वाला का आलिंगन करने को लालायित हो उठे।

झंडा फहराने और ओजस्वी भाषणों के बाद विद्यार्थियों का लम्बा जुलूस निकला। जुलूस की सदारत नवीन कर रहा था। उसके दाहिने हाथ में

एक लम्बा तिरंगा झंडा था, पीछे-पीछे बालिकाएँ राष्ट्रीय गान गाती हुई आगे बढ़ रही थीं और उनके पीछे विद्यार्थियों का विशाल समुदाय था।

जब जुलूस गंगानाथ झा हॉस्टल के सामने पहुँचा तो रास्ता रोके खड़ी पुलिस की एक टोली से मुठभेड़ हो गई। पुलिस को देखने से ऐसा मालूम हो रहा था कि गोरी सरकार की यह हिन्दुस्तानी फौज भारतीय आन्दोलन के साथ हो। पास पहुँचते ही पुलिस की टोली दारोगा की चेतावनी देने के बावजूद भी राह रोकने के बदले नीचे नाले में उतर गई और रास्ता साफ़ मिल गया। मगर लाल साफा देखते ही विद्यार्थियों का जोश उबल पड़ा और वे उनपर रास्ते की बगल में पड़े पत्थरों के रोड़ों की वर्षा करने लगे। दो-चार पुलिस घायल भी हो गये। मगर उनमें से किसी ने हाथ नहीं उठाया। नवीन उतावले युवकों की टोली में घुस पड़ा और उन्हें समझाया कि हिंसा के रास्ते उनका कल्याण न होगा। फिर जुलूस आगे बढ़ा और सिविल-लाइन्स का चक्कर लगाता हुआ पुरुषोत्तमदास पार्क में एक विराट् सभा के रूप में बदल गया। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव का समर्थन कर लेने के बाद नवीन ने बड़े जोश में कहा—"साथियो, आज देश का सारा भार हमलोगों पर है। हम गाँवों में छितरा जायँ और 'अँग्रेजो, भारत छोड़ दो' के नारे से सारी धरती को हिला दें। जब तक विदेशी यहाँ से जाते नहीं, हमारा कल्याण न होगा, कोटि-कोटि की संख्या में बसे यहाँ के नर-नारी कभी सुखी न हो सकेंगे। हम इनकी लड़ाई में न एक भाई देंगे न एक पाई। गाँधी जी तथा देश के प्यारे नेताओं को गिरफ्तार कर इस सरकार ने हमें चुनौती दी है। चलें, हम भी रण-संग्राम में कूद पड़ें। आज जब हमारे नेता जंजीरों में बँधे जेल के सीखचों के पीछे बन्द हैं तो देश का रास्ता दिखाने का भार हम

नौजवानों पर ही आ पड़ा है। हमें देश-प्रेम की इस अग्नि को प्रज्वलित रखना है; इसके चलते हमें कितना भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। हमारा एक भी जवान जबतक जिन्दा रहेगा, इस आग को प्रज्वलित रखेगा—सुरक्षित रखेगा।

स्वतंत्र भारत की जय! महात्मा गाँधी की जय!! वीर जवाहर की जय!!!'

फिर जयजयकार के नारे के साथ सभा समाप्त हुई।

रात होते-होते युनिवर्सिटी का वातावरण चंचल हो गया। तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं। शहर में खबर फैल गई थी कि गवर्नर का फरमान कमीश्नर के यहाँ पहुँच चुका है—लड़कों के इस आन्दोलन का, पागलपन का, सरकार कसकर मुकाबला करेगी। युनिवर्सिटी के अध्यापकों की टोली में भी सरगर्मी थी। वे भी विद्यार्थियों का साथ देने की बात सोच रहे थे। विद्यार्थियों में कुछेक सी० आई० डी० का काम कर रहे हैं—इसकी भी चर्चा थी। कुछ लोग सतर्क भी हो गये थे। अब खेल नहीं, वास्तविकता का सामना करना है। दस बजे रात में युनिवर्सिटी की कार्य-कारिणी के सदस्यों की एक गुप्त बैठक युनियन हॉल के वगल में हुई और वर्त्तमान नाज़ुक परिस्थिति को देखते हुए सारी बातें सोची गईं। आखिर में यह तय हुआ कि कल की सभा की सदारत कर नवीन तुरत ही परोक्षरूप (Under ground) से काम करने चला जायेगा और इसी तरह सात दिनों तक सात-सात आदमियों का जत्था परोक्षरूप से आन्दोलन में भाग लेने जाता रहेगा। सात दिनों के बाद फिर एक गुप्त बैठक होगी और आगे का कार्यक्रम तय किया जायेगा। इस योजना

को कार्यान्वित करना जरूरी था, क्योंकि विद्यार्थियों के लीडरों की भी गिरफ्तारी आज ही-कल में होने वाली थी।

× × × ×

आधी रात के बाद जब नवीन कमरे में लौटा तो पानी की बूँदें टप्-टप् पड़ने लगीं। आकाश के तारे छिप गये और थोड़ी ही देर में झड़ी लग गई। वह बत्ती बुझाकर सो रहा मगर नींद नहीं आई। सोचता रहा—अब तो इस पार या उस पार। आनेवाला कल तो अनिश्चित है। भोर होते ही वह बन्दी हो जायेगा या शाम को भागते-भागते पकड़ लिया जाय तो आश्चर्य्य ही क्या? तो कल का काम आज ही खत्म कर लें। वह भाभी को चिट्ठी लिखने बैठ गया।

"माँ जैसा प्यार मुझे तुमसे सदा मिलता रहा। तो माँ जैसा आशीर्वाद भी दो। आज देश को तरुणों के बलिदान की आवश्यकता है। मैं इस आवाज को सुन चुका हूँ और आज अपना नया कदम उठाने जा रहा हूँ। देश-सेवा मेरे जीवन की चरमसाधना होगी और भारत में बसे हुए करोड़ों नर-नारियों के उत्थान के लिए मेरी सारी शक्ति लग जायेगी। इस समय मुझे भाई की बड़ी याद आ रही है। मुझे यकीन है कि उनका बलिदान मुझे प्रेरणा ही नहीं, उत्तेजना भी देगा। यदि मेरी यह चिट्ठी मेरे गिरफ्तार होने के बाद ही तुम्हें मिले तो आश्चर्य नहीं। तुम्हारे शरीर में दुर्गाबाई और लक्ष्मीबाई सदृश वीरांगनायों का खून है और मुझे दृढ़ विश्वास है कि तुम्हारा आशीर्वाद मेरे पथ का पाथेय होगा। मेरी सारी चीजें हॉस्टल में ही पड़ी हैं। कमरे की कुञ्जी दरवान को दे जाऊँगा। यदि मेरी चीजें जप्त न हुईं तो उन्हें मँगा लेना। बस, प्रणाम—।"

चिट्ठी लिखने के बाद वह निश्चिन्त हो गया और पलक मारते गहरी नींद सो गया।

भोर में उठा तो आसमान साफ़ था। वह तौलिया लेकर बाथरूम में गया और जल्द ही नहा-धोकर तैयार हो गया। आज वह लीडर है, उसे दिनभर का सारा कार्यक्रम अभी बना लेना है। बहुत देर सोचकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आज का जुलूस दो हिस्सों में बँट जाय। एक हिस्सा लाउदर रोड होते हुए चौक की ओर जायेगा और दूसरा हाईकोर्ट की तरफ। उसकी इच्छा हुई कि चौक वाले जुलूस में डॉ० सतीश चला जाय और दूसरे जुलूस की सदारत वह खुद करेगा। वह सायकिल उठा कर डॉक्टर के घर पहुँचा तो वहाँ पता चला कि वह बहुत तड़के प्रयोगशाला को चला गया है। फिर वह प्रयोगशाला में लपका पहुँचा। डॉक्टर अपने अनुसन्धान की धुन में लीन था। उसे देखते ही नवीन ने गरजकर कहा—"लानत है तुम्हारी जवानी पर कि आज भी तुम एसिड और अलकली के फेरे में पड़े हो। बन्द करो इस खिलवाड़ को। चलो अभी मेरे साथ। आज तुम सिपाही हो, विद्यार्थी नहीं। तुम्हारा स्थान आज रणक्षेत्र में है, इस अनुसन्धानशाला में नहीं।"

"आज तो आप हमारे कप्तान हैं, इसलिए यह सरगर्मी है शायद—।"

"जो समझो, कप्तान ही समझो तो मेरी आज्ञा है कि शहर चलो। जुलूस के साथ तुम्हें जाना होगा और देखना कहीं कोई वैसी बात न हो जाये।"

"तुम भी पागल हो गये हो नवीन! भला इस तरह जुलूस निकालने से कुछ होगा? कहो तो बम तैयार कर दूँ और आज गोरी पलटन पर फेंक दूँ।"

"तुम बराबर औंधी खोपड़ी की बातें किया करते हो। जब उसकी

जरूरत होगी, देखा जायगा। इस वक्त जो करना है उसे करना ही है। उठो अभी—।"

दोनों युनियन हॉल की ओर चल देते हैं।

दुपहरी होते-होते युनियन हॉल से दो जुलूस निकले। हाईकोर्ट की ओर जानेवाला जुलूस गंगानाथ झा हॉस्टल की ओर मुड़ा। आगे-आगे तिरंगा झंडा लिये नवीन था, फिर तगड़े युवकों की एक टोली, उसके बाद बालिकायें और फिर विशाल जन-समुदाय। नवीन आज बहुत सतर्क था, उसने बालिकाओं के आगे युवकों की तगड़ी टोली को मार्च कराया। नारे लग रहे थे, जय-जयकार से आसमान फटा जा रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि किसी किले को फतह करने को फौज मार्च कर रही हो।

जुलूस जब कचहरी के नजदीक पहुँचा तो पुलिस ने उसे रोकना चाहा मगर नवीन ने झंडे की ओर इशारा करते हुए लोगों को ललकारा और सब उस बूट-दल को चीरकर आगे बढ़ गये।

उधर गोरी सरकार भी पूरी तरह तैयार थी। पुलिस लाइन से बन्दूक लिये घुड़सवारों की टोली आगे बढ़ आई और उसके कप्तान ने जुलूस को तितर-बितर करने के लिए हुक्म दिया। जुलूस आगे बढ़ रहा था। पीछे कदम ले जाने को कोई तैयार नहीं। कप्तान ने गरज कर 'आर्डर' दिया। घुड़सवार भीड़ पर पिल पड़े। पानी बरसकर अभी-अभी खुला था। चारों तरफ कीचड़ था। तौभी सब जमीन पर लेट गये। पीछे हटने के बजाय घोड़े के टाप से टकराना उन्हें ज्यादा अच्छा लगा। कप्तान परीशान रहा। घोड़े भी हिनहिना कर दो पैर पर खड़े होकर पीछे की ओर मुड़ गये। नवीन 'गाँधी जी की जय' बोलकर जुलूस को ललकारता आगे बढ़ चला। उसकी बोटी-बोटी आज

फड़क रही थी। आँखें सुर्ख थीं और पसीने की बूँदें ललाट पर चमक रही थीं।

कप्तान ने गोली चलाने का हुक्म दिया। झट फायँ-फायँ की आवाज़ हुई, शायद झूठी फायर थी लोगों को डराने के लिये, मगर कोई पीछे न हटा। पैर आगे बढ़ते ही रहे। बारूद के नीले धुएँ और तीखी महक से तथा गोली छूटने की तेज आवाज़ से घोड़े भड़क गये और एक घोड़े का टाप नवीन के कन्धे पर आ रहा। चोट कुछ ऐसी गहरी हुई कि उसके हाथ से तिरंगा छूटकर जमीन पर आ रहा।

नवीन के पीछे उसका सहपाठी पद्मधर था। झंडे का यों झुकना-गिरना उसे बर्दाश्त न हुआ। उसने झट लपक कर तिरंगे को थाम लिया और उसे जय के नारे के साथ ऊँचे उठाकर आगे कदम बढ़ाया।

कि गोली का दूसरा 'राउन्ड' छूटा और गोरी सरकार की पहली गोली झण्डा लिए हुए पद्मधर की छाती को बेधती हुई सन्-से निकल गई। वह तो वहीं ढेर हो गया और उसके साथ-ही-साथ जाने कितने जख्मी जमीन पर आ रहे।

इधर अपनी चोट को भूलकर नवीन फिर खड़ा हो गया और झंडे को उठाकर अपने साथियों से गरज कर कहा—"आगे बढ़ो, और कुछ लोग घायलों को लेकर अस्पताल पहुँचाओ। उन्हें यहाँ छोड़ देना ठीक नहीं।" इसी बीच किसी प्रोफेसर की गाड़ी आ गई थी। उसी पर घायलों को ढोने का काम शुरू हुआ। जुलूस को आगे बढ़ते देखकर कप्तान ने कई-एक राउन्ड गोली चलवाई मगर नवीन सदा बाल-बाल बचता रहा। विद्यार्थियों की जुलूस-संचालन-शक्ति कमाल की थी। घायलों को ढोने तथा जुलूस को आगे बढ़ाने

का काम साथ ही साथ चल रहा था। छात्राओं का जोश तो और भी अद्भुत था। वे झंडे की रक्षा करती तथा गोली की तनिक भी परवाह न करती हुई आगे ही बढ़ी चली जा रही थीं।

कप्तान युवकों की बहादुरी देखकर दंग था। गोली चलना बन्द हो गया। घुड़सवार भी तितर-बितर हो गये। बहुतेरे लोग घायलों को लेकर अस्पताल और घर की ओर चले। मगर नवीन बचे हुए जुलूस को लिये अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता गया।

नवीन जब हॉस्टल लौटा तो देखा कि उसका सहपाठी शिशिर फाटक पर उसी के इन्तजार में खड़ा है। नवीन को दूर से देखते ही उसने पुकारा—"नवीन भैया, मेरे कमरे में चले चलो। बहुत गर्म खबर है कि तुम जल्द ही पकड़े जाओगे। शायद तुम्हारे कमरे के इर्दगिर्द सी० आई० डी० वाले चक्कर भी लगा रहे हैं।"

नवीन तमककर खड़ा हो गया—"मैं उनसे डरता नहीं। जब मैं गोली से नहीं डरता तो भला आदमी से—"

"उतावला न बनो। तुम्हें अभी जेल नहीं जाना है। तुम्हें तो इस आन्दोलन को सफल बनाना है। तुम्हें यहाँ से जल्द ही कहीं चला जाना चाहिए। चलो पहले मेरे कमरे में। युनियन के प्रमुख कार्यकर्त्ता अभी-अभी पकड़ लिए गये। सुना है कि हिन्दू-हॉस्टल में पुलिस ने हन्टरबाजी भी शुरू कर दी है।"

नवीन उसके कमरे में चला गया। वह लड़ना चाहता था, सड़ना नहीं। इसलिये शिशिर की बात उसे जँच गई।

शिशिर ने आगे बताया—"तुम मेरे कपड़े पहिन लो, मेरा हैट भी लगा लो और मेरी कैंची से अपनी मूँछों की शैली भी बदल लो। तुम्हें लोग बराबर धोती-कुर्त्ते में देखते आये हैं, इसलिए कपड़े बदल जाने पर तुम्हें कोई पहिचानेगा भी नहीं। पुलिस को धोखा देने के लिए बंगाल के क्रान्तिकारी भी यही किया करते थे।"

"मगर डॉक्टर से मिलना जरूरी है।"

"—डाक्टर अभी आता ही होगा। युनिवर्सिटी बन्द हो गई है, हॉस्टल खाली कर देने का हुक्म हुआ है। डॉक्टर अब स्वतन्त्र है। हाँ, यहाँ की अब सारी कूद-फाँद बन्द कर देनी होगी और गाँवों में जाकर नया संगठन खड़ा करना होगा। वह तुम्हारे ही साथ चलने को अपना सामान लाने गया है।"

नवीन की परीशानी कुछ कम होती दीख पड़ी।

डॉक्टर के आते-आते नवीन का वेश और लिबास बिलकुल बदल गया था। उसे अब पहिचानना कठिन था। डॉक्टर ने उसे देखते ही उससे अपना हाथ मिलाया और मजाक में कहा—"वल्लाह, अब तो तुम किसी टुटपुँजिये इन्श्योरेन्स कम्पनी के पूरे एजेन्ट बन गये हो! चलो, अब मुल्ला फँसाओ।"

तीनों हँस पड़े।

कुछ रात बीत जाने पर शिशिर ने पास के नुक्कड़ से हफीज ताँगेवाले को बुलाया और चेताया—"हफीज, अब इज्जत तुम्हारे हाथ में है। कर्फ्यू लग गया है। चारों ओर गोरी पलटन का पहरा है। अब तुम्हें किसी तरह नवीन बाबू और डॉक्टर साहब को अभी ही प्रयाग स्टेशन पहुँचाना होगा। तुम हमलोगों के पुराने ताँगेवाले हो—अब—।"

हफीज—"काम बड़े जोखम का है बाबू, अल्लाह ही बेड़ा पार लगाये।

कहीं पकड़ गये तो तीनों ही गोली के शिकार हो जायेंगे।"

नवीन—"कोई फिकिर न करो! आज देश की यही माँग है। और जो देश की आज़ादी के लिए घर से निकलता है वह जान हथेली पर रखकर चलता है।"

हफीज—"मुझे चिंता आपकी है, सरकार, अभी आप जवान हैं। मैं तो बूढ़ा हुआ; आज कब्र में चला जाऊँ या कल।"

फिर डॉक्टर ने ललकारते हुए कहा—"भैया, समय कम है, ऐसी बातें कायर सोचते हैं। चलो, जो होगा उसका सामना हम करेंगे।"

नवीन ने शिशिर को धन्यवाद दिया और डॉक्टर ने अपना झोला उठाया जिसमें रोज़मर्रे की कुछ ज़रूरी चीजें रखी थीं। दोनों ताँगे में सवार हो गये और देखते-देखते अन्धकार में खो गये।

हफीज युनियन के पीछेवाले रास्ते से ताँगा भगाये चला जा रहा है। रास्ता घुप् अन्धेरा और सुनसान। कभी झाड़ियों से बिल्ली-चूहे खड़खड़ाते भागते तो हफीज चौंक पड़ता। उसे भय होता कि कहीं गोरे न छिपे हों। नवीन अपने-आप में खोया है। डॉक्टर सोच रहा है कि आज वह कहाँ जा रहा है! वह तो विज्ञान का विद्यार्थी है, अनुसन्धानशाला ही उसका क्षेत्र है, फिर आज वह किधर, कहाँ और कैसे··· ? मगर वह नवीन को ज़बान जो दे चुका है—इस आन्दोलन में वह उसका साथ देगा। फिर पीछे हटना कैसा? आनेवाले दिन जो दिखायें, जो करायें। जिस प्रेम की डोर में वह बँधा है उसे तो निबाहना ही होगा; न काटना होगा, न तोड़ना होगा।

हफीज ने कमाल कर दिखाया। ताँगा प्रयाग स्टेशन पहुँच गया। सभी सही-सलामत थे। नवीन खुश था। डॉक्टर हफीज को इनाम देने लगा, मगर

इनाम तो दूर, वह तो उससे अपनी मजदूरी भी लेने से इन्कार करने लगा—"भैया, मेरा मजहब न बिगाड़ो। तुम लोग वतन के लिये जान देने जा रहे हो। भला मैं इतना भी······।" उसने पैसे नहीं लिए। दोनों को दुआ देता वह योंही लौट पड़ा और उसी अँधियारी में गुम हो गया।

नवीन और सतीश प्रयाग स्टेशन पर एक चादर बिछा कर लेटे हैं। प्लेटफार्म भरा है। विद्यार्थी, सी० आई० डी० और फिर लाल पगड़ी। गाड़ियों के आने-जाने का कोई भी ठिकाना नहीं। किधर से आयेंगी, किधर जायेंगी या न आयेंगी न जायेंगी—यह कोई नहीं जानता। खबर है कि रेल की लाइनें उखाड़ दी गई हैं, स्टेशन लूट लिये गये हैं, गाड़ियों पर लोग कब्जा कर रहे हैं। नवीन और डॉक्टर को अपनी दिशा का कोई ज्ञान नहीं। उन्हें किधर जाना है, क्या करना है, कैसे और कहाँ कुछ करना है—वे कुछ भी नहीं जानते। बस, बहे जा रहे हैं लहर में तिनके के समान। किधर उड़कर, बहकर चले जायँ, राम जाने !

दोनों ने प्लेटफार्म पर लेटे-लेटे रात बिताई। कभी पानी की बूँदें पड़ जातीं और कभी आसमान साफ़ हो जाता। भोर होते-होते एक गाड़ी प्लेटफार्म पर आकर लग गई। दोनों उसी पर सवार हो गये।

पहले वह गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन पर पहुँची और वहाँ बताया गया कि यह गाड़ी पूरब की ओर जायेगी। पश्चिम की लाइनें उखाड़ दी गई हैं।

उधर कोई भी गाड़ी नहीं जा सकती। बस, दोनों पूरब की ओर चल दिये।

नवीन सोच रहा है कि आखिर वह किधर जा रहा है। कहाँ उतर जाय, किस तरह आन्दोलन को संगठित करे, किसी एक गाँव को तो आधार बनाना ही पड़ेगा; फिर वहीं से आन्दोलन फैलेगा। फिर कार्यक्रम क्या हो? सरकार से किस तरह असहयोग किया जाय? जनता इस सरकार का कभी साथ न दे। उसके संगठन को मजबूत बनाना है।

आखिर उसने डॉक्टर से पूछा—"कहो भाई डॉक्टर, सिगरेट का कश पर कश तो लिये जा रहे हो मगर यह भी पता है, हमारी गाड़ी किस ठौर पर रुकेगी?"

"यार, सिगरेट के धुएँ के अम्बार में भी मैं इसी सवाल का जवाब ढूँढ़ रहा हूँ मगर माथा खुजलाता रह जाता हूँ, कुछ उत्तर नहीं पाता। सचमुच आज बड़े पेशोपेश में पड़ गये हैं हम दोनों।"

"घबड़ाओ नहीं डॉक्टर, रास्ता ही रास्ता बतायेगा अपना; बस, चले चलो इसी लकीर पर।"

इतना कहकर नवीन गम्भीर हो गया। कुछ देर के बाद मौन भंग करते हुए उसने कहा—"यार, तुम 'रॉलिंग सिगरेट' कभी नहीं छोड़ सकते। यहाँ भी कागज तथा तम्बाकू का काफी स्टाक आया है!"

"दोस्त, रास्ते की खुराक भी तो यही है। और भाई, बिना इसका एक कश लिए ख्यालातों का समाँ नहीं बँध पाता।"

दोनों हँस पड़े। बातों का सिलसिला जारी रहा। स्टेशन पर स्टेशन आते गये और समय तथा रास्ते का फैसला तय करती हुई गाड़ी मोगलसराय स्टेशन पर आ लगी।

कुछ देर तो वातावरण शान्त रहा। पर एकाएक ऐसी भगदड़ मची कि सारे रेलवे कर्मचारी थर्रा उठे। हिन्दू-युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के एक जत्थे ने ट्रेन पर चढ़कर उस पर पूरा कब्जा जमा लिया। इन्जिन-ड्राइवर और गार्ड हक्के-बक्के-से खड़े रहे।

नवीन धक्के देता प्लेटफार्म पर उतर पड़ा और विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए बड़े ही जोश में कहा—"देखिये, आज यह ट्रेन आज़ाद हिन्द रेलवे की हो गई। इस पर पहले तिरंगा झंडा फहरायें और गार्ड तथा इंजिन-ड्राइवर को आदेश दें कि गाड़ी को अपने लक्ष्य की ओर बढ़ायें और हर स्टेशन पर आप अपना झंडा फहराते हुए आगे बढ़ते जाइये। और हाँ, आप में से कुछ लोग हर एक स्टेशन पर गाँवों को संगठित कर उनके जागरण के हेतु उतरते भी जायें।"

नवीन उस आज़ाद हिन्द रेलवे का मानों डाइरेक्टर बन गया। उसकी प्रतिभा कुछ ऐसी सर्वतोमुखी थी कि किसी भी जुलूस या भीड़ को वह चुटकियाँ बजाते मुट्ठी में समेट लेता।

ट्रेन अपने क्रमानुसार स्टेशनों पर रुकती हुई बढ़ती गई। हर एक स्टेशन पर विद्यार्थियों ने अपना अधिकार जमाकर तिरंगा फहरा दिया। स्टेशन-कर्मचारी तो सदा सलामी ही बजाते रहते। सारी बातें बड़ी शान्तिपूर्वक होती जातीं। फिर महात्मा गाँधी की जय मनाती विद्यार्थियों की टोलियाँ ट्रेन से उतरती गाँवों की ओर भागती चली जातीं। परन्तु इतना होते-होते काफी समय लग जाता और कुछ ही स्टेशन पार करते-करते सन्ध्या हो आई।

ट्रेन रुक गई। बत्ती नहीं थी। अन्धेरी रात में उसे आगे ले जाना खतरे से खाली नहीं था। करीब-करीब सभी इधर-उधर उतरते हुए चले गये

थे। बस, नवीन और डॉक्टर ही बच रहे। नवीन ने डॉक्टर से कहा—"रास्ता खत्म हो गया और आज का दिन भी समाप्त हो गया। चलो, उतर पड़ें। देखो, दूर, सुदूर क्षितिज के पास रोशनी नज़र आ रही है। उसे ही प्रकाश-स्तम्भ मानकर आज हम वहीं चलें। शायद हमें वहाँ प्रकाश मिल जाय। अन्धकार में वह आलोक शायद हमारे लक्ष्य का प्रतीक हो। बस, पकड़ लो इस पगडंडी को।"

डॉक्टर ने बड़े इतमीनान से एक 'सिगरेट' तैयार किया। उसे जला कर दियासलाई की अन्तिम काठी को फेंकते हुए कहा—"चलो, मेरी दियासलाई भी खत्म हो गई, अब वहीं चलो जहाँ आग मिले, वरना रात कैसे कटेगी?"

मीलों फैले खेत तथा उनकी मेड़ों को पार करते-करते वे दोनों कुछ रात जाने पर एक गाँव के पड़ोस में जा पहुँचे। बरसात का दिन था। दस-बीस कदम पार करते-करते पानी और कीचड़ का सामना करना पड़ता। कहीं वे फिसल पड़ते-और कहीं दलदल में फँस जाते। बादलों का साम्राज्य आकाश में था। अँधियारी की दुलाई ओढ़े धरती छिप गई थी। हाँ, जब कभी बिजली कौंधती तो राह की एक झलक मिल जाती।

परन्तु इन तमाम कठिनाइयों का सामना करते हुए वे बढ़ते ही गये। आखिर, तूफान से टकराने जो चल पड़े थे वे!

उस ऊँचे टीले पर एक फूस की झोपड़ी है। उसी के सायबान में वह बत्ती टिमटिमा रही है। अन्दर से किसी किशोरी के गाने की आवाज़ सुन पड़ती है। झोपड़ी के एक कोने से धुआँ भी निकल रहा है। नवीन और सतीश कुछ और निकट पहुँचते हैं। वह किशोरी आग को फूँकती हुई चिल्ला पड़ती है—"बाबा भी बड़े वो हैं। गीली लकड़ी लाकर रख देते हैं और रोटी समय पर न मिले तो भौं चढ़ाने लगते हैं। आखिर मैं रोटी सेकूँ क्या खाक ?"

और फिर गाने की कड़ी। सुरीली, मीठी।

दोनों ठिठककर खड़े हो जाते हैं।

"नवीन ! तुम्हारी मंजिल आ गई। रोशनी मिल गई तुम्हें।"—डॉक्टर ने मुस्कुराकर कहा।

"और तुम्हारी भी मंजिल तो यही है। आखिर आग भी तो यहीं है। चलो आज रात यहीं बिताई जाय। इस अँधियारी में अब आगे चलना मुश्किल है। जी भी थक गया है। आज रात यहीं विश्राम कर कल फिर आगे बढ़ेंगे।"

"हाँ, ठीक कहते हो, मगर मुझे तो अब आग की तलाश नहीं, रोटी की तलाश है। पेट में चूहे कूद रहे हैं !"

दोनों उस टीले पर चढ़ने लगे। रास्ता दीख नहीं रहा था, घास पकड़कर वे चढ़ रहे थे। चार-पाँच फीट चढ़ते-चढ़ते पैर फिसल गये और दोनों धड़ाम-से नीचे आ गये। धम्मू-से आवाज़ हुई। किशोरी को जान पड़ा कि नीलगाय फिर आ गयी है। वह 'भाग-भाग' चिल्लाती बाहर निकल आई और गीली लकड़ी की एक बड़ी चैली को घुमाकर नीचे फेंका। वह चैली नवीन की पीठ पर आ बजी। उसने चिल्लाते हुए ज़मीन पकड़ ली। डॉक्टर चिल्लाया—"भाई, हम आदमी हैं, चोर या जानवर नहीं। हमें रोशनी दिखाओ और रातभर के लिए शरण दो।"

'आह' करती वह किशोरी लालटेन लिए नीचे दौड़ी आई और चोट खाये हुए नवीन को देखकर सकपका गई। डॉक्टर उसकी पीठ सहला रहा था और झल्लाकर कहता जा रहा था—"तुम्हें भी बेवक्त की शहनाई सूझती है। छोड़ो इन झमेलों को। इस आन्दोलन को सम्भालने के लिए बहुत लोग हैं; चलो, घर लौट चलें। फिजूल इस तरह जान देने से कुछ न होगा। विज्ञान के इस युग में अन्धेरे-अन्धेरे भटकने से कहीं कुछ होने का नहीं। बस, बम और बारूद बनाकर सशस्त्र फौज खड़ी करो और डटकर दुश्मन का मुकाबला करो।"

लड़की कुछ देर तक सकपकाती रही। फिर बड़ी आजिजी से बोली—"मुझसे बड़ी गलती हुई। मैं समझ बैठी थी कि नीलगाय आ गई है। क्षमा करेंगे मुझे। आपको बड़ी चोट आई।"

वह लालटेन रखकर नवीन को उठाना चाहती है कि नवीन डॉक्टर का सहारा लेकर खुद उठ गया।

नवीन—"नहीं-नहीं, कोई ज्यादा चोट तो नहीं है। चलिए, ऊपर चलें।"

वह आगे-आगे लालटेन दिखाती है और नवीन डॉक्टर का हाथ पकड़े

ऊपर चढ़ता जा रहा है। झोपड़ी में दो टूटी हुई चारपाइयाँ पड़ी हैं। उनपर फटे-पुराने कम्बल पड़े हैं; एक कोने में बुझती हुई आग और जली-सूखी रोटियाँ हैं और दूसरे कोने में एक बाल्टी पानी, लोटा और डोर है।

जल्दी-जल्दी कम्बल बिछाकर वह नवीन को एक चारपाई पर लिटा देती है। डॉक्टर झोले को एक कोने में रखकर सिगरेट जलाने को आग की ओर लपकता है। झोपड़ी में अभी भी धुआँ भरा है। नवीन उजबुजा रहा है और डॉक्टर को खाँसी पर खाँसी आ रही है। वह लालटेन बाहर टाँगकर एक कोने में मुजरिम की तरह खड़ी हो जाती है।

डॉक्टर एक 'कश' लेकर नवीन के पैताने बैठ जाता है और नीरवता को भंग करते हुए पूछ बैठता है—"क्यों, तुम यहाँ अकेली रहती हो या तुम्हारे—"

"हाँ, हमारे बाबा हैं।"

"कहाँ गये हैं?"

"गाँव में पंचों की पंचायत है।"

"क्या कोई झगड़ा-तकरार हुआ है?"

"नहीं, गाँधी बाबा को गोरों ने पकड़ लिया है, इसी लिए आज गाँव में पंचायत है।"

नवीन तड़प कर उठ बैठा। उसका दर्द क्षणभर में हवा हो गया। एकबारगी आनन्दविभोर हो पुकार उठा—"कहो डॉक्टर, हम आज लक्ष्य पर पहुँच गये न! गाँव-गाँव में आग फैल गई। हमारा आगमन अब सफल होगा। गाँधी जी की जय!"

वह खाट पर से उठ कर खड़ा हो गया।

किशोरी उसे देखकर अवाक् है। डॉक्टर भी हैरत में है। मरीज में

इतनी ताकत कहाँ से आ गई ? गाँधी का कमाल है जैसे !

डॉक्टर—"पागल न बनो ! चोट खा गये हो, अभी बदन झाड़कर न उठो।"

नवीन—"मैं बिलकुल ठीक हूँ !"

किशोरी भी कुछ कहना ही चाहती थी कि बाहर से खाँसती-खाँसती एक आवाज़ आई—'सोनिया !'

'आई बाबा !' कहती हुई वह दौड़ गई।

"यह आवाज़ किसकी है बेटी !"

"बाबा, दो जने आये हैं। गाँधी जी की बात कर रहे हैं। गाँधीजी के चेले जान पड़ते हैं। मैंने उन्हें नीलगाय समझ लिया और चैली भी चला दी। एक जने को तो काफी चोट भी आ गई है, मगर फिर भी गाँधी बाबा की जय-जय चिल्ला रहे हैं।"

"राम, राम, राम ! यह क्या कर बैठी—?" बूढ़ा झोपड़ी में दौड़ पड़ता है।

बूढ़ा—"पाव लागू , पाव लागू , धन्य जो आज आप हमारे यहाँ पधारे। बिटिया ने गलती की,—मैं माफ़ी माँगता हूँ। अभी भोली बच्ची है।"

नवीन—"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं बाबा, मैं बिलकुल ठीक हूँ।"

"ह···ह···ह···गाँधीजी के दूत हैं आप।···धन्य-धन्य। हमलोग आप ही को खोज रहे थे। हर गाँव में कुछ लोग पहुँच गये हैं। हमारे ही यहाँ अभी तक कोई नहीं आया था। हमें राह बतायें आप। कुछ सूझता नहीं है।···अच्छा-अच्छा, बाद में बात होगी।···बेटी, कुछ खिलाओ इन्हें; रोटी लाओ, मैं मंगरू के यहाँ से दौड़कर गुड़ लाता हूँ। और एतवारू के यहाँ से गर्म दूध भी लेता आऊँगा। लोटे में जल देकर अभी हाथ-मुँह धुलाओ···"

बूढ़ा बाहर दौड़ जाता है।

गाँव के बाहर आम के बगीचे में ग्रामीणों की भीड़ इकट्ठी हुई है। एक तरफ स्त्रियों की टोली भी बैठी है। नवीन और सतीश एक तख्त पर बैठे हैं।

सभा की कार्यवाही शुरू करते हुए सोनिया के बाबा ने कहा—"भाइयो, हमारे भाग्य से आज गाँधीजी के दो चेले हमारे गाँव में पधारे हैं। हम इनका आदर-सत्कार करते हैं और इनसे प्रार्थना करते हैं कि हमें रास्ता दिखायें। इस इलाके की जनता गाँधीजी और पण्डितजी की गिरफ्तारी के कारण बहुत क्षुब्ध है। हम कुछ करने को व्याकुल हो रहे हैं..."

करतालियों की गड़गड़ाहट के बीच नवीन बोलने को उठ खड़ा हुआ—"भाइयो और बहनो, गाँधीजी जेल जाते-जाते 'करो या मरो' का संदेश हमारे लिए छोड़ गये हैं। अब हमें कुछ कहना नहीं है—बस, करना है या मरना है।"

उसकी भुजायें फड़कने लगीं और 'हम करेंगे, करेंगे' के नारे बुलन्द होने लगे। 'शान्त, शान्त', की आवाज डॉक्टर ने लगाई और नवीन ने फिर

कहना शुरू किया—"मौत से बाजी लेने का ही दूसरा नाम ज़िन्दगी है। यदि जीना है तो मरना सीखो और जीवन को सार्थक बनाने या मृत्यु को अमर बनाने के लिए देश-सेवा से बढ़कर और दूसरा रास्ता कोई भी नहीं है। भारत में बसी हुई कोटि-कोटि जनता के दुख और दारिद्र्य को दूर करने के लिये यहाँ से विदेशियों को हटाना अब अनिवार्य हो गया है। उनकी लड़ाई से हमारा कोई भी ताल्लुक नहीं। आज से हम अपने को आज़ाद समझें और…।"

'और' कहते ही हजारों की संख्या में खड़ी जनता ने निनाद किया—"और अभी चलकर, थाने पर अधिकार जमाकर हम तिरंगा झंडा फहरा दें। थाना हमारा है, पुलिस हमारी है, कचहरी हमारी है, सरकारी अमले हमारे नौकर हैं—हम अभी चलेंगे, यहीं से चलेंगे, हमारे नेता आप हैं, हमारे लीडर आप हैं—" आवाजें गूँज उठीं, गूँजती रहीं।

डॉक्टर लाख चिल्लाये—"शान्त ! शान्त !!" मगर किसी ने एक न सुनी। सभी पागल हो रहे थे। भावुक नवीन भी जोश में कूदने लगा और सोनिया के बाबा के हाथ से झंडा खींचकर जोर से चिल्लाया—"चलो, अभी चलो—गाँधी जी की जय ! पण्डित जवाहरलाल की जय !! राजेन्द्र बाबू की जय !!! सरदार पटेल की जय !!! जयप्रकाश की जय !!!"

फिर तो नाम कम सुनने को मिलते, बस, 'जय-जय' ही गूँजता रहता और हजारों की संख्या में खड़ी जनता की भीड़ थाने की ओर बढ़ चली। आगे-आगे नवीन था तिरंगा लिए, बगल में सतीश।

एक घने पेड़ तले खड़ी सोनिया नवीन को देख रही है; उसके यौवन के निखार को देख रही है, उसकी आँखों की सुर्खी को देख रही है, और देख

रही है उसके जोश की मौज को, उसके बलिदान की लौ को। वह सुनती है उसकी आवाज़ में देश के हाहाकार को, उसकी तरह असंख्य बेबस और गरीब बेटियों के चीत्कार को और पददलित पीड़ितों की पुकार को। आस-पास के ग्रामीण भी शामिल हो गये उस जुलूस में। समुद्र के ज्वार की तरह प्रबल वेग से सभी थाने की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। नवीन इस नवीन प्रयोग से अपने में रक्त का एक नया संचार पा रहा है।

जब जुलूस के गगनभेदी नारे आकाश में थर्रा-थर्रा कर खोने लगे तथा वह जनसमुदाय क्षितिज में एक काली-सी रेखा के सदृश दीखने लगा तो सोनिया घर की ओर लौट पड़ी। उसकी सहेलियाँ तो कब की जा चुकी थीं।

अपनी झोपड़ी में पहुँचते ही सोनिया ने घर को झाड़-बुहारकर, एक करीने से सभी चीजों को सजाकर फिर से रख दिया। उसकी नज़रों में आज इस झोपड़ी की महत्ता बहुत बढ़ गई है। इसमें रहनेवाला अतिथि एक महान्, एक विशाल व्यक्ति है। उसके कपड़ों को उसने धोकर सुखाया और छोटी-मोटी रोज़मर्रे की चीजों को तिपाई पर रख दिया। कल रात उसकी चारपाई पर एक फटे-पुराने कम्बल को बिछा दिया था उसने; किन्तु आज उसने उस कम्बल को अपनी चारपाई पर बिछाया और अपना गुलगुल-सा बिछावन उसकी चारपाई पर बिछा दिया—सजा दिया जैसे। बरसात के दिनों में सूखी लकड़ी नहीं मिलती, तो उसके लिए अच्छी रोटियाँ कैसे सेंकी जायँ—ऐसा सोचकर वह कुछ क्षणों के लिये उदास हो गई और चिन्ता की भावनाओं के भार से बैठ गई। किन्तु तुरन्त ही झटके से उठ बैठी और कुछ गोइंठा पड़ोस से पैंचा माँग लाने की ग़रज़ से अपने पड़ोसियों के घर की ओर चल पड़ी।

उधर जुलूस ने थाने को घेर लिया। हजारों के सामने दस-पाँच सिपाही

और अकेले दारोगाजी आखिर करते ही क्या ? उनकी तो हेंकड़ी गुम थी। झट उन्होंने सदर फाटक खोल दिया। पुलिसवाले अपनी लाल पगड़ी छिपाकर भीड़ में मिल गये। उनके लिये तो यह आफत ही थी। दो-चार ने दारोगाजी को कुर्सी में बाँधकर पीटना चाहा कि नवीन ने घटनास्थल पर पहुँचकर स्थिति को सम्भाल लिया। दारोगाजी रिहा कर दिये गये। वह रिहा होते ही भाग चले। तिरंगा झंडा थाने पर फहरा उठा—लहरा उठा, और "थाना हमारा है, पुलिस हमारी है" के नारे गूँजने लगे।

सन्ध्या-समय लौटने के पहले नवीन ने कुछ लोगों को थाने की देख-रेख करने को वहीं छोड़ दिया।

दीवानबहादुर लाला नीमचन्द हमीरपुर के नामी-गरामी रईस हैं। बनारसी सफेद रंग, गुलथुल शरीर और मयाना क़द। फिर लाखों की उनकी जमीन्दारी और करोड़ों की मालियत की मिलें थीं बम्बई और कलकत्ते में।

हमीरपुर उन्हीं की जमीन्दारी का एक मशहूर गाँव था। हमीरपुर में रहते तो जमीन्दारी की आन-बान और कलकत्ता-बम्बई जाते तो करोड़पति की शान-शौकत। यहाँ फर्श के ऊपर गद्दी और मसनद लगती; छत्र-चँवर लेकर नवयुवतियाँ मसनद के पीछे खड़ी हो जातीं। पगड़ी और आसा में लैश दरबारियों का वह हुजूम लगता कि नवाब वाजिदअली शाह का दरबार भी मात रहता।

दशहरे के दिन तो उनके दरबार की रौनक देखने ही लायक होती। झाड़-फानूस की जगमगाती रोशनी, रूमाल में गिन्नी और चाँदी के रुपये नजर फरमाते हुए इलाके के छोटे-बड़े बाबुओं की कतार, हाथ में जई लिए और 'जय-जय' का आशीर्वाद देते हुए ब्राह्मणों की बड़ी टोली, फाटक पर गाड़ियों में भर-भरकर लड्डुओं का वितरण तथा देवालयों में भजन-पूजन का विशेष

आयोजन। दीपावली के दिन लाखों दीपमालिकाओं से सजा उनका विशाल भवन जगमग हो जाता और होली की रसाई तो उनके दरबार में पन्द्रह दिन पहले से ही हो जाती। बनारस से कुमकुमे आते, पिचकारियाँ आतीं, शराब की बोतलें आतीं और आती हसीनों की एक टोली भी, जो पन्द्रह दिनों तक सरकारी भवन के शामियाने में नाच-गाकर इलाके के लोगों को बाग़-बाग़ कर देती। संध्या समय अबीर और गुलाल में रंगे हुए दीवानबहादुर बाहर सायबान में आकर गद्दी पर बैठते तो जोगीड़ों की भीड़ आकर इकट्ठी हो जाती और मध्यरात्रि के उपरान्त "सदा आनन्द रहे यहि नगरी, फिर कान्धा अइहैं खेलैं होरी—" गाती हुई चली जाती।

दीवानबहादुर के ड्राइंग रूम में दीवानबहादुरी का खिताबनामा एक सुनहले फ्रेम में मढ़कर टँगा है। सूबे के लाट के साथ का फोटो, कमिश्नरी के कमिश्नर साहब के साथ का फोटो तथा कलक्टर के साथ का भी फोटो दीवारों पर टँगा है। दोनों बरामदों में बरतानिया के राजा-रानी का जीवन-चित्र टँगा है। ड्राइङ्गरूम में ही बर्मा-टीक की बनी एक सुन्दर आलमारी है जिसमें बड़े लाट तथा छोटे लाट के प्रीतिभोज में जाने के अनेक नवेद तथा दीवानबहादुरी का खिताब मिलने के बाद की आई हुई हजारों मुबारकवादी की चिट्ठियाँ बड़े जतन से रखी हुई हैं। जब कोई भी आगन्तुक उनसे मिलने आता तो उसे इन कागजों से जरूर ही वे परिचित करा देते; और जो ऊबने लगता उसे तो और भी किस्सा सुनाते-सुनाते परीशान कर देते।

कलकत्ता-बम्बई जाते तो लंच-डिनर और इविनिङ्ग पार्टियों का ताँता-सा लग जाता। शेरवानी और साफा को वे हमीरपुर ही छोड़ जाते और यहाँ तो कोट-पैन्ट डाटे आप पूरे साहब बन जाते। यदि दोनों कानों में हीरे के

"टौप" न रहते तो कोई भी नहीं समझता कि आप 'नेटिव इन्डियन' हैं। 'पिन पॉयेन्ट' के सूट आप विशेष पसन्द करते और रात में डान्स के लिए जाते समय डिनर सूट का रोब रहता। ह्विस्की की बोतलें खुलतीं; दोस्तों को खिलाया-पिलाया जाता और बाजे की ताल पर थिरकते हुए जब आप डान्स-हॉल में कूद पड़ते तो साठ के पड़ोस में आकर भी आप अपने को किसी पच्चीस वर्ष के रसिया जवान से कम नहीं समझते। वहाँ रातभर आपकी बोटी-बोटी फड़कती रहती और जब भोर का अजान सुनाई पड़ता तभी घर लौटते।

बेशुमार पैसा और चारों ओर शुहरत रहते हुए भी वह अपनी कलँगी को खिसकते हुए पाते, जबतक वह हर पाँच साल बाद अपने को सूबे की कौंसिल में दाखिल न करा लेते। आख़िर तो वे भारत के उन रईसों में हैं जो एम० एल० ए०, एम० एल० सी० या एम० पी० हुए बिना अपने को बिना इज्जत समझते हैं। यह भी एक दिमाग़ी बीमारी है जो देश के अनगिनित घरों को हर पाँच साल के बाद तबाह कर के धर देती है। कितनी बहू-बेटियों के गहने गिरो रख दिये जाते हैं और वकीलों की झोली भर एक गोल-मटोल हिसाब बनाकर चुनाव के खर्च का व्योरा सरकारी आफिस में पेश कर दिया जाता है।

दीवानबहादुर नीमचन्द भी इसी मर्ज के मरीज हैं। सूबे की कौंसिल में नॉमिनेशन से घुसने के लिये वह सूबे के लाट से लेकर जिले के अदने-से-अदने गोरे ऑफिसर की खुशामद सदा करते रहते और बड़े दिन, साल के पहले दिन तथा साहबों और मेम साहबों की साल-गिरहों के दिन अफसरों को फल-फूल, बटेर तथा बगेरियाँ भेजना तो उनके लिए एक साधारण सी बात हो गई थी।

दीवानबहादुर का एकलौता बेटा 'समी' व्यापार के गुटके सीखने अमेरिका गया है और उनकी एकलौती बेटी मंजुला कलकत्ते के एक वीमेन्स कॉलेज में पढ़ती है। छुट्टियों में वह अपने 'पापा' के साथ रहती और उन्हें राजनीति एवं व्यवसाय में गोटियाँ बिठाने में मदद करती।

मंजुला हसीनों में भी हसीन थी। गोरे-भभूके रंग को बेधकर सदा लाली चुई पड़ती थी। होंठों की लाली तो पान की लाली को भी मात कर देती। एकहरा बदन, पतली कमर, लम्बा क़द, लम्बी गर्दन, ऊँची नाक और आम की फाँक-सी आँखें। कभी-कभी आनन्द-विभोर हो पापाजी उसे गले से लगा लेते, तो गद्‌गद् हो कहते—मेरी बेटी लाख में एक है। कंचन-सी ऐसी देह और चाँद-सा ऐसा मुखड़ा तो त्रिलोक में ढूँढ़ जाइये तो भी नहीं मिलेगा। मेनका और उर्वशी तो इसकी बाँदी बनेंगी—बाँदी !

मंजुला के लिए नित नये फैशन के कपड़े सिलते। साड़ियाँ आतीं और गहने बनते। कलकत्ता और बम्बई की चीजों से जब जी ऊब जाता तो विलायती पार्सल मँगाये जाते। और इत्र की पसन्द तो कोई मंजुला से ही कराये। आज यदि वह फ्रांस में जनमी होती तो इत्रों के उस देश में उसकी बड़ी कद्र होती।

दीवानबहादुर के दरबारियों में डेविड बच्चा का सर्वप्रथम स्थान है। डेविड उनके स्वर्गीय चचेरे भाई की एकमात्र संतान है। अँग्रेजी संस्कृति के अनुयायी रईसों के खान्दान में अक्सर बच्चों और बच्चियों का नाम समुद्रपार से उधार लिया जाता है। डेविड भी इसी मनोवृत्ति की उपज है। हाँ, नौकर और धाइयों ने डेविड का भारतीय संस्करण—'डेबिड बच्चा' झट तैयार कर दिया। आज डेविड, डेविड बच्चा के नाम से मशहूर है।

डेविड बच्चा पढ़ने से ज्यादा क्लबबाजी और 'फ्लश' में ही जी लगाते रहे। नतीजा यह हुआ कि मैट्रिक की देहरी भी पार करना दूभर हो गया। आखिर पढ़ना छुड़ा दिया गया और दीवानबहादुर के दरबारियों की लिस्ट में उनका नाम दर्ज हो गया। मौज करना और पापाजी का दिल-बहलाव करना—बस, यही उनका मुख्य धंधा रह गया। और, नाबालिग तो उन्हें जन्म-भर रहना है। वह हर घड़ी उनके साथ रहते और हर छोटी-बड़ी बात पर बिना पूछे ही अपनी राय पेश कर देते। बड़ी मुश्किल से उनकी शादी भी हुई मगर वह कुछ ऐसे किस्मतवर निकले कि बीवी दो साल बाद ही स्वर्ग सिधार गई। तब से आजतक वह विधुर हैं और जीवन की तमाम ऐसी-वैसी जिम्मेदारियों से छुटकारा पा चुके हैं।

आज दीवानबहादुर के दरबार में बड़ी सरगर्मी है। थाने पर ग्रामीणों का अधिकार हो जाने की चर्चा है। छोटे-बड़े सभी आपस में फुसफुसा रहे हैं। दीवानबहादुर ने अपने निजी सचिव ज्ञानचन्द को बुलाकर पूछा—"क्यों जी, गाँव की क्या ख़बर है?"

"हुजूर, थाने पर बलवाइयों का अधिकार हो गया।"

"झूठ, बिलकुल झूठ! ऐसा हो नहीं सकता।"

"साहब, आँखों-देखी बात कह रहा हूँ। लाखों की भीड़ के सामने चन्द पुलिस के सिपाही क्या करते? दारोगाजी तो कुर्ती-पेटी फेंककर घर भागे।"

"अजीब हाल है! ब्रिटिश सरकार की यह तौहीनी? क्यों जी, डेविड, क्या किया जाय?"

"पापाजी, हमें इनलोगों का मुकाबला करना चाहिए।"—डेविड का जवाब तैयार था।

"साहब, यह गलत क़दम होगा। हम उनकी आवाज़ को, उनकी 'स्पिरिट' को कुचल नहीं सकेंगे। कहीं उनका वार हमारे ऊपर हुआ तो हम कहीं के न रहेंगे।"—ज्ञानचन्द ने बात काट दी।

दीवानबहादुर एक गहरी साँस फेंक कर बोले—

"ज्ञानचन्द, यदि जिलाधीश मि० विलियम्स को यह खबर लग गई कि हमारे रहते ही उनका थाना लुट गया तो भी हम कहीं के न रहेंगे। बड़ी पेशोपेश में तबीयत है। खाऊँ किधर की चोट, बचाऊँ किधर की चोट! जान पड़ता है इस साल हमारी सी० आई० ई० की पदवी भी खतरे में है। खूब गोटी भिड़ी थी, विलियम्स को तो खिला-पिला कर खूब पोट लिया था, मगर यह मनहूस आन्दोलन जाने कहाँ से लानत की तरह बरस पड़ा कि सब किया-कराया मिट्टी में मिल जाने की नौबत आ गई।"

डेविड—"पापाजी, यह तो बहुत ही बुरी खबर सुनाई आपने। मैं तो सोच रहा था कि इसी जनवरी से दीवानबहादुरी का खिताब गलियारी में टाँग दूँगा और उसकी जगह पर सी० आई० ई० का तमगा एक शीशे के केश में रखकर वहीं टँग जायेगा। केश बनाने के लिए कई एक बढ़इयों से मैंने बात भी चलाई थी।"

"सारी मिहनत बेकार हो गई डेविड, बिलकुल बेकार! थाना लुट गया; अब आगे देखो क्या-क्या होता है। कहीं हमारी जमींदारी पर भी आँच न आ जाय। आख़िर हमारी तमाम पूँजियों का आदिस्रोत तो यही है। इसलिए मैं इसकी जड़ों को बराबर अपने लहू से सींचकर मज़बूत रखता हूँ।"

ज्ञानचन्द—"आप फ़िक्र न करें सरकार, सब ठीक हो जायेगा। इस समय बड़ी बुद्धिमानी से काम लेना है।"

दीवानबहादुर बहुत चिन्तित हैं। पेशानी पर पसीने की बूँदें उग आई हैं। छत पर टहल रहे हैं और सिगार का धुआँ उड़ा रहे हैं। आकाश में काले बादल गड़गड़ाते आ रहे हैं। दो-चार बड़ी-बड़ी बूँदें भी धरती से लगकर फूट-फूट पड़ती हैं, किन्तु दीवानबहादुर टहल रहे हैं और उनका सिगार जल रहा है—जल रहा है।

रात में सोनिया के बाबा रामू भगत की झोपड़ी में ग्रामीणों की एक भीड़ इकट्ठी हो गई है। दालान और घर सब-का-सब भरा है। डॉक्टर तख्त पर बैठा धुएँ की लड़ी बना रहा है। सोनिया एक कोने में सकपकाई बैठी है। रह-रहकर उसकी आँखें नवीन पर जा बैठती हैं। नवीन बड़ा गम्भीर हो कह रहा है—"आज आपने कमाल कर दिखाया। इतनी बड़ी भीड़ और ऐसा अनुशासन—कमाल! मैं तो हैरत में था। सारी चीजें प्रोग्राम के मुताबिक शान्तिपूर्वक सफल हो गईं। देश-सेवा की ऐसी ही लगन सदा बनी रहे। हाँ, अब हमें आगे का प्रोग्राम बनाना है। भगतजी, आपकी क्या राय है?"

भगत—"नवीन बाबू, हमीरपुर पंचायत के हमारे सदस्य मँगरू, एतवारू, निजाम, मोख्तार, छबीला, सकल, रामू, राघव, रूपा और रामबालक अभी प्रोग्राम बना ही रहे थे कि इस इलाके की जनता ने इस आन्दोलन का भार अपने सबल कंधों पर उठा लिया और अब भगवान के भेजे हुए आप

उनके लीडर भी पहुँच गये। फिर तो सोना में सुहागा हो गया। अब जैसा आप कहें, हम लोग करें।"

नवीन ने मँगरू की ओर मुड़ते हुए कहा—"क्यों भई मँगरू, तुम तो अपने अध्यक्ष महोदय की बातें सुन रहे हो, कहो, क्या चाहते हो ?"

"बाबूजी, हम लोगों की राय है कि अब हमीरपुर के सरकारी रजिस्ट्री ऑफिस तथा अन्य सरकारी ऑफिसों पर आज़ादी का झण्डा फहरा देना चाहिए और सरकारी कर्मचारियों को समझा देना चाहिए कि आज से वे अपनी भावना बदल दें। वे समझें कि अब वे जनता के सेवक हैं, विदेशी सरकार के नहीं। उन्हें अब ईमानदारी के साथ भारत में बसे हुए कोटि-कोटि लोगों के हित का ख्याल कर सेवा करनी होगी। क्यों भगतजी, मैं ठीक कहता हूँ न ?"

भगत—"हाँ भई मँगरू, निष्काम सेवा ही हमारा धर्म है। देश के लिए मर मिटने में जो आनन्द है वह और कहीं भी, किसी भी अवस्था में, हमें नहीं मिलेगा।"

मँगरू, निजाम तथा एतवारू—सभी ने उसकी बातों का समर्थन किया।

सबकी सम्मति का संकेत पाकर नवीन को एक नया बल मिला। ग्रामीणों का अदम्य उत्साह देख उसका निश्चय और भी निश्चित हो गया। वह दृढ़ता के स्वर में बोला—"ठीक है, अब सरकारी ऑफिसों पर अधिकार जमाने का काम शुरू हो। यह बात पक्की ठहरी। मेरा तो लक्ष्य है इस महान् देश तथा यहाँ की करोड़ों जनता की सेवा करते-करते मर मिटना, मर मिटना। बोलो, महात्मा गाँधी की जय, भारतमाता की जय !"

जय-जयकार चारों दिशाओं में गूँज उठा। उसकी गूँज दीवानबहादुर

के कानों में भी पड़ी। वह चौंक कर रह गये। सभा भंग होने पर सोनिया ने गर्म दूध और रोटी नवीन के आगे लाकर रख दिया। डॉक्टर आज बहुत थका था। इसलिए वह सिर्फ दूध पीकर ही सो रहा।

दीप की लौ के आगे बैठा नवीन दूध-रोटी खा रहा है। मुँह नमकीन करने को सोनिया ने उसे आलू का भुरता भी दिया है। खाने में वह स्वाद लेता है कि नहीं, यह तो सोनिया को पता नहीं परन्तु उसे इतना तो पता जरूर है कि दिन-भर के थके-माँदे नवीन को स्वादिष्ट खाना खिलाकर वह इस समय अपने को धन्य-धन्य समझती है। नारी की इस भावना को तो वही समझे जो नारी का नेह पा चुका हो। नवीन तो नारी-शून्य है, अनारी है।

"थाने पर अधिकार जमाने के दिन आपने जैसा अनुशासन दिखलाया वैसा ही अनुशासन आज भी दिखाएँ। आज आप लोग सिपाही हैं। आप में सैनिक की दृढ़ता और अनुशासन रहे। भारतमाता की जय बोलिये और फिर कतार बनाकर सरकारी ऑफिसों की ओर बढ़ जाइए। हम अँग्रेजी राज की तमाम निशानियों को मिटा दें। जिन सरकारी इमारतों पर अँग्रेज़ी साम्राज्य का झंडा फहराता हो उसे गिराकर तिरंगा फहरा दें।"

नवीन की वाणी में चुनौती थी, ललकार थी। घर-घर से जनसमुदाय उमड़ता चला आया। आम्रकुञ्ज में फिर हजारों की तायदाद में भीड़ इकट्ठी हो गई। हरएक के हाथ में तिरंगा लहरा रहा था। सभी रजिस्ट्री ऑफिस की ओर बढ़ चले। नवीन उनकी सदारत कर रहा था। 'गाँधीजी की जय', 'अँग्रेजो, भारत छोड़ दो' के नारे बुलन्द हो रहे थे। इस अपार जनसमुदाय को देखकर रजिस्ट्रार साहब की पिल्ही चमक गई। रामू भगत को आगे आते हुए देखकर वह उसकी ओर झट दौड़ गये और बड़ी आजिजी से पूछा—"बाबा, बात क्या है?"

"कोई बात नहीं! हम आज़ाद हिन्द के सिपाही हैं। तुम आज हमारे अफ़सर नहीं, सेवक हो। यह रजिस्ट्री ऑफिस हमारा है। इस पर हमारा तिरंगा फहरायेगा।"

"मगर ब्रिटिश सरकार—"

"ब्रिटिश सरकार को दफ़ना दिया हमने, अगर बाधा डालोगे तो तुम्हें भी दफ़ना देंगे—" एक सुर में हज़ारों ने आवाज बुलन्द की।

रजिस्ट्रार साहब को काटो तो खून नहीं। झट तिरंगा लिए कोठे पर चढ़ गये और उसे फहराकर अभिवादन किया। तालियाँ गड़गड़ा उठीं। सभी अपनी सफलता पर फूले नहीं समाये।

रजिस्ट्री आफिस पर कब्जा कर लेने के बाद सभी वेटेरिनरी, एकसाइज़ तथा डी० आई० के आफिसों की ओर मुड़े और उनपर भी अधिकार जमाकर तिरंगा फहरा दिया। फिर सरकारी कर्मचारियों की लाल पगड़ी उतरवाई, गाँधी-टोपी पहनाई और उनके हाथों में भी तिरंगा थमाकर 'भारतमाता की जय' कहलवाया।

नवीन की भुजायें फड़क रही थीं। डॉक्टर भी उत्तेजित था। चार ग्रामीणों के कन्धों पर कुर्सी रखवाकर नवीन उसी पर चढ़कर गरजने लगा—

"भाई मेरे, आज से इन दफ्तरों के कर्मचारी आज़ाद हिन्द सरकार के कर्मचारी ठहरे। इन पर हाथ उठाना अपने-आप पर वार करना होगा। हमारे ऑफिस का एक भी कागज तितर-बितर न हो। रामू और एतवारू ऑफिस की निगरानी करेंगे। सफलता हिम्मत के हरम की बाँदी है। सिपाहियो, ऐसी ही हिम्मत बनी रहे। फिर तो देश तुम्हारा होगा—सारा समाज तुम्हें इज्जत की निगाह से देखेगा। बोलो, युवक-हृदय-सम्राट् जवाहर की जय! जयप्रकाश की जय!"

जय-जयकार से आकाश गूँज उठा। नवीन को आदर ही नहीं, भक्ति भी मिली। वह आज युनिवर्सिटी का एक विद्यार्थी नहीं, जनता का नायक है। वह अपनी जिम्मेदारी भी समझता है और समझ-बूझकर कोई कदम उठाता है। वह जानता है कि जवानों में जोश है मगर उसे यह भी पता है कि जोश के साथ होश भी जरूरी है।

आज की घटना हमीरपुर के इलाके से अँग्रेजी राज के नाश का प्रतीक बन गयी। हमीरपुर के रामू भगत, एतवारू, मँगरू तथा निजाम अपने को आजाद हिन्दुस्तान के सेनानियों की श्रेणी में मानने लगे। नवीन ने आकर उन्हें नई शक्ति दी—नई दिशा दी। कल जो वे जनता के सामने किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो खड़े थे, आज एक संकेत पाते ही बिजली की तरह जनता के बीच चमक रहे हैं।

बेर डूबते-डूबते सभा भंग हुई। सभी अपने-अपने गाँव की लीक पकड़ घर की ओर बढ़ चले। नवीन और डॉक्टर हमीरपुर की ओर बढ़े। पीछे-पीछे रामू और मँगरू भी चल पड़े। डॉक्टर ने सिगरेट का एक कश लेकर जरा गम्भीर होकर कहा—"भगैतजी, आन्दोलन अब जोर पकड़ रहा है। अब हमें एक ऐसी एजेन्सी कायम करनी चाहिए जिससे और इलाकों की खबर भी हमें मिलती रहे। बाहर से सम्बन्ध रखने के लिये अखबार मँगाये जायँ। एक बैटरी-सेट रेडियो भी चाहिये। रात में खबर सुनना जरूरी है। भारत की इस क्रान्ति का असर संसार के अन्य अंचलों पर भी पड़ेगा।"

नवीन—"डॉक्टर, मैं तो सोच रहा था कि एक साइक्लोस्टाइल भी खरीद लेनी चाहिए। कहाँ क्या हो रहा है, इसे जताने के लिए तथा जनता को सही रास्ता बताने के लिए "न्यूज-बुलेटिन" हर हफ्ते निकालना चाहिए

और हमारे पास कार्यकर्त्ताओं का एक जत्था हो जो इन बुलेटिनों को जिले के हर कोने में पहुँचा दे। क्यों भगतजी, आपकी क्या राय है ?"

"भैयाजी, आप ठीक कहते हैं। जनसमुदाय की मनोवृत्ति के चलते कभी-कभी ऐसी विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि बड़ा-से-बड़ा नेता भी उसे सम्भालने में असमर्थ हो जाता है। हमें परिस्थितियों पर नियन्त्रण रखना ही चाहिए। कहीं बहक न जायँ हमारे लोग........। आपको चौरी-चौरा काण्ड की बात याद ही होगी। क्या होने जा रहा था और क्या हो गया। इसलिए हमें सदा चौकस रहना है कि कहीं हमारे माथे पर कलंक का टीका न लग जाय।"

मँगरू—"हाँ, बाबूजी, बात आप ठीक कहते हैं, यह हिन्दुस्तान है। अक्सर महाबीरी झंडे के चलते यहाँ खून तक हो जाता है। गाँवों के नेता खड़े ही रहते हैं मगर जब माथे पर भूत चढ़ता है तो कुछ भी नहीं सूझता। भेड़ की तरह सब पिल पड़ते हैं।"

नवीन—"डॉक्टर, जैसे-जैसे यह आन्दोलन जोर पकड़ रहा है, हमारी जिम्मेवारी भी बढ़ती जाती है। लाखों की तायदाद में आते हुए इन जोशीले चेहरों को देखकर मैं खुश भी होता हूँ और सशंकित भी। नेताओं की गिरफ्तारी पर क्षुब्ध इस भोली जनता को हमने जरा भी गलत रास्ता दिखलाया तो कहर हो जायेगा। परिस्थिति की गरिमा को समझो डॉक्टर! अक्सर जिसमें जोश होता है उसमें होश नहीं। मगर हमें तो दोनों को एक साथ लेकर चलना होगा।"

डॉक्टर की आँखें दूर क्षितिज में विलीन होती हुई लाली पर अँटकी थीं।

"क्या खबर है ज्ञानचन्द ? सुना है आज फिर बड़ा शोरगुल हुआ।"

"दीवानबहादुर, कुछ न पूछें। आज तो गजब हो गया। कल थाना लुट गया और आज सरकारी ऑफिसों पर कब्जा हो गया।"

"एँ, यह मजाल! आखिर इन बलवाइयों ने अपने को क्या समझ रखा है!"

डेविड बच्चा—"पापाजी, मुझे तो सिर्फ एक ही चिन्ता है, कहीं सी० आई० ई० का खिताब...."

"अजब बुद्धू हो तुम भी। अरे, जहन्नुम जाय ख़िताब और किताब, यहाँ तो जान ही पर आफत है, कहीं हमपर भी वार न हो जाय!"

ज्ञानचन्द—"हुजूर, सेफ़ में से बन्दूकें बाहर निकाल दी जायँ और पहरेदारों को कड़ी ताकीद कर दी जाय कि वे रात-भर चिल्लाकर पहरा दें। मामला संगीन है।"

"मगर सवाल तो यह है कि हम इन बलवाइयों को रोक कैसे सकते हैं? इसका कुछ रास्ता निकालना चाहिये।"

"सरकार, आप इन्हें न छेड़ें। बर्रे के छत्ते में उँगली डालना खतरे से

खाली नहीं। फिर ये आप पर ही टूट पड़ेंगे। फोन के तार काट लिए गए हैं, रेल की लाइनें उखाड़ दी गई हैं। जिलाधीश के यहाँ कोई खबर भी नहीं जा सकती। हम बुरे फँसे हैं।"

"ज्ञानचन्द, एक रास्ता निकल सकता है। यह तो बताओ, इस आन्दोलन की नेतागिरी गाँव का कौन व्यक्ति कर रहा है?"

"हुज़ूर, रामू भगत ही तो इनका नेता है।"

"अजी, वह तो अदना-सा आदमी है। खरीद लो उसे। आज रात बुलाओ उसे अपने घर पर और कुछ ले-देकर उसे यहाँ से रवाना कर दो। फिर तो मामला आप ठंडा पड़ जायेगा। उसके दोस्तों को भी कुछ चटा दो। यही रास्ता है, दूसरा कोई नहीं। बस, रिंग लीडरों को फोड़ लो।"

× × × ×

रात में रामू भगत के दालान में कार्यकर्त्ताओं की मीटिंग जमी है। सभी अपनी-अपनी दास्तान पेश कर रहे हैं। सोनिया एक ओर रोटियाँ सेंक रही है किन्तु उसके कान हैं नवीन की बातों पर। नवीन बोले जा रहा है—"प्यारे भाइयो, तुम्हें पाकर तो मैं धन्य-धन्य हो गया। तुम्हारे जैसे बहादुरों को पाकर कोई भी देश गर्वोन्नत होगा। अगर ऐसी ही लगन रही तो जीत हमारे गले में हार बनकर झूलेगी। तुमने तो सचमुच कमाल कर दिखाया। मगर प्यारे, जोश में होश को न गँवाना।"

अभी विचारों का आदान-प्रदान चल ही रहा था कि दीवानबहादुर के चपरासी ने बाहर से आवाज दी—

"भगतजी! पाव लागूँ—"

सभा स्तब्ध हो गई।

"क्यों, क्या बात है बुलन्दी ?"

"सेक्रेटरी साहब बुला रहे हैं।"

"इतनी रात गये, क्यों, खैरियत तो है ?"

"हाँ, सब ठीक ही है।"

"अच्छा तो तुम बढ़ो, जरा कुछ खाकर अभी आता हूँ।"

कुछ देर तक फिर बातें होती रहीं। सभी अपनी-अपनी राय रख रहे थे। जब रात कुछ ज्यादा बीत चली तो सभा भंग हुई। भगतजी कुछ जल्दी-जल्दी खाकर लालटेन उठा ज्ञानचन्द के घर की ओर लपके और ढिबरी जलाकर डॉक्टर और नवीन हाथ-मुँह धो रोटी-दूध खाने लगे।

डॉक्टर—"सोनिया के हाथ में बड़ा स्वाद है नवीन! जो कुछ भी बना देती है वह बड़ा लज़ीज उतरता है। देखो, आलू-भंटे की तरकारी कितनी स्वादिष्ट है!"

"सोनिया के हाथ की सेंकी रोटियाँ, उसका गर्म किया हुआ दूध तथा उसकी बनाई हुई सब्जियाँ—यानी सभी चीजें मुझे बेहद पसन्द हैं, बेहद पसन्द हैं। जिसके हाथों में तिरंगा लहराता है उसकी उँगलियों में सभी करिश्मे समा जाते हैं!"

नवीन हँस पड़ा।

डॉक्टर ने जोरों का ठहाका लगाया और सोनिया अपनी साड़ी में छिपती हुई लाज से गड़ गई।

खाना खत्म कर डॉक्टर सिगरेट का कश लेने लगा, नवीन ने भी एकाध कश लिए। फिर दोनों जम्हाई लेने लगे। थके तो थे ही, दोनों झट विस्तर पर पड़ रहे। हवे में ऊमस थी। डॉक्टर बाहर बरामदे में सोया और नवीन

सरदर्द की शिकायत करता आलसवश घर ही में पड़ा रहा।

सोनिया आग बुझाकर दूसरे दालान में सोने गई। पर उसे जाने क्यों नींद नहीं आती। कभी सोती, कभी जागती, फिर घर में घुसती। इसी तरह वह कुछ देर तक परीशान-सी रही। आखिर मलिये में गुलरोगन का तेल लिये अनायास वह पहुँच ही तो गई नवीन के सिरहाने और वहीं बैठकर उसके सर में तेल लगाने लगी। नींद में नवीन ने उसे देखा, फिर अपने ही में खोया-खोया सो गया।

"सीता, मजबूरियाँ जो न कराएँ, परिस्थितियाँ जो न दिखायें, मैं तो मजबूर हूँ।"

"छिः ! रुपए के चलते तुम अपने को बेंच दोगे, देश के साथ गद्दारी करोगे ? अपने हाथों अपने मुख पर कालिख पोतोगे ? और जब देर-सवेर कभी आँखें खुलेंगी तो देख पाओगे आइने में अपना मुख ?"

"समय देखो, आदर्श न बको सीता !"

सीता को बिजली छू गई—"हाय रे करम, एक दिन तुम किस ऊँचाई पर थे और आज कितने नीचे आ गिरे ? यदि मैं जानती कि तुम एक दिन नावदान के कीड़े हो जाओगे तो मैं अपने आँचर के खूँट को इस गन्दगी में क्यों बोरती ?"

"वह जमाना कुछ और था सीता, आज कुछ और है। रोटी के चलते इन्सान बेटी भी बेंच देता है। तुम तो—"

सीता क्रोध में काँपने लगी—"बस करो, जबान पर ऐसी बातें न लाओ। तुम बोल जाते हो और शर्म मुझे आती है।.........मुझे रोटी नहीं चाहिए, मुझे पैसे नहीं चाहिए। निकल भागो इस फन्दे से। मजूरी करेंगे, पसीना

बहायेंगे''''मगर तुम्हारी देह, हाय री तुम्हारी देह''''यह तो शॉर्कस्कीन का सूट उतारने से रही। मेरा बकना ही फिजूल है।''''''''खैर, इस देश के लिए रामू भगत को पैसे के पाश में न बाँधो। इतनी तो दया करो मुझ पर।''''"

"सलाम सेक्रेटरी सा'ब!"—रामू की आवाज सुनाई पड़ी। सीता की बात वहीं की वहीं रह गई। ज्ञानचन्द दौड़ा बाहर चला आया और बड़े ही आदर-भाव से भगत को अपने ड्राइंगरूम में बिठलाया। फिर सिगरेट बढ़ाया तो रामू को आश्चर्य एवं झिझक दोनों हुई। वह 'ना-ना' कहता मुस्करा उठा।

ज्ञानचन्द ने छेड़ा—"भगत जी, आज-कल काम में आप बझे रहते हैं। भेंट-मुलाकात सब बन्द है।"

"आप भी खूब निकले! देश में आग लगी है और आपको शीतलता ही शीतलता मिल रही है। भारतमाता हमारी आहुति चाहती है। हमलोग उसी में—"

"भगतजी, मैंने आज जाना कि इतनी उम्र गए आप आज भी नादान हैं। अजी, यह तो एक हवा है—इधर से आई, उधर गई।"

"जी नहीं साहब, यह एक हाहाकार है, एक चीत्कार है जो अँग्रेजी राज की कील उखाड़ कर धर देगी—इसे बतास न समझें।"—रामू की त्योरी चढ़ने लगी।

ज्ञानचन्द झट सँभल ही तो गया, बोला—"भगत जी, कुछ भी हो, मगर आप क्यों इस तूफान में बहे जा रहे हैं?"

"आप भी कैसी बातें करते हैं—सेक्रेटरी साहब! आप अपना फर्ज नहीं समझते तो क्या मैं भी—"

अपनी खीझ को दबाते हुए ज्ञान ने कहा—"भगतजी, दूर देश के फर्ज के लिए सामने घर के फर्ज से मुँह मोड़ लेना भी तो कोई होशियारी नहीं? जो आँख के आगे है वह सबसे पहले है। आपको इस साल बेटी ब्याहनी है—"

"हाँ, वह तो है ही, मगर देश के सामने घर की—"

"नहीं-नहीं, ऐसी ही लगन बनी रहे, किन्तु यह तो बताइये कि बिटिया का ब्याह कहीं तय हो पाया?"

"नहीं साहब, तय होकर अँटका है—"

"क्यों?"

"वही, एक हज़ार के लिए।"

"तो यह कौन बड़ी बात है? दीवानबहादुर तो कह रहे थे कि सोनिया हमारी बेटी है। उसकी शादी की चिन्ता मुझ पर है। उसका सारा खर्च मैं बर्दाश्त करूँगा—"

"यह तो उनका बड़प्पन है।"

"हाँ, वे बहुत तत्पर हैं। उनको यह सारी बातें मालूम हैं। आज शाम को उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि भगतजी को ख़जाने से एक हज़ार दे दो। गिन लीजिए इन नोटों को। सौ-सौ के दस हैं।"—ज्ञानचन्द ने एक हज़ार के नोट रख दिये मेज पर।

"ना-ना, बाबूजी, मेरा धर्म न बिगाड़ें। मुझे माफ़ करें। मैं गरीब हूँ। आप अमीरों की दुनिया से दूर हूँ। मुझे माफ़ करें—" कहता हुआ रामू झट उठा और ज्ञानचन्द के लाख रोकने पर भी हाथ जोड़े रात की अँधियारी में खो गया। एक हज़ार के नोट वहीं पड़े-पड़े हवे में फड़फड़ाते रहे।

गए रात गिरता-पड़ता रामू जब घर पहुँचा, तो सभी सो गये थे। वह भी चुपचाप अपनी चारपाई पर लेट रहा। मगर बेचारे को नींद कहाँ! उसे तो लुत्ती लग गई थी। 'आखिर दीवानबहादुर ने अपने को क्या समझ रखा है! मैं····मैं सन् इक्कीस में जेल गया, सन् तीस में लाठी-जेल सब सहा, इतने दिनों से देश की अनवरत सेवा करता रहा—और यह चला है मुझे रुपयों की तजल्ली दिखाकर खरीदने? रखे रह अपने रुपये! मेरे पास जो धन है उसे तू क्या खरीद भी पाएगा? हुँः! उसकी कीमत तो तेरी तमाम दौलत से ज्यादा है। अरे मूरख, अपनी तो बचा—दूसरे की दौलत की हवस पीछे करना!'

रामू भगत ने तमाम रात हुक्का गुड़गुड़ाते और अपने-आप में बड़बड़ाते बिता दी।

भोर होते ही डॉक्टर ने सवाल पूछा—"कहिए भगतजी, रात बड़ी देर से आये। खैरियत तो है?"

उधर नवीन भी पूछ बैठा—"बाबा, रात कैसी कटी?"

फिर सोनिया क्यों कर चुप रहती, पूछ ही बैठी—"बाबा, सचमुच बहुत

देर गए आए। सेक्रेटरी साहब के यहाँ भी कुछ खाने लगे थे क्या? सुना है, सीता बहन बड़ी अच्छी पकवान बनाती हैं!"

"ओह होः! तुमलोगों ने तो सवालों की झड़ी लगा दी।···हुँ-हुँ-हुँः, ज्ञानचन्द मुझे खरीदने चला था बेटी,—खरीदने। एक हजार रुपये के नोट लाकर मेरे सामने रख दिये और कहा कि दीवानबहादुर ने दिए हैं सोनिया की शादी के लिए। हुँः! मेरी बेटी बिनब्याही रह जायेगी—कोई बात नहीं, मगर मैं कभी भी ब्रिटिश सरकार के एक टट्टू से पैसे लेकर शादी नहीं करूँगा! हुँः! पैसे दिखाकर इस आन्दोलन को बन्द कराना चाहता है। मक्कार-गद्दार! कर तू गद्दारी, देख लूँगा तू भी कितनी गद्दारी कर सकता है! और मैं···मैं तो देश-सेवक हूँ, मेरी तो हड्डी भी देश के हेतु जल जायेगी, राख बन जायेगी, लेकिन तू—देशद्रोही तू, तेरा तो····"—मारे गुस्से के वह काँपने लगा।

डॉक्टर सिगरेट के कश पर कश लिए जा रहा है, सोनिया आँखें फाड़-फाड़कर सारी बातें सुन रही है, किन्तु नवीन तमक उठा—"गोली मारो इन मक्कारों को—लक्ष्मी के लाड़लों को! काश ये भारतमाता के सच्चे सपूत बनने का सौभाग्य प्राप्त करते! ये दया के पात्र हैं भगतजी, दया के। इन मदहोशों, बेवकूफों को यह पता ही नहीं कि जन-आन्दोलन के इस तूफान को कोई भी शक्ति दबा नहीं सकती—कुचल नहीं सकती। यह वह धारा है जिसे कोई पलट नहीं सकता, यह वह आवाज़ है जिसे कोई अनसुनी नहीं कर पायेगा, यह वह जलजला है जो अँग्रेजी राज तथा उसके पिट्ठुओं के तमाम किलों की जड़ों को हिलाकर धर देगा। यह कोई आकस्मिक नहीं किन्तु जन-जागरण का एक स्वाभाविक आह्वान है। और यदि कोई भी व्यक्ति इसे दबाने की कोशिश करेगा तो वह अपनी कब्र आप खोदेगा।"

नवीन एक सुर में जाने क्या-क्या कह गया। सोनिया उसके चेहरे पर के भावों के प्रभाव के उतार-चढ़ाव पर बड़े चाव से आँखें गड़ाए रही। नवीन जब कभी उतावला होकर उबल पड़ता तो सोनिया उसे एकटक निहारती हुई अपनी पलकों में खो जाती।

"वाह रे भगवान के बनाये ये बेवकूफ लोग!"—कहता हुआ नवीन ज़ोर से हँस पड़ा और दातून ले बाग की ओर निकल गया।

डॉक्टर ने फिर पूछा—"बातें मुझे कुछ समझ में नहीं आ रही हैं; भगतजी, यह ज्ञानचन्द है कौन बला?"

"दीवानबहादुर का सेक्रेटरी है—जवान-सा छोकड़ा।"

"जवान-सा! तब तो बीवी भी जवान होगी?"

"हाँ, हाँ, डॉक्टर साहब, वह तो बहुत सुन्दर-सुशील है मगर बेचारी घर में पड़ी-पड़ी सड़ती रहती है।"

सोनिया ने भी रामू का साथ दिया—

"हाँ, डॉक्टर साहब, मैंने भी सुना है कि वह बेचारी बड़ी देशभक्त है मगर यह मक्कार तो दीवानबहादुर का पैसा खाकर और दूसरों को भी पैसे चटा-चटाकर अपने साथ-साथ सबको बर्बाद कर रहा है। किन्तु उसकी पत्नी ने तो गाँधी-जयन्ती के अवसर पर मुझ से १००) की खादी ली थी।"

भगतजी ने कहा—"सोनिया जाकर उसके हाथों बेच आई थी। इस पर भी ज्ञानचन्द भीतर-ही-भीतर कुड़कुड़ाया रहता था। उधर तो सोनिया बराबर उसके यहाँ जाती थी। मगर इधर मैंने ही उसे जाने से मनाकर दिया। वह गरीबों को नीच निगाह से देखता है। अपने को बड़ा शानियल समझता है। फिर हमारा-उसका रिश्ता कैसा? सच कहता हूँ, वह तो अपने को दीवान-

बहादुर का चचा समझता है। कुछ सूरत भी तो अच्छी होती! दाहिने गाल पर काला माशा तो उसके काले दिल का निशान बना बैठा है।"

"ठीक-ठीक, आज समझा। हाँ, तो आप हैं हमारे ज्ञानी मुन्शी। खूब निकले बेटे, खूब! अच्छा दीवानबहादुर को फाँसा है! उधर सीता फँसी और इधर दीवानबहादुर फँसा। बड़े मुन्शी निकले दोस्त! जीते रहो, जियो, जियो,……"

डॉक्टर ने सिगरेट का फिर से कश लिया।

"मैं तो कुछ नहीं समझ पाया डॉक्टर साहब! आखिर एक सुर में आप क्या कह गये? क्या कोई पहेली……"

"नहीं बाबा, नहीं। अरे, यह ज्ञानी हमारा स्कूल का साथी है। बचपन से ही दिल का काला था और इसके जैसा धूर्त तो चिराग़ लेकर ढूँढ़ जाइये आपको कहीं न मिलेगा। इसलिए हमलोगों ने इसका नाम मुंशी रख छोड़ा था। मैट्रिक तक मेरा-इसका साथ रहा। फिर यह कृषिशास्त्र पढ़ने चला गया और बाद में अपने प्रोफेसर की ही बेटी सीता को फँसाकर उससे शादी कर ली। उसकी बड़ी लम्बी कहानी है। सीता को मैं खूब जानता हूँ, मगर इधर तो एक युग हो गये उससे भेंट हुए। जाने अब कैसी हो गई होगी। मैं तो समझता था यह ज्ञान और सीता कोई और हैं। अब सारा पर्दा खुल गया। कॉलेज के दिनों हज़रत क्रान्तिकारी बने थे और सीता को अपने समाज की नायिका बनाया था। इसी चकमे में उसे फँसा भी लिया था। सीता कट्टर राष्ट्रवादी थी, हो सकता है उसे फँसाने के लिये ही उसने यह सारा जाल रचा हो। एक तो वह बचपन का ही एक काइयाँ दूसरे मिल गया काठ का उल्लू दीवानबहादुर—बस, कोढ़ में खाज! फिर जो कुछ वह करे सब थोड़ा है!"

"अजी, कोई है यहाँ ? ओ मुंशी, ज्ञानचन्द ! मुंशी,....ज्ञान...! अजीब हाल है, कोई जवाब नहीं देता। दरवाजे खुले हैं, मगर घर में कोई नहीं। सब-के-सब मर गये या कहीं भाग गये ? तो लो मुंशी, सुन लो...तुम जहाँ कहीं भी हो, मैं चला....।"

सतीश लौटने लगा तो उसे लगा जैसे खिड़की के परदे की ओट से कोई झाँक रहा हो। चूड़ियों की खनक भी सुनाई पड़ी और सायँ-सायँ की आवाज़ भी। फिर एक छोकरा दौड़ा बाहर आया और बोला—"ओ बाबूजी, रुकिए, रुकिए। साहब बाहर गये हैं। अन्दर ड्राइंगरूम में बीवी जी बुला रही हैं।"

सतीश लौट पड़ा। ड्राइंगरूम का परदा हटते ही कोने में सकपकाई लकीर-सी खड़ी सीता पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसके मुँहं से हठात् निकल पड़ा—"सीता, यह तुम हो ?"

सीता की आँखें भरी थीं।

"फूल-सी वह तुम्हारी देह आज मुरझाकर सूखी टहनी-सी हो गई है। आखिर यह क्या कर लिया तुमने ?"

सतीश सोफ़े पर बैठ गया। सीता भी आँसू पीती बगल के गद्दे पर बैठ गई। बोली—"कहो, आज सदियों बाद कैसे याद किया? क्यों, तुम तो भूल ही गए एकबारगी……"

सीता अब सँभल चुकी है।

"भूला तो नहीं था, मगर तुम्हें ढूँढ़ निकालना ही मुश्किल था। आज हम कैसे मिल गये, यह भी एक अचरज है, अचरज। कहो पिछले दिन कैसे गुज़रे?"

"बस, यों ही गुज़र गये। बस वही—'सुबह होती है शाम होती है; उम्र यों ही तमाम होती है।' हाँ, मेरी शादी की कहानी तो तुम जानते ही हो। समझी थी, मैं किसी ऊँचाई पर चढ़ने जा रही हूँ, एक आदर्श की चोटी पर बैठ रही हूँ, मगर यहाँ तो वह चोटी फँसी कि न गला छूट पाता है न जान से पल्ला। सोचा था क्या और होकर रहा क्या! तुम्हारा दोस्त मुंशी—जो एक दिन मेरे लिए आदर्श का जीता-जागता स्वरूप था—शेर के चमड़े के अन्दर का छिपा गीदड़ निकला। जीवन की सच्चाइयों पर खड़ा होते ही वह इस कदर पानी-पानी हो गया कि आज उसे पहचाने तो कोई! कल का देशभक्त आज अँग्रेजी राज का पक्का हिमायती बन बैठा है। मेरे सारे सपने चूर-चूर हो गये सतीश! मैं क्या थी और आज क्या होकर रह गई! खादी की साड़ी में लिपटी आज मैं ही इस घर में उसकी आँखों की किरकिरी हो गई हूँ..."

"बस करो सीता, तुम्हारी मुसीबत की कहानी सुनी नहीं जाती। मेरा तो दिल दहल गया। मुंशी इस तरह गहरे गर्त्त में गिर जायेगा—मुझे तो स्वप्न में भी ऐसा अन्देशा नहीं था। अच्छा, आजकल हजरत तशरीफ़ कहाँ रखते हैं?"

"दीवानबहादुर नेमचन्द का नाम तुमने सुना होगा। आज-कल आप उनके प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। आज सुबह ही उनकी बेटी मंजुला को लेने शहर गये हैं!...जाने दो, सब तो मैं अपनी ही कहती रह गई। अब तुम तो बताओ, आज कैसे भूले-भटके यहाँ आ पहुँचे?"

"मैं इस गाँव में आज हफ्तों से हूँ। गाँधीजी ने जिस दिन सत्याग्रह का शंख फूँका उसी दिन हम सब युनियन से बाहर हो गये और गाँवों की ओर चल पड़े। मैं और मेरा दोस्त नवीन इसी गाँव को इकाई मानकर काम कर रहे हैं। हम रामू भगत की कुटिया में टिके हैं। आज उसीसे पता चला कि ज्ञानी भाई यहीं हैं।

भगत का नाम सुनते ही सीता शर्म से गड़ गई। रात की घटना फिर आँखों पर नाच गई। झट सँभलते हुए उसने कहा—"बड़ी कृपा की तुमने। आज तुम्हें पाकर मुझे प्रकाश मिल गया। इस आन्दोलन में मैं भी कुछ काम आ सकूँ तो अपने को धन्य-धन्य समझूँगी।"

सतीश कुछ देर के लिए चुप हो सिगरेट का कश लेता रहा और सीता अन्य-मनस्क-सी बैठी अपने आँचल के खूँट में अपनी उँगलियों को लपेटती रही।

गम्भीरता के वातावरण को भंग करते हुए फिर सतीश ने बड़ी नर्मी से कहा—"क्या तुम सचमुच हमारी सहायता करोगी? कर सकोगी? उँहुँक्! मुझे तो विश्वास नहीं होता।"

"यकीन मानो सतीश, मैं इस जीवन से ऊब गई हूँ। यहाँ की हर चीज से मुझे घृणा हो गई है। जी चाहता है, कब निकल भागूँ। कहो तो मैं भी तुम्हारे साथ आन्दोलन में...."

"नहीं, नहीं, अभी इतने बड़े त्याग की माँग मैं तुम से न करूँगा। मैं तो बहुत मामूली चीज़ माँग रहा हूँ···"

"आखिर कहो भी···"

"बस, मुझे एक टाइपराइटर कहीं से ऊपर कर दो और दीवानबहादुर के ऑफिस से एक साइक्लोस्टाइल भी।"

"बस इतना ही? इन्हें तो मैं बात-की-बात में उड़ा दूँगी। तुम इतमीनान रखो। काम जल्द ही बन जायेगा।"

"नहीं, यह काम उतना आसान नहीं, जितना तुम समझती हो। इन चीजों पर लोगों की कड़ी निगाह रहने लगी है।"

"तुम फिक्र न करो। मुंशी के आने के पहिले ही मैं यह काम कर दूँगी। 'का नहिं अबला करि सके?'···और सीता के मुख पर मुस्कराहट की एक हल्की रेखा खेल गई। एक क्षण रुक कर वह फिर बोली—"अच्छा, यह तो बताओ, चाय पियोगे या नींबू का शरबत?"

"नहीं, कुछ नहीं—बस, एक गिलास सादा पानी।"

पानी पीकर सतीश चलता हुआ। सीता अपने षड्यन्त्रकारी काम की नियोजना में लग गई—भिड़ गई।

"कुछ सुना तुमने डॉक्टर ! गजब हो गया !....." सतीश के आते ही नवीन ने कहना शुरू किया।

"क्यों, क्या हो गया ?..."

"रामपुर गाँव से एक आदमी अभी-अभी खबर लाया है कि 'मेनरोड' के बड़े पुल को तोड़ने के लिए हजारों की भीड़ इकट्ठी हो गई है।"

सतीश चौंक पड़ा—"यह तो बड़ा बुरा हुआ। जोश में लोग होश में नहीं रहते। पुल टूटने पर इधर का सारा यातायात गड़बड़ा जायगा। लोग भूखों मरने लगेंगे। फिर बरसात का दिन है। सभी रास्ते बन्द हो गये हैं। देर न करो। झट भगतजी तथा मँगरू को लेकर रपट चलो। हर हालत में इस काम को रोकना है।"

सोनिया भी जाना चाहती थी मगर नवीन ने उसे रोक दिया। समझाया कि घर खाली रह जायगा। वह मन मसोसकर रह गई। फिर धीरे-से उसने रास्ते में खाने के लिये बेसन के लड्डू साथ कर दिये।

नदी-नाले तथा गीले खेतों को पार कर नवीन की टोली रामपुर पुल के

करीब पहुँच गई। वहाँ कुदाल-फावड़े लिए हजारों की भीड़ इकट्ठी थी। पुल तोड़ने में काम लग गया था। कई-एक के हाथों में तिरंगे झंडे भी थे।

नवीन ने पहुँचते ही गरज कर कहा—"यह क्या खुराफात मचा रखी है आपलोगों ने ?"

मगर किसी ने उसकी एक न सुनी। उसने दूसरी आवाज लगाई तो कुछ-एक ने चिल्लाकर जवाब दिया—"तुम कौन हो हमें रोकनेवाले ? हटो यहाँ से। सरकार के खुफिया जान पड़ते हो।"

नवीन ने भगतजी की ओर मुड़कर कहा—"मामला संगीन है। सभी लोग जोश में मदहोश हो रहे हैं। कहिये, क्या किया जाय !"

"आप यहीं रहें, मैं अभी जाकर पलटू को पकड़ लाता हूँ। वही इनका लीडर है। उसे ही सारी बातें समझानी होंगी।"

भगतजी ने जाकर पलटू को पुकारा—"भीड़ से बाहर निकलो, नवीन बाबू आए हैं।" पलटू झट कुदाल छोड़कर बाहर की ओर लपका। दो-चार बगलवाले भी उसी ओर बढ़े। कानों-कान नवीन बाबू के आने की बात भीड़ में फैल गई। सभी उसी ओर बढ़ चले। काम स्थगित हो गया। नवीन भीड़ से घिर गया। फिर दो जवानों ने उसे कन्धों पर उठा लिया तो नवीन ने गरजकर दुतकारा—"मुझे आपके जोश तथा हिम्मत की कद्र है, मगर जोश में होश को खो देना कहाँ की बुद्धिमानी है ? यह तो पागलपन है—सरासर पागलपन। पुल तोड़कर आप कुछ सरकार को तो कमजोर करते नहीं, अपना ही रास्ता बन्द करते हैं। आपही कहें, इसी पुल को पार कर बरसात में इस इलाके में खाने-पहिनने तथा जीवन की अन्य जरूरी चीजें आती हैं या नहीं ? यह तो आपके यातायात का मुख्य साधन है। इसे तोड़कर आप

अपना ही नुकसान करेंगे। प्रोग्राम ऐसा न हो जो अपने ही लोगों की जान ले ले।"

इसपर कुछेक ने चिल्लाकर कहा—"मगर हमें तो बताया गया है कि पुलों को तोड़ दो, रास्ता बन्द कर दो।"

"हरगिज नहीं। यह प्रोग्राम ग़लत है। बस, जितना टूटा है उतने ही पर छोड़ दें, वरना ख़तरा है। हम तुरत ही हाथ का लिखा एक अख़बार निकालेंगे जिसमें आपको सही रास्ते और प्रोग्राम बताये जायँगे। फिर उन्हीं के मुताबिक आपको चलना है।"

एकाएक नवीन की नज़र उस पार खड़ी मोटरगाड़ी पर गई। गाड़ी का शीशा भी चूर था। डॉक्टर और नवीन भीड़ को चीरते हुए उस ओर लपके। देखा, स्टीयरिंग पर एक महिला बैठी हैं। शीशे के चूर से उनकी साड़ी भर गई है और ललाट पर एक जगह कुछ खरोंच भी आ गई है। वह सीट में दुबकी बैठी हैं और पीछे एक सूट-बूट धारी सज्जन सीट के नीचे छिपे जा रहे हैं। उनकी पेशानी पर पसीने की बूँदें साफ़ हैं।

डॉक्टर ने ज्ञानी को तुरन्त पहिचान लिया। वह झट पुकार ही तो बैठा—"कहो भाई मुन्शी, तुम यहाँ छिपे बैठे हो, अम्याँ यार, खूब मिले!"

ज्ञानी झेंपता-सहमता बाहर निकला और बोला—"दोस्त, खूब मिले, वरना हम तो····"

"अम्याँ यार, खादी को तलाक देकर यह विदेशी ड्रेस!"

ज्ञानी झेंपकर रह गया। इसी बीच नवीन ने आगे का दरवाजा खोलकर, उस भद्र महिला को नीचे उतारा और उन पर गिरे शीशे के चूर को झाड़कर अलग किया।

"आखिर आपका यह शीशा कैसे टूटा ?" नवीन ने बड़ी आजिजी से पूछा ।

"अजी साहब, कुछ न पूछिए; खैर, जो हुआ सो····हुआ, अब मुझे किसी तरह घर····।"—महिला ने खीस पीते हुए कहा ।

"घर तो आप चली ही जायेंगी, मगर बात तो कहती जायँ ।"

इसी बीच एक युवक चिल्ला उठा—"बाबूजी, मेम साहब ने हमारे साथ बर्त्ताव अच्छा नहीं किया—गाली देने लगीं । फिर हमारा भी गुस्सा —।"

नवीन ने बात काटते हुए कहा—"देखो, यह ग़लत बात है। नारी पर हाथ उठाना हमारी संस्कृति के विरुद्ध बात है। आप हमारी बहन हैं। माफ़ी माँगो ।"

"..........................."

"अच्छा बहन जी, इनकी ओर से मैं माफ़ी माँगता हूँ। आप माफ़ करें। अब चली जायँ। रास्ता साफ़ है।"—नवीन ने भीड़ को हटाते हुए कहा ।

डॉक्टर ने ज्ञानी का पीठ थपथपाया और हँसते हुए कहा—"ज्ञानी भाई, हिम्मत और बुद्धि से काम लिया करो ।···अच्छा, फिर मिलेंगे ।"

सीता ने टाइपराइटर तथा साइक्लोस्टाइल कैसे उड़ाया, इसकी तो बड़ी लम्बी कहानी है। हाँ, इतना तो ज़रूर है कि यह काम सीता ने बड़ी दिलेरी से किया और इस चोरी के बाद दीवानबहादुर तथा उनके अमलों के कान खड़े हो गये। यदि उस समय पुलिस जैसी कोई चीज़ हमीरपुर में रहती तो दीवानबहादुर गाँव के घर-घर की तलाशी करवा डालते मगर मौजूदा हालत में इस घटना की खबर डिस्ट्रीक्ट मैजिस्ट्रेट को देकर चुप बैठ गये।

इधर सतीश ने गाँव के बाहर स्थित मँगरू की फूस की मड़ई में टाइपराइटर तथा साइक्लोस्टाइल को रखवाया और वहीं से रातोरात 'बुलेटिन' तैयार कराकर गाँवों में सुबह होते-होते बँटवा देता। उसमें देश-विदेश की खबरें रहतीं, नये-नये संकेत रहते तथा क्या करें और क्या न करें—इसका भी जिक्र रहता। हर काम को अहिंसात्मक रूप में किया जाय, इस बात पर विशेष जोर दिया जाता।

एक दिन 'टी' टेबिल पर ही खीस पीती मंजुला ने कहना शुरू किया—

"पापाजी, इन शैतानों के तो पर जम गये हैं जैसे। हमारी ही मशीनों

से ये बुलेटिन छापकर हमारी सरकार के खिलाफ़ लोगों को भड़का रहे हैं। भला इस तरह की हरकतें कबतक बर्दाश्त की जा सकती हैं?"

दीवानबहादुर चुप।

मंजुला ने ज्ञानचन्द की ओर रोष के साथ रुख किया—"क्यों जी, ज्ञानचन्द, तुम्हारे आदमियों ने आजतक मशीनों का पता तक नहीं लगाया। क्या खूब है व्यवस्था तुम्हारी! तुम्हें क्या परवाह? तुम लोगों को तो केवल पैसे हड़पने आता है, काम-धाम तेरह-बाईस। याद रखो, महीने के अन्दर यदि मशीनें ऊपर न हुईं तो तुम नौकरी से बरखास्त।"

ज्ञानचन्द थर्रा उठा।

मंजुला जब नाराज़ होती तो चंडिका का रूप धारण कर लेती। कभी लिपस्टिक-भरे होठों को चिबाती और कभी तमककर बरामदे में टहलने लगती। ज्ञानचन्द पर बिगड़कर वह डेविड की ओर मुड़ी—

"और पापाजी, आपके टुकड़ों पर पलनेवाला यह डेविड तो हैरम का हिजड़ा हो गया है। जब मशीनें चोरी गईं तो यह यहीं खर्राटे ले रहा था, जगा तक नहीं। वाह, खूब गार्ड निकले! डाल दीजिए इसे अस्तबल में। सोफे पर सोते-सोते इसकी चर्बी कुंद हो गई है; लेजी डॉग....।"

पापाजी बुत।

मंजुला ने फिर कुरेदा—"तो पिताजी, आखिर आपने कुछ सोचा?"

"ना, ना, मेरा दिमाग काम नहीं करता।"—दीवानबहादुर हाथ मलते हुए कह गये।

"फिर मिलिटरी बुलवाइए। इस तरह हाथ पर हाथ रखने से तो काम न चलेगा। उस दिन मेरी इज्जत पुल पर मिट्टी में मिल गई, जान जाते-जाते

बची, और फिर मशीनें भी चोरी चली गईं; मगर आपके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।"

"बेटी, मिलिटरी का नाम न लो। वे खौफ़नाक जीव, भयानक लोग!" —दीवानबहादुर काँप उठे।

"अजीब हाल है आपका; कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ?"

—मंजुला वहीं तनकर टहलने लगी। वह कभी ज्ञान पर, कभी डेविड पर बरसती रही। दोनों भींगी बिल्ली बने कुनैन की गोलियाँ निगलते रहे।

जब ज्ञान घर पहुँचा तो उसे चिन्तित देखकर सीता पूछ बैठी—"क्यों? आज बहुत गिरे हुए जान पड़ते हो। क्या दरबार गर्म था?"

"कुछ न पूछो, गुलामी बड़ी बुरी चीज़ है।"

"यह तुम्हें आज पता चला?"

"जाने कौन मरदुआ टाइपराइटर-साइक्लोस्टाइल चुरा ले गया और किसके सर यह ठीकरा फोड़ा जा रहा है। मंजुला देवी का हुक्म है कि अगर मशीनें नहीं मिलीं तो नौकरी से बरखास्त।"

सीता मन-ही-मन खुश हो गई। इस कफ़स से नजात पाने का उसे अच्छा मौका दीख पड़ा।

"बस, यही मौका है, निकल भागो इस पिंजड़े से वरना...."

"भूखों मरोगी सीता! रोटी-दाल के लाले पड़ जायेंगे।"

"इस गुलामी की जिन्दगी से खुली हवा ही पीकर जी लेना कहीं सुन्दर होगा।"

उस रात ज्ञान खा न सका। बगेरियाँ तथा बटेर की बिरियानी मेज़ पर ही सज कर रह गईं।

उधर रात की अँधियारी में सतीश साइक्लोस्टाइल चला रहा है। बाहर मँगरू तथा भगतजी पहरा दे रहे हैं। एक टिमटिमाती लालटेन के उजाले के सहारे सतीश बुलेटिन छापने में तल्लीन है। भोर होते ही परचे बँट जाते हैं।

भगत की कुटिया में दिन भर का थका नवीन चारपाई पर पड़ा करवटें ले रहा है। कभी-कभी 'आह' 'ओह' भी कर उठता है। उसके बदन में दर्द है। दिन भर दौड़ना, रात भर जागना। आखिर देह ही तो है। दूर बैठी सोनिया उसकी परीशानी को समझने की कोशिश में परीशान-सी हो रही है। फिर वह धीरे से उठी और कड़वा तेल लेकर उसके पैर में मालिश करने लगी। ऐसा करने से उसे बड़ी शान्ति मिली। नवीन की सेवा कर उसे, जाने क्यों, बड़ा संतोष होता है। नवीन कुछ देर बाद गहरी नींद सो गया। सोनिया उसका शरीर दबाती रही, जाने कबतक !

"डॉक्टर, लगता है जैसे देश में ज्वालामुखी फूट पड़ी है। हर ओर राष्ट्रीयता की लहर, हर दिशा में क्रान्ति की हू-हू करती धधक। विदेशी सत्ता तो मानो मिट गई।"

"मगर परिस्थिति कुछ साफ़-साफ़ नहीं दीख पड़ती। हमारे नेताओं को घेरे एक रहस्य का जाल-सा बिछा है। हम सभी आज भी अन्धेरे में ही भटक रहे हैं। बहुत टटोल कर भी प्रकाश का पता नहीं पा रहे। देश को राह दिखानेवाला कोई नहीं, सभी अपनी-अपनी राह चल रहे हैं।"

"राह कोई भी हो मगर बुनियाद जबतक सत्य तथा अहिंसा पर खड़ी है, सफलता हमारी होकर रहेगी।"

"देखो............"

डॉक्टर सिगरेट का कश ले रहा है तथा नवीन संध्यासमय कार्य-कर्त्ताओं की सभा में भाषण देने का प्रोग्राम बना रहा है।

कि एक आदमी दौड़ा आया और हाँफते हुए पूछा—"क्या नवीन बाबू आप ही हैं? भगतजी की कुटिया यही है?"

"क्यों, खैरियत तो है ?"—नवीन ने कुछ अकचका कर पूछा ।

"नहीं बाबू , रानीगंज में अँग्रेज-पुलिस इन्सपेक्टर को कुट्टी-कुट्टी काट कर उसके मांस के टुकड़ों को नदी में दहला दिया है तथा अब वहाँ के दारोगाजी को भी लोग मारने की तैयारी कर रहे हैं। वह भी अँग्रेजी ही खून के हैं। उनके घरवाले त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। जल्दी चला जाय, नहीं तो…"

"नवीन, दियारे के लोग बड़े भयानक होते हैं। ताव पर चढ़ गये और बात-की-बात में बर्छी निकल गई…हूँ…" —डॉक्टर ने कहा।

"यह बहुत ही बुरा हुआ डॉक्टर !…खैर, झट चलो। अहिंसात्मक लड़ाई लड़ना—और वह भी देशव्यापी पैमाने पर—सचमुच एक टेढ़ी बात है।" —वह गम्भीर हो गया।

नदी-नालों को पार करता नवीन एक वेग में चला जा रहा है। साथ में डॉक्टर तथा भगतजी भी हैं। जिस गाँव से पार होता उस गाँव से भी कुछ लोग साथ हो लेते। कुछ ही दूर जाते-जाते उसके साथ एक बड़ी भीड़ जुटकर चल पड़ी।

रानीगंज का थाना हजारों आदमियों से घिरा था। सभी थानेदार के मकान को घेरे उसे ललकार कर बाहर निकालने की कोशिश कर रहे थे। बड़ी भयानक परिस्थिति थी। मारे गये इन्सपेक्टर का परिवार रातोरात भागकर कहीं चला गया था। पुलिसवाले अपनी-अपनी जान लेकर चम्पत हो गए थे।

उस मकान तक पहुँचना तो नवीन के लिए भी असंभव हो गया। आखिर उसने भगत और डॉक्टर को भीड़ के अन्दर घुसकर लीडरों को किसी तरह बुला लाने का आदेश दिया।

मगर इतनी बड़ी और उतावली भीड़ में कौन क्या है—का पता पाना आसान काम नहीं था। बस, दोनों ने चिल्लाना शुरू किया—"आइयो, नवीन बाबू पधारे हैं। नवीन बाबू का भाषण होगा—भाषण होगा।"

जब यह आवाज जनता के कानों तक पहुँची तो सभी नवीन बाबू की ओर बढ़े और थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि नवीन बाबू चिल्ला-चिल्लाकर बोल रहे हैं—"देखिये, आपने अँग्रेज इन्सपेक्टर को नहीं मारा, अपने-आप को मारा, इस आन्दोलन की पीठ में छूरा भोंक दिया। महात्मा गाँधी को जब यह खबर मिलेगी तो उन्हें बड़ी चोट पहुँचेगी। वह आन्दोलन को उठा लेंगे और अनशन कर देंगे। आपने अपने अस्त्र को ही बर्बाद कर दिया। अहिंसा ही आपका अस्त्र था। सोचिये, हमें अँग्रेजी सत्ता से नफरत है न कि अँग्रेज-जाति से। गलत जोश में आकर आप अपने-आपको भूल गये। यह अच्छा नहीं हुआ। खैर, अब भी सम्हलिये। बन्द कीजिए यह खूँरेजी का प्रोग्राम। अभी आप थाने पर तिरंगा झण्डा फहराकर अलग हट जायँ। मैं दारोगा के घर में जाकर उसे तथा उसके परिवार को निकालकर किसी सुरक्षित स्थान पर भेज दूँगा।"

वह जोश-खरोश की त्योरी पलक मारते छिप गई। नवीन के आदेश को जनता ने सर-आँखों पर रखा। भीड़ छँट गई।

नवीन अँग्रेज दारोगा के क्वार्टर के अन्दर गया! उसके सभी परिवार-वाले आतंक से अधमरे पस्त पड़े थे। नवीन उनके लिए मसीहा बनकर आया। दारोगा की माँ ने उसके गालों को चूम लिया।

"मुझे बड़ा दुःख है कि इन पागलों के चलते आपको इतनी तकलीफ़ हुई। इन्सपेक्टर की हत्या हमारे लिए एक बहुत ही शर्मनाक घटना है। उसके

लिये तो हमें प्रायश्चित्त करना होगा। खैर, अभी आप बैलगाड़ियों पर सवार हो बाहर चले जायँ। आपको सुरक्षित पहुँचाने के लिये 'स्कोर्ट्स' भी जायेंगे। खाने-पीने का सारा सामान साथ किये देता हूँ। और हाँ, थाने का सारा कागज-पत्तर यहीं बन्द करवा दें। उन्हें कोई भी हाथ नहीं लगायेगा।"—नवीन ने दुःखी परिवार को सान्त्वना देते हुए कहा।

रानीगंज थाने को सुरक्षित रखने की सारी व्यवस्था कराकर नवीन हमीरपुर लौट आया। आज खाने के बाद काफी देर तक दूर-दूर से आए हुए कार्यकर्त्ताओं से बातें होती रहीं। सभी यही कहते कि इन्सपेक्टर की हत्या एक लज्जाजनक घटना हो गई। इस आन्दोलन के नैतिक आधार को आघात पहुँचायी है इस घटना ने। जब आधी रात के बाद सभी सोने चले गए तो नवीन कलम लेकर इस घटना पर अपनी टिप्पणी लिखने बैठा। उसे नींद हराम थी। अपनी जिम्मेवारी का उसे पूरा ज्ञान था। इस अवांछनीय घटना ने उसके दिमाग में विचारों का एक बवण्डर पैदा कर दिया। यह तो साफ़ हो गया कि बुलेटिन निकलवाने भर से ही अब काम नहीं चलने का। आम जनता को सही रास्ता दिखाने के लिए कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ानी होगी। उन्हें अहिंसात्मक आन्दोलन के स्वरूप की पूरी-पूरी शिक्षा देनी होगी।

दीवानबहादुर के महल में आज बड़ी सरगर्मी है। अँग्रेज इन्सपेक्टर की हत्या से मंजुला तथा दीवानबहादुर बहुत चिन्तित हैं। घटनाओं पर कैसे काबू किया जाय, इस पर जोरों से बहस छिड़ गई है। दिन-भर की बहस के बाद यही तय पाया कि पहले नवीन से बातें की जायँ।

मंजुला नवीन को इतनी प्रधानता देने को कतई तैयार न थी मगर दीवानबहादुर के इसरार पर वह राजी हो गई। दीवानबहादुर चाहते थे कि बातचीत के साथ-ही-साथ चाय का भी प्रोग्राम रहे, मगर मंजुला ने इसे नामंजूर कर दिया।

संध्यासमय जब नवीन और सतीश दीवानबहादुर के दरबार में हाज़िर हुए तो उन्हें बैठने को बेंच ही मिली, कुछ कुर्सी नहीं। मगर देश पर मर मिटनेवाले उन नौजवानों को यह तौहीनी ज़रा भी नहीं खली। इन छोटी बातों के लिए उनके दिल-दिमाग़ में जगह भी कहाँ थी? एक लम्बी भूमिका के बाद दीवानबहादुर ने बड़ी आजिजी से कहा—"प्यारे दोस्तो, क्यों अभी

जिन्दगी बर्बाद कर रहे हो ? तुम्हारे सामने तो अभी सारा भविष्य खड़ा है। तुम क्यों इस पागलपन में बहे जा रहे हो ?"

"दीवानबहादुर, यह पागलपन भी स्वाभाविक ही है। क्रान्ति की यह उमड़ती हुई नदी कोई एकाएक तो उमगती नहीं बढ़ चली। यह भी तो गंगा की तरह गंगोत्तरी से निकली और चट्टानों को चीरती, समय और स्थल को पार कर विशाल बन गई।"

"बातें न बनाओ मेरे नौजवान दोस्त ! आग और पानी से नहीं खेलना चाहिये। अभी भी समय है, इस कफस से निकल भागो।"

"यह कफस नहीं है दीवानबहादुर, हर कफस के लिए कफ़न का कारखाना कहिये !"—डॉक्टर ने तीखे व्यंग से कहा।

हर तरह से हिलाकर जब दीवानबहादुर को कोई भी रास्ता नहीं सूझा तो उन्होंने आखिरी दाँव फेंका—"सरकार में मेरी पूछ है, बड़े-बड़े अफसरों तक मेरी पहुँच है, यदि चाहो तो सरकारी शुल्क दिला दूँ और तुम दोनों चैन की वंशी बजाते इसी माह लंदन के लिए प्रस्थान कर दो। भाई, विलायत की डिग्री तुम्हारे जौहर में चार चाँद लगा देगी और सच मानो, बिना पद के आदमी का कोई रुतबा नहीं। तुम्हारे ही भले के लिए कह रहा हूँ।"

"लाख-लाख शुक्रिया ! बस, बनी रहे यह पूछ, मिलता रहे टाइटिलों का यह रुतबा ! हम तो गाँधीटोपी की खाकसारी पर अपने को निछावर कर चुके हैं !"

और जबतक दीवानबहादुर कोई और रंगीन पत्ता पेश करते, वे दोनों धड़फड़ उठे और झट बाहर निकल गये। मंजुला उनके इस व्यवहार पर

खीझ उठी, क्रोध से तिलमिला गई। पर करती क्या? बस, दाँत पीस कर खीस पीती रह गई। हाँ, उसके अन्दर प्रतिहिंसा की भावना जाग उठी।

रात के सवा आठ बजे हैं। बाहर लॉन में बैठे दीवानबहादुर ह्विस्की की चुस्की ले रहे हैं। ला-करोना सिगार का धुआँ हवा में मिलकर तह-ब-तह खिल रहा है। मंजुला शेरी पी रही है। ज्ञानचन्द और डेविड भी दरबारे ख़ास में विराजमान हैं। इस आन्दोलन को रोकने का कोई रास्ता ही नहीं निकल रहा था। इसी पर चर्चा छिड़ी थी। आग चारों ओर फैल चुकी थी और उसको बुझाने की सबसे अधिक चिन्ता थी तो दीवानबहादुर को ही। भला ऐसे कुदिन में सरकार की मदद न करें तो वह फिर किस लायक रहेंगे! मगर कोई सूरत सूझे भी तो? जब किसी का दिमाग काम नहीं करता तो मंजुला अपने मस्तिष्क की अनुपम शक्ति द्वारा सारी समस्यायों का हल निकाल कर धर देती। डिनर टेबिल पर जाने के पहिले मंजुला ने साफ़-साफ़ जता दिया कि जिलाधीश को झट खबर देकर मिलिटरी मँगा ली जाय और एक मिलिटरी सर्जेएट के अधीन यह सारा इलाका कर दिया जाय। दीवानबहादुर को अब यह बात जँच गई और रातोरात एक खत जिलाधीश के नाम ज्ञानचन्द द्वारा भेज दिया गया। डिनर पर से मंजुला जब उठी तो उसका अंग-अंग फड़क रहा था—उल्लास से नाच रहा था और वह मन-ही-मन खुश होकर कहती, "अब मिलिटरी नवीन की धज्जियाँ उड़ाकर धर देगी। हुँह, बड़ा लीडर बनने चला है! बस, कल ही मुँह के बल आ गिरेगा। मंजुला कुछ ऐसी-वैसी औरत नहीं।"

आज सुबह सतीश चाय पीकर दालान में बैठा ही था कि एक छोकरा दौड़ा चला आया और बोला कि सीता माँ जी झट बुला रही हैं। सतीश धड़फड़ाकर उठा और चल पड़ा।

सीता सतीश का इन्तज़ार ही देख रही थी। उसके आते ही बोल उठी—"आज कितने दिनों बाद तुम्हें बुलाने का मौका हाथ लगा। कहो, अच्छे तो हो?"

"जीवित हूँ। थकान से बदन टूट रहा है।"

"तो लो, एक प्याली चाय पी लो। बड़ी सुन्दर चाय उतरी है।"

चाय का सिप् लेते हुए सतीश कहता गया—"तुम्हारी सहायता की मुझे बड़ी कद्र है। तुमने इस आन्दोलन को बड़े बुरे समय में सहारा दिया है। मैं तुमसे मदद बराबर चाहूँगा। तुम्हारी आत्मीयता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, ऐसा जान पड़ता है मुझे।

सीता मन-ही-मन खुश हो रही है।

फिर सतीश ने बात की लहरों को पलटते हुए कहा—"सीता, यह तो बताओ, मुंशी ज्ञानचन्द कहाँ लापता हैं ?"

सीता उसकी सीट के पास सरक गई और सायँ-सायँ बोलने लगी—"देखो, किसी को खबर न हो। वह जो मंजुला है न, बड़ी कलमुँही है। मिलिटरी बुलाने के लिए उसने ज्ञानचन्द को जिलाधीश के यहाँ भेज दिया है। यही खबर देने को मैंने तुम्हें बुलाया है। तुम दोनों सतर्क हो जाओ। अब खैरियत नहीं।"

सतीश की आँखों के सामने बिजली कौंध गई, मगर उसकी चमक को सीता नहीं भाँप सकी। उसने सतीश को अविचल, शान्त पाया। क्षण भर के गम्भीर मौन को भंग करते हुए सतीश ने हँसने की कोशिश करते हुए फिर कहा—"हम तो जान हथेली पर रखे तलवार की धार पर चल रहे हैं। हमारे सामने लक्ष्य पहले है, जीवन पीछे। देखना है जीवन और मृत्यु की इस आँखमिचौनी में क्या हाथ आता है ! फिर जो गुलामी की जिन्दगी का मोह-जाल तोड़ मौत को आलिंगन करने निकल पड़ा है उसे तलवार से मौत मिले या तोप से दोनों बराबर है। अजी, 'उसे डराते हो मौत से क्या, वह जिन्दगी ही से डर चुका है !"

"तुम्हारे भाग्य से मैं ईर्ष्या करती हूँ सतीश ! काश यह अवसर मुझे भी मिलता ! आज तो मैं ललचकर रह जाती हूँ। देखूँ, इस कफस से कैसे और कब निकल पाती हूँ। सोचा था क्या और कर रही हूँ क्या !"

सतीश ने देखा कि सीता फफक रही है। वह प्याला रखकर दीवार की ओर निर्निमेष देखता रहा। कुछ क्षणों के बाद जब वह कुछ शान्त हुई तो सतीश ने गम्भीर होकर कहा—"भ्रम में न पड़ो सीता ! जो सब्र से रहता है

उसे निराश नहीं होना पड़ता और फिर तुम तो इस आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रही हो। तुमने इतना सामान दिया और सदा पैसे से भी सहायता देती ही रहती हो। किसी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए इस तरह की मदद का भी कम महत्व नहीं। तुम पैसा दो, प्रेरणा दो और हम पुरुषार्थ दें, प्राण दें—फिर इस त्याग और बलिदान की सम्मिलित शक्ति के आगे कौन ऐसी सत्ता है जो घुटने न टेक दे ? तुम जो भी कर रही हो उसका मोल किसी मानी में कम नहीं।"

सीता अब तक आँसू पीकर सँभल गई थी।

"हाँ, यही सोचकर तो मैं अपने को शान्त करती हूँ। देश-सेवा की लौ आज भी मेरे हृदय में वैसी ही प्रज्वलित है जैसी शादी के पहले थी। वह मुझे घर के आँगन को तोड़-फोड़ कर विश्व के प्रांगण में कूद पड़ने को सदा उभाड़ती रहती है। देखो—"

"समय का इन्तज़ार करो सीता! घबड़ाने की कोई बात नहीं। सच कहता हूँ, अभी हमें सीता नहीं चाहिये, पैसा चाहिये। गाँव-गाँव दौड़ना है, कोने-कोने में संगठन कायम करना है। जिस दिन हमें तुम्हारी जरूरत होगी, हम तुम्हें स्वयं खींचकर बाहर निकाल लेंगे। बस, तुम सदा तैयार रहो।"

सतीश और सीता में बहुत देर तक बातें होती रहीं। कॉलेज के रंगीन जीवन से लेकर आज के कठोर संघर्षमय क्षणतक का सिंहावलोकन हुआ। फिर जब वह जाने को उठ खड़ा हुआ तो उसके हाथों में २००) रुपये के नोट रखते हुए सीता ने कहा—"यह मेरा 'कन्ट्रीब्यूशन' है।"

"धन्यवाद। इससे बड़ा काम होगा।···देखो, फिर कब भेंट होती है। मगर हमें अपना लगाव सदा कायम रखना है। हाँ, तुम अपने छोकरे को

इस काम के लिए सिखा-पढ़ाकर ठीक कर लो। आन्दोलन को सफल बनाने के लिए गुप्तचर-विभाग की बड़ी आवश्यकता होती है···यदि ऐसा न हुआ तो हम फेल कर जायेंगे··· ।"

सीता ने इस बार केवल 'हाँ' कहा। उसकी आँखों के कोने में फिर आँसू छलक आये थे।

नवीन कार्यकर्त्ताओं की सभा में कुछ बोलने के लिए अपना भाषण तैयार करने में व्यस्त था। इतने ही में सतीश हँकासे-प्यासे की तरह पहुँचा। उसकी परीशानी को देखकर नवीन ने झट पूछा—"क्यों भाई डॉक्टर, आज तुम बड़े बेचैन दीख पड़ते हो। क्यों, खैरियत तो है?"

"कुछ सुना तुमने? गज़ब हो गया।"

"आखिर बात क्या है?"

"मंजुला ने मिलिटरी बुला ली है। मुन्शी जिलाधीश से मिलने शहर चला गया। अब बड़ा भयानक दमन-चक्र चालू होगा।"

नवीन कुछ देर चुप रहा, फिर मुस्कुराते हुए बोला—"तो यह कौन-सी नई बात है? मैं तो पहले ही भाँप गया था कि सिविल-सरकार जब फेल करेगी तो मिलिटरी अपने हाथ में बागडोर थाम लेगी। कोई हर्ज नहीं, हमें तो अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते ही जाना है।"

"देखो,...गोलियाँ चलेंगी, बम बरसेंगे, लोग मौत के घाट उतरेंगे। ऐसी प्रताड़ना के सामने..."

सोनिया कोने में खड़ी इन बातों को सुन रही थी। वह काँप उठी। उसकी कल्पना के परे की यह बातें थीं।

फिर नवीन ने हँसते हुए कहा—"तो इसमें घबड़ाना काहे का ? जो सामने आयेगा वह देखेंगे। यदि मारे गये तो सोनिया हमारे मज़ार पर दीया दिखाकर तथा दो-चार बेले के फूल लुढ़काकर गा दिया करेगी—'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले !' क्यों, सोनिया, यह रस्म-अदाई तो कर दोगी न ?"

सोनिया की आँखों के सामने जैसे अन्धेरा छा गया।

"अच्छा डॉक्टर, चलो। सभा की देर हो रही है। फिर बातें होंगी।"

दोनों चल दिये।

सोनिया पुआल की चटाई पर लेटे-लेटे सोच रही है—'गोलियाँ चलेंगी, बम गिरेंगे, लोग मौत के घाट उतरेंगे, शहीदों के मज़ार बनेंगे, मुझे गाना पड़ेगा। गाना···गाना···ओह !···या भगवन् !···"—उसने अपनी उँगलियों से आँखें बन्द कर लीं।

भगतजी के दालान में भीड़ इकट्ठी है। टिमटिमाती लालटेन के सामने बैठा नवीन कहे जा रहा है—'भाइयो, अब समय कम है। आज दिन-भर विचार-विमर्श के बाद यही तय पाया है कि हम सब परोक्षरूप में अब इस आन्दोलन को चलावें। इस गाँव को तो आज रात में ही छोड़ देना है। रातो-रात नदी पार कर उस पार चला जाना है। मिलिटरी को मालूम है कि भगत का घर क्रान्तिकारियों का अड्डा रहा है। इसलिए यहाँ तो वे जरूर ही धावा बोलेंगे। उसपार किसी सुदूर गाँव में हमारी झोपड़ी बने और वहीं से काम शुरू हो। हरएक कार्यकर्त्ता को अपना कार्यक्रम पूरा करते जाना है। अब हमारी जवाबदेही और भी बढ़ गई है।"

भगतजी—"मेरा ख्याल है कि हम रामपुर में अपना अड्डा कायम करें। वह नदी के पार, सड़कों से दूर, एक अकेली बस्ती है। उसकी विजनता तथा प्राकृतिक शोभा उसकी खसूसियत है। क्यों भई मँगरू, तुम्हारा क्या ख्याल है?"

मँगरू—"पक्की राय है भगत! इससे अच्छी दूसरी कोई जगह न मिलेगी।"

बातों का सिलसिला अभी जारी ही था कि पुल पार से एक स्वयंसेवक दौड़ा आया और हाँफते हुए कहने लगा—"नवीन बाबू, चार ट्रक गोरे अभी-अभी दीवानबहादुर के बँगले की ओर गये हैं। जल्द ही यहाँ छापा पड़ेगा, कोई देर नहीं। अब यहाँ से चल ही देना है।"

सभा में खलबली मच गई। सभी उठ पड़े। नवीन ने झट ऑर्डर दिया—"कोई वैसी बात नहीं। हम तो सिपाही हैं। सदा तैयार। बस, नदी-तीर की ओर बढ़िये। एक के सर पर टाइपराइटर रखवायें और एक के सर पर साइक्लोस्टाइल।"

फिर नवीन तैयार होने को अन्दर घुसा। सोनिया रोटी सेंक रही थी। मगर दिल में तो हलचल मची थी, दिमाग़ इधर का उधर हो जाता था, इधर रोटियाँ जल-जल जाती थीं।

भगत को बुलाकर नवीन ने पूछा—"हाँ, तो सोनिया का क्या होगा?"

"मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता। कहें तो किसी के साथ इसकी मौसी के घर इसे भिजवा दें।"

"क्या कहते हो डॉक्टर?"

"यह सब सोचने का अब समय नहीं। पहले झटपट निकल भागो। सोनिया अभी साथ ही चले। इस गाँव का कोना-कोना अभी घिर जायेगा।

फिर निकलना मुश्किल हो जायेगा।"

सोनिया को इस अस्थिरता में भी शान्ति मिली। सेंकी हुई रोटियाँ उसने झोले में रख लीं। जो सामान सर पर आया उसे सर पर, जो कन्धे पर आया उसे कन्धे पर और जो हाथ में आया उसे हाथ में ले तथा घर में ताला लगाकर यह टोली अँधियारी में नदी की ओर चल पड़ी। हाँ, सोनिया ने नवीन की जरूरी चीजों में से एक को भी न छोड़ा!

नदी के तीर पर नावें तो तैयार थीं मगर मल्लाहों ने सावधान किया—"मालिक, आँधी-पानी का सरंजाम तैयार हो रहा है। दूर कोने में बिजली चमक रही है। रात भी अँधेरी है।"

नवीन ने झट कहा—"कोई बात नहीं, खतरा ही हमारा जीवन है। नाव पर पाल चढ़ाओ।"

उधर नौकायें महा-अभियान को चल पड़ीं और इधर गोरों ने भगत, मँगरू तथा निजाम के घरों पर रातो-रात छापा मारा। मगर यह क्या ? कहीं किसी का पता नहीं। सभी घरों में ताला बन्द। किवाड़ों को तोड़कर वे अन्दर घुसे, मगर वहाँ भी कहीं कुछ नहीं। बस, दो-चार छपे हुए पर्चे हाथ लगे। 'केस' खड़ा करने के अभिप्राय से डी० एस० पी० ने उन्हीं को चुन लिया। फिर सर्जेन्ट कुछ गोरों को लेकर डी० एस० पी० के साथ नदी की ओर दौड़ पड़ा।

सभी नावें बीच नदी में जा चुकी हैं। जोरों का तूफ़ान उठा है। पानी भी मूसलधार बरसने लगा है। सर्जेन्ट ने सर्चलाइट फेंकी, देखा—बीच धार में नाव के पाल तूफ़ान में तिलमिला रहे हैं। बस, सर्जेन्ट ने उन्हें ही निशाना बनाकर गोली चलाने का हुक्म दे दिया। 'गूँ-गूँ' करती हुई राइफलें छूट पड़ीं।

पहले 'राउएड' में कई-एक मल्लाह घायल हुए। नवीन ने चिल्लाकर कहा—"पालों को खोल दो। नावों में छिप जाओ।"

"पाल खोलते ही नावें काबू के बाहर हो जायेंगी। फिर सभी जल के अन्दर चले जायेंगे।"—किसी ने आवाज़ लगाई।

"कोई हर्ज नहीं, जो डूबेंगे, डूबेंगे, बाकी तैरकर निकल जायेंगे।"—यह नवीन की आवाज़ थी।

पाल खुलने लगे। जोरों की हवा और वर्षा। उन्हें खोलना भी आसान नहीं। नवीन खड़ा हो अपने पाल की रस्सी काटने लगा।

तबतक दूसरा राउराड हुआ। एक गोली नवीन के बाँयें हाथ में आ लगी। कुल्हे से हाथ टूटकर लटक गया। अँधेरे में उसे कुछ भी समझ में नहीं आया। आखिर हाथ जवाब क्यों दे रहा है? बिजली चमकी तो देखा—खून। सोनिया को पुकारा—"हाथ में तौलिया बाँध दो। हाथ बेकाम हो गया।"

सोनिया काँप रही थी। प्रलय का दृश्य चारों ओर था। गोलियों की बौछार, हवा का हाहाकार, पानी मूसलधार तथा घनघोर अंधकार। इस अँधियारी में भला तौलिया कहाँ मिले? डॉक्टर भी दूसरी नाव पर था। उसने झट आँचल फाड़ कर नवीन के हाथ को बाँध दिया। अब नाव के पाल गिर चुके थे और सभी नावें बिना किसी नाविक के लहर के थपेड़ों पर किधर और कैसे बही जा रही हैं, यह किसी को भी पता नहीं। सब यही समझते हैं कि मौत की अँधेरी गुफा में सभी रोशनी तलाश रहे हैं। जीवन की आशा तो सभी खो ही चुके थे।

डूबती-उतराती नाव में अपनी चोट से मूर्च्छित पड़ा नवीन आज दुनिया की सभी खबरों से बेखबर है। वह कहाँ है, उसके साथ कौन है—उसे कुछ भी पता नहीं। हाँ, सोनिया कभी अपने शरीर और मन की सारी सत्ता से समेटे, अपने फटे आँचल की साया में सुलाये उस जीवित लाश को काँपती हुई निहारती और कभी आकाश की ओर गीली आँखों से देखती, मगर लाश

भी बेजवान और आकाश भी निरुत्तर। बस, चारों ओर घुप्प अँधियारी, भीषण तूफ़ान।

तूफ़ानों से टकराकर नावें किनारें आ लगीं। कुछ तो बीच में ही डूब चुकी थीं। साठ में बीस आजादी के दीवाने नदी के पेट में समा चुके थे। जो बचे थे उनमें डॉक्टर, भगत तथा मँगरू भी थे।

घायलों में नवीन की चोट बहुत गहरी थी। वह अर्द्ध मूर्च्छित अवस्था में था। भगत की राय थी कि उसे तुरत पास के ही गाँव के डिस्ट्रीक्ट-बोर्ड के अस्पताल में भरती करा दिया जाय, मगर डॉक्टर ने उज्र किया। उसका कहना था कि मिलिटरी इस गाँव पर भोर होते-होते ही धावा बोलेगी। इस लिए रातोरात रामपुर पहुँच जाना जरूरी है। हाँ, डॉक्टर को जगाकर अभी मरहम-पट्टी बँधा लेना ठीक होगा। दो-चार जने ही डॉक्टर के घर चलें, बकिये रामपुर के लिए सीधे प्रस्थान करें। सोनिया नवीन की उपचारिका बनाई गई।

क्रान्तिकारियों के इस जत्थे को ग्रामीणों ने हाथोंहाथ उठा लिया। अस्पताल के डॉक्टर ने बड़ी तत्परता से घाव पर दवा देकर पट्टी बाँधी और सरकारी नौकर होते हुए भी उसने कोई कसर उठा न रखी। उनके कार्यों से सभी परिचित थे तथा उन्हें साथ देने को सतत तैयार। जब वे रवाना होने लगे तो अस्पताल के डॉक्टर ने बड़ी आजिजी से कहा—"मैं रोज़ रात में आपके कैम्प में आकर नवीन बाबू की पट्टी बदल दिया करूँगा। आप जानते हैं, आज की हवा क्या है। जो कुछ करना है बड़े ही परोक्ष रूप से करना है। 'स्ट्रेचर' आज रात में ही लौट आना चाहिए।" फिर सोनिया की आँखों में आँसू देखकर उसने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"घबड़ाओ नहीं

बेटी, तुम्हारे नवीन बाबू को जान का खतरा नहीं है। सब ठीक हो जायगा। बस, तुम्हारी सेवा इनके घाव को भरने में मरहम से अधिक मददगार होगी।"

पता नहीं डॉक्टर ने सोनिया से ऐसी बात क्यों कही! शायद वह उसे कुछ और ही समझ बैठा। उसे क्या पता कि सोनिया तो नवीन की सेवा के लिए ही जान की बाजी लगाकर इस पार तक चली आई थी, और फिर सेवा-कार्य की निपुणता तो कोई उसी से सीखे।

रामपुर अहीरों का टोला है। सड़क से दूर, सारी शहरी सुविधाओं से रहित, बरसात में तो और भी दुनिया से अलग हो जाता है। यहीं एक कुटिया में कार्य-कर्त्ताओं का कैम्प खुला। दिनभर लगकर डॉक्टर ने अपना दफ्तर खड़ा कर दिया तथा दूसरे दिन सभी कार्यकर्त्ता अपने-अपने प्रोग्राम पर चल पड़े। कुछ कार्यकर्त्ता दफ़्तर के काम के लिये रख लिए गये। सबसे कठिन काम था नदी पार कर, प्रतिदिन शहर से सरकारी 'बुलेटिन' जो आज-कल अखबार की जगह बाजार में बिकता था, खरीद लाना।

सोनिया रात-दिन एक कर नवीन की अनवरत सेवा करती रही। सेवा का तो वह स्वरूप ही बन गई थी। नवीन से जब उसे फुरसत मिलती तो कैम्प के कार्यकर्त्ताओं का खाना बनाती। घर के वातावरण से दूर रहकर कार्यकर्त्ताओं को मालूम हो गया कि किसी कैम्प को सुचारु रूप से चलाने के लिये महिलाओं का सहयोग कितना आवश्यक है। सोनिया का नारी-रूप इस कैम्प में आकर पूर्णरूपेण निखर गया था। सेवा और प्रेम उसके कैम्प-जीवन के प्रमुख अंग बन गये थे।

हमीरपुर के आन्दोलन के इतिहास में मँगरू के इकलौते बेटे रामू तथा गोधन माली के बलिदान की कहानी अमर रह जायगी। मँगरू के मकान पर जब सर्जेन्ट ने हमला किया तो वीर रामू भाला लेकर अपने मकान के छप्पर पर चढ़ गया और वहीं से अपने भाले के निशान पर दो गोरों को उस पार पहुँचा दिया। मगर उसका तीसरा वार खाली चला गया। और तबतक खुद गोली का शिकार बनकर तड़पता अपने आँगन में गिरकर दम तोड़ दिया।

हमीरपुर में आग की लपटों को देखकर गोधन माली अपने घर की ओर दौड़ा चला जा रहा था। भोर ही से वह मन्दिर के लिये फूल लाने को बगीचे में गया था। उसे देखकर सर्जेन्ट ने झट पूछा—'टुम किडर ग्या ठा ?"

"हुजूर, हम फूल तोड़ने गया था।"

"ओ ! टुम पुल तोड़ने ग्या ठा—फायर !"

कुछ बोलने के पहले ही माली जमीन पर ढेर था। निर्दोष के खून से धरती लाल थी।

× × × ×

दीवानबहादुर के डाइनिंग हॉल में आज गोरी पलटन के अफसरों की दावत है। इस आयोजन की प्रमुख नायिक मंजुला है। शहर से अँग्रेजी खाने का सारा सामान मँगाया गया है। खास-खास शराब की बोतलें भी—मटर और फ्राँसबीन, टर्की और भेक्टी।

डाइनिगहॉल तथा ड्राइंगरूम की सारी बत्तियाँ जला दी गई हैं। बड़े-बड़े 'चैन्डलर' की रोशनी में मंजुला का 'मेक-अप' किया हुआ चेहरा और भी चमक रहा है। फिर उसके हृदय की खुशी उसकी आँखों में समाकर नाच उठी

है। मेजर हक्सले तथा उनके साथियों के आते ही हँसी के फव्वारे छूटने लगे। मंजुला पूरे 'फॉर्म' में थी आज। दीवानबहादुर की दीवानी बेटी की अकड़ के भला क्या कहने! मिलिटरी की जीत को वह अपनी जीत समझती थी। अपने दिमाग की कूवत का उसे दिमाग था। शराब ढालकर जब मेजर हक्सले का दिमाग सातवें आसमान पर पहुँचा तो मंजुला की पीठ को थपथपाते हुए उसने गर्व से कहा—"तुम्हारे इसरार पर हमने 'मुभमेन्ट' को दबाकर 'क्रश' कर दिया। देख ली मेरी ताक़त.... ?"

"यह तो मैं पहले ही से जानती थी। डैडी ही फिजूल घवड़ा रहे थे।"

"नहीं-नहीं, दीवानवहादुर का घबड़ाना भी विल्कुल ठीक था। मामला बहुत खराब हो चुका था। यह तो गोरी पल्टन की बहादुरी कहिए कि इतनी जल्दी स्थिति पर काबू हो गया, वर्ना आज हम कहाँ के रहते— ?"

दीवानबहादुर ने नहले पर दहला देते हुए कहा—"मेजर साहब, अँग्रेजी पल्टन की बहादुरी तो सदा से मशहूर है। यह तो कहावत ही हो गई है कि आखिरी लड़ाई सदा हमारी सरकार ही जीतती है।"

"दैट इज़ राइट दीवानबहादुर, दैट इज़ राइट !"

कुछ देर तक वातावरण शान्त रहा। केवल शराब की चुस्की चलती रही, सिगरेट का धुआँ उड़ता रहा। शान्ति को भंग करते हुए फिर दीवान-बहादुर ने कहा—"दो गोरे बहादुर जवानों की मृत्यु की कहानी कभी भूली नहीं जा सकती। बड़ी दुखद घटना रही वह।"

"कोई बात नहीं दीवानबहादुर ! हम एक हथेली पर जिन्दगी और दूसरी हथेली पर मौत लिये चलते हैं—जो हाथ लगे। दोनों में हम खुश हैं।"

"आखिर जीवट का नाम ही तो जिन्दगी है !"—दीवानबहादुर ने दाद दी।

मंजुला ने शराब का एक पेग और बढ़ाया। मंजुला के 'हेल्थ' के लिये 'विश' करके मेजर ने फिर कहना शुरू किया—"देखो मंजुला, आज हिन्दुस्तान में जितनी फ़ौज है उतनी पहले कभी भी नहीं थी। आज हम हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारियों को चुटकी में मसल देंगे। वह दिन दूर नहीं जब इस आन्दोलन को देशभर में कुचलकर फिर सब ओर हम अपना आधिपत्य जमा लेंगे; मगर याद रहे, उन दो गोरों की मौत की कीमत बड़ी महँगी चुकानी पड़ेगी इस गाँव के निवासियों को।"

"ओफ! बड़ी दर्दनाक घटना रही वह...!"—मंजुला ने गहरी परीशानी जाहिर करते हुए कहा। फिर मेजर ने सिगरेट का लम्बा कश लिया और अपने चौड़े ललाट पर परीशानी की लकीर खींचते हुए कहा—"नवीन का पता लगाना बहुत जरूरी है दीवानबहादुर, वही छोकरा सारे फ़साद की जड़ है।"

"मेजर हक्सले, आप हतोत्साह न हों। उसका पता अवश्य लगेगा। मेरे खुफिया काम कर रहे हैं। आप भी चौकन्ना रहें। यदि वह पकड़ जाय तो इलाका शान्त हो जाय। यह कोई जनता का आन्दोलन नहीं, यह तो चन्द जवान छोकरों की बदतमीजी है।"

मेजर और उसके साथियों ने 'क्वाइट राइट' कहकर ताईद की.।

इसी बीच डेविड पियानो पर बैठकर कोई कड़ी बजाने लगा। बस, मेजर में फुर्ती उफना उठी। कुर्सी और मेज की कतारें दीवार से सटा दी गईं और मंजुला तथा मेजर हॉल के बीच में थिरकने लगे। मेजर के साथियों ने गुनगुनाना शुरू किया और दीवानबहादुर भी अपने ढंग से ताल देने लगे।

डिनर टेबिल पर सपर की डिशें रखी हैं मगर इस राग-रंग की धुन में,

नाच-गान के आगे खान-पान की सुधबुध किसे है ?

हमीरपुर की झोपड़ियों में हाहाकार मचा है, फूस के छज्जों की आग अभी भी सुलग रही है, मँगरू की नई पतोहू की माँग धुल गई तो उसकी आँखों में जैसे बरसात उमड़ आई है, रोते-रोते गोधन माली की औरत की हिचकियाँ बँध गई हैं, मगर इमारत की अमारत इतरा रही है, इठला रही है, नाच रही है, गा रही है। उसके कोने-कोने-से हँसी के फव्वारे छूट रहे हैं, उसकी ईंट-ईंट से राग-रंग फूट रहा है।

एक ओर हू-हू-हू-हू, एक ओर ही-ही-ही-ही ! यह कैसी विडम्बना, यह कैसी लीला ! हाय राम !

"कुछ सुना तुमने डॉक्टर ? हमीरपुर बस्ती की हालत····?"—नवीन की वाणी में एक दर्द था।

"नहीं तो। क्या हुआ ?" डॉक्टर सतीश ने परीशानी जाहिर की।

"अजी, सरकार ने सामूहिक जुर्माना वसूल किया है। और वह भी महज़ दो घण्टे में, गोली के जोर पर—डराकर, धमका कर। प्रताड़ना की हद हो गई !"

डॉक्टर मौन है। सोनिया नवीन के कटे हुए हाथ में धीरे-धीरे तेल की मालिश कर रही है। उसकी निष्ठा-भरी सेवा के सहारे नवीन अब स्वस्थ हो चला है।

"यही नहीं, जिस गाँव में हमारे पर्चे मिल जाते हैं या जिस रास्ते का तार कटा मिलता है उस गाँव की ख़ैर नहीं। बस, झट गोली चल गई और पैसे वसूल लिए गये। पैसा नहीं दिया तो गाय-बैल भी हाजत में। अजीब हाल है। और, जानते हो, यदि योहीं किसी ने उड़ा दिया कि मैंने कल अमुक व्यक्ति के घर में रात बिताई तो फिर उसकी भी शामत आ गई। बहू-बेटियों

की अस्मत लूटी गई और घर खाक में मिला दिया गया। श्री जयप्रकाश के भाग निकलने से जो उम्मीद बँधी थी वह भी उनके पकड़ जाने से पस्त हो गई। अपने ही लोग उनके पकड़ जाने के कारण बन गये। हाय री यह धरती!"

"मगर जयप्रकाश के पकड़ जाने से नफ़रत की आग तो और भी भड़क उठी। यह तो आन्दोलन को और भी बल देगा।"

"हाँ, सो तो ठीक है, मगर मेरे चलते जब निर्दोषों की हत्या हो जाती है तो मुझे मार्मिक पीड़ा होती है।"

"तो आखिर आप कहना क्या चाहते हैं?"

"यही कि अब समय आ गया है कि मुझे आत्मसमर्पण कर देना चाहिये। इस इलाके में आन्दोलन सुचारुरूप से संगठित हो गया है और मेरे जाते ही दूसरे-तीसरे अनेकों इसकी बागडोर को थाम लेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है। फिर मेरे जाने से कुछ उत्तेजना—कुछ प्रेरणा ही मिलेगी—हिम्मतपस्ती नहीं।"

सोनिया की आँखें सजल हो आईं। एक अज्ञात आशंका से वह हिल-सी गई। डॉक्टर भी विचलित हो गया। मगर नवीन दृढ़ था, शान्त था।

शान्ति को भंग करते हुए डॉक्टर ने छेड़ा—"तो क्या आप में भी पस्ती आ गई? क्या आप यह सोचने लगे कि इस आन्दोलन में अब दम नहीं; यह निर्जीव हो गया, इसलिए अब जेल चला जाना चाहिए? कहीं आपके इस निर्णय में एक हिम्मतपस्ती, एक हार तो नहीं छिपी है?"

"तुमने गलत समझ लिया, डॉक्टर! जनता की क्रान्तिकारी क्षमता में मुझे आज कल से ज्यादा आस्था है। इस आन्दोलन की सफलता पर मुझे

पूरा विश्वास है। ऐसा नवजागरण का दृश्य तुमने पहले कभी न देखा होगा, न सुना होगा। बममारी तथा अंधाधुंध गोलीबारी के बावजूद भी आज जनता के दिल में जो क्रान्ति का मशाल जल रहा है, उसकी मिसाल तुम्हें कहीं भी न मिलेगी। पति को खोकर भी रामू की स्त्री आज हमारे जत्थे में मिल गई है और जिस उत्साह तथा कर्मठता से वह महिला-जगत् में काम कर रही है वह इतिहास के लिए एक अमर कहानी बन गई है। बिना साधन के गाँव के गरीब किसान जिस स्फूर्ति से आज़ादी का अलख गाँव-गाँव में जगाए चले जा रहे हैं वह क्या किसी के भुलाये भुलने का है ? यदि तुम यह समझते हो कि इस सारे तूफान के पीछे 'मैं' हूँ, इस नवजागरण की धुरी केवल मैं हूँ, तो तुम भ्रम में भटक रहे हो डॉक्टर ! मैंने तो सिर्फ नदी की बेतरतीब धारा को एक दिशा की ओर मोड़ दिया है, मगर इसका प्रवाह, इसका ओज, इसका वेग तो इसका अपना है—सोलह आने अपना—कुछ मेरा नहीं। मैं तो हलचल-भरे इस अथाह समुन्दर में महज़ एक बूँद हूँ, इस प्रबल धार के साथ बहता एक तिनका।"

"मगर सरकार तो तुम्हें ही सब कुछ मानती है !"

"यह तो उसकी कृपा ! उसकी बुद्धि की बलिहारी ! और इसीलिए तो मैं भी चाहता हूँ कि वह मुझे नजरबन्द करके भी देख ले कि इस आन्दोलन का स्रोत कहीं और ही है, कुछ मुझमें नहीं। नवीन को जेल में डालकर इस आग को बुझाकर वे मौज मनायेंगे, यह उनकी गलत धारणा है—।"

"मैं अपना निर्णय क्या दूँ, यह मुझे खुद पता नहीं। तुम्हारे मुँह से यह बात सुनने को मैं कभी भी तैयार नहीं था। तुम आज किस प्रतिक्रिया के अधीन बोल रहे हो, सोच रहे हो, यह मेरी समझ के बाहर है। देखते नहीं,

तुम्हारी सोनिया की दशा क्या हो रही है। उसे तो जैसे काटो तो खून नहीं। भावों का लहरा हर घड़ी, हर क्षण उसके मुखमंडल पर नाच रहा है।"

"डॉक्टर, किसी देशव्यापी आन्दोलन में व्यक्ति को न देखो, समय और देश की कोटि-कोटि जनता की 'स्पीरिट' को देखो। आज जो मुझ में है वह उसी में से तो आया है। मेरी शक्ति का स्रोत भी तो जन-शक्ति ही है। और जबतक वह शक्ति कायम है…और हाँ, शक्ति तो कभी मरती नहीं, वह कभी सुषुप्त रहती है, और कभी जाग्रत, फिर मैं, एक अदना-सा व्यक्ति, अपने को क्यों इतना मूल्यवान् समझूँ! सत्ता तो वह है, मैं तो उस सत्ता का एक अणु हूँ, एक लौ। तेज तो वह है, मैं तो उस तेज की तजल्ली में चमक उठा हूँ, और, जो तेजोमय है उसकी लौ पर अभी जाने कितने चमक उठेंगे, रौशन होकर नमूदार होंगे, मैं रहा तो या न रहा तो—दोनों बराबर।"

नवीन भावावेश में कहने को तो जाने क्या-क्या न कह गया, आज बातें भी यहीं समाप्त हो गईं, मगर जो ऊमस, जो घुटन नवीन को महसूस होती थी वह अब भी मिटी नहीं, गई नहीं, बल्कि अपने सोचने के क्रम में अब वह सोनिया के विषय में भी जाने क्या-क्या सोच जाता। सोनिया के लिए उसके हृदय में जो ममता, जो प्रेम और जो आसक्ति जाग्रत हो गई थी वह उसके तमाम विचारों को कभी-कभी गचपचा कर धर देती। हाँ, जब वह एकान्त एकाग्र हो अपने सारे विचारों तथा भावों को अपने मस्तिष्क में एक करीने से सजा देता तो उसे अपना रास्ता ठीक-ठीक दीख जाता।

"सोनिया, कल मैं अपने को पुलिस के हवाले कर दूँगा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं?"

"मैं वही कह रहा हूँ जो कल करने जा रहा हूँ!"

सोनिया ने भींगे नेत्रों से भगत की ओर देखा। उसने भी बेबसी जताई—"बेटी, कल पार्टी की मीटिंग में हमलोगों ने नवीन बाबू को बहुत समझाया मगर वह टस से मस न हुए। आप जब निर्णय कर लेते हैं तो पहाड़ की तरह अटल हो जाते हैं।"

सोनिया की आँखें भरीं थीं। नवीन ने समझाया—'घबड़ाना क्या, हम अन्त तक लड़ते जायेंगे। जिस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए, जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम आज तक लड़ते आये, उसे कभी भी न छोड़ेंगे। हमारा आदर्श मेरे बन्दी-जीवन में सदा शक्ति देता रहेग। और सोनिया तो मेरे हाथ की मूरत है। वह तो मेरे आदर्शों का पालन करेगी ही, और तभी मेरी होकर रहेगी—।"

वह एकाएक रुक गया। भावों के आवेश में डूबा भगत उसकी आखिरी

पंक्तियों का अर्थ न समझ सका मगर सोनिया की छाती में उसकी आखिरी कड़ी कील की तरह बैठ गई। मिटनेवाली नाग्यों की कतार की वह नायिका थी। बस, उस लौ को छिपा लिया उसने अपनी छाती-तले।

"भगत जी, मेरे जाते ही सोनिया को इसकी मौसी के घर भेज देंगे, दूर—बहुत दूर। इस इलाके में इसका रहना ठीक नहीं। पुलिस को खबर है कि यह मेरे साथ रहती है, मेरी क्रान्तिकारी योजनाओं में सहयोग देती है। इसलिए भेद जानने के लिए इसे पकड़ने की वह भरपूर कोशिश करेगी। मौसी के गाँव में रहकर वहाँ कुछ ग्रामीणों की सेवा भी वह कर सकेगी। यहाँ तो रात-दिन भाग-दौड़ मची रहेगी।"

"हाँ, नवीन बाबू, मेरा भी कौन ठिकाना, किस दिन पकड़ जाऊँ। एक-एक करके सभी संगी-साथी उसी दीवार के अन्दर घिरते चले जा रहे हैं। किसी दिन मेरी भी बारी आ ही जायेगी—।"

"क्रान्तिकारियों का जीवन ऐसा ही होता है भगत ! फिर चिन्ता कैसी ?"

सोनिया की आँखें फिर भर आईं तो नवीन ने झट डाँटा—"ऐसा दिल नहीं करते सोनिया ! जिन्दगी की लड़ाई में ही हार गई तो देश के लिये क्या लड़ोगी ? जी कड़ा करो ……।"

सोनिया सँभल गई। मगर भगत रो पड़ा। उसके आँसू तो जैसे रुकते ही न थे। सोनिया जब गोद में थी तभी उसकी माँ चल बसी थी। उसी समय से भगत उसका पिता तो था ही, माँ भी था। आज जब देखा कि साथ छूट रहा है तो माँ की ममता बाढ़ की तरह सभी दीवारों को तोड़ती-फोड़ती बह निकली। यदि वह पिता भी न रहता तो जाने कबतक रोता रहता।

भगत से बातें कर नवीन डॉक्टर की ओर मुड़ा और पूछा—"तुम्हारा क्या होगा डॉक्टर ?"

"मैं भी तुम्हारे ही साथ आत्मसमर्पण कर दूँगा। बाहर का साथ रहा तो अन्दर का भी साथ बना ही रहेगा। हमारे जीवन के तो दो ही पहलू हैं। कभी बाहर कभी भीतर। और जो आग लग चुकी है वह कभी बुझने को तो है नहीं—हम अन्दर रहें या बाहर—ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। फिर हम सफ़र की उस मंजिल पर पहुँच गये हैं जहाँ से पीछे हटना तो नामुमकिन है। बस, बढ़े चलो, बढ़ चलो। मैं तो आशावादी हूँ। दीख पड़ता है मंजिल नज़दीक है। जनता की क्षमता पर मेरा विश्वास दृढ़तर होता जाता है—।"

× × × ×

नवीन और डॉक्टर सतीश का आत्मसमर्पण सरकार के लिए एक अकस्मात्—एक तिलस्मी घटना थी। अँग्रेजी पल्टन के अफसर तो कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे।

नवीन के पकड़ जाने की खुशी तो उन्हें बेहद थी मगर वह उनके जाल में न पकड़ा गया इसका उन्हें उतना ही आफसोस था। इस विषय में भी उन्हें पराजय ही पराजय दीखती थी। हाँ, अखबारवालों को यही खबर दी गई कि वे दोनों चारों ओर से घिर गये थे। फिर चारा क्या था ?

दीवानबहादुर और मंजुला के पैर तो जमीन पर पड़ते ही न थे। आज रात उनके महल में पल्टन के अफसर के जशन के लिए खास तैयारी थी। आज उन्होंने शराब का पेग और दिनों से ज्यादा ढाला। शायद अब उन्हें इतमीनान हो गया था कि जनता का जोश कुचला जा चुका है।

इधर गाँवों में तरह-तरह की अफवाहें फैल चलीं। कोई कहता कि नवीन

बाबू पुलिस चौकी में कोड़े से पीटे गये हैं और कोई कहता कि वह जहाज पर चढ़ाकर काला पानी भेज दिये गये। कोई कहता कि बेचारे गोली के शिकार हो गये और कोई कहता कि गोरों ने उन्हें तेल में जला दिया !

जिस रफ्तार से अफवाहें फैल रही थीं उसी रफ्तार से सोनिया की बैलगाड़ी भी उसकी मौसी के गाँव की ओर दौड़ती चली जा रही थी। गाड़ीवान को डर था कि पुलिस उसका पीछा कर रही है और अधमरी सोनिया अफवाहों की चौतरफी चोट से डर कर किसी ऐसे कोने में जाकर छिप जाना चाहती थी जहाँ नवीन के विषय में उसे कोई भी अशुभ बात सुनने को न मिले।

द्वितीय खण्ड

"ओ सोनिया, बेटी सोनिया···उठ-उठ, भोर हो गया···।"—मौसी ने उसे झकझोर कर जगा दिया।

"यह क्या करती है मौसी? अभी तो पौ भी नहीं फटी है।···अँधेरा है—तू कितना भोर को जगा देती है।"

वह करवट बदल कर फिर सो गई।

"लो, साँझ को जो खाट पर पड़ती है तो सूरज निकलने पर ही आँखें खोलती है।"

"और तुझे तो जैसे नींद ही नहीं आती। रात भर बड़-बड़···बड़-बड़ करती रहती है।"

"लो न, भला इस तरह काम चलेगा? उठ-उठ, गाय को जाकर बाहर बाँध आ। गोबर से घर भर गया है, उसे भी साफ कर दे। रात सोने को होती है बेटी, और दिन काम करने को।"

"तो अभी रात गई कहाँ! एक नींद और सो लेने दे। बड़ी मीठी

नींद आ रही है।"—उसने फिर आँखें मूँद लीं। मौसी बड़बड़ाती बाहर खेत घूमने चली गई।

नींद ही सोनिया को पनाह देती है। यदि उसे नींद न मिलती तो वह तड़प कर मर जाती। उसकी अर्द्धचेतना पर खिंची पिछले साल की स्मृतियाँ जब नींद में सपनों का जाल बुनने लगती हैं तो उसे ऐसा जान पड़ता है कि उसका खोया हुआ संसार फिर पलट कर मूर्त्तिमान् हो उठा है। मगर हाय, काश ये लुभाऊ रंगीनियाँ कुछ टिकाऊ भी होतीं! यहाँ तो भोर की किरणें आते-न-आते उन्हें चूर-चूर कर देती हैं। निशा की अँधियारी में जो सपनों का महल बनता वह भोर के उजाले में टूट-टूट कर बिखर पड़ता।

जो रोज होता वही आज भी हुआ। किरणें चमक उठीं और वह तड़पकर उठ बैठी। बाहर दालान में दौड़ गई। गैया बाहर निकलने को छटपटा रही है। उसे देखते ही वह उछल पड़ी। बस, रस्सी ढीली हुई नहीं कि वह उचककर बाहर निकल पड़ी। गोबर के छींटें सोनिया के गालों पर, होंठों पर, बालों पर चिपक गए।

फिर वह टोकरी उठा लाई और गोबर को भर-भर कर बाहर जमा करने लगी तो लाठी टेकती हुई उसकी मौसी फिर पहुँची और बोल उठी—"बहुत गोबर इकट्ठा हो गया है बेटी! आज सब पाथ दे।....मैं सारा खेत घूम आई। कमर सीधी हो गई। एक लोटा जल दे दे, मुँह धो लूँ।"

सोनिया की मौसी बाल-विधवा है। शादी के बाद ही उसका पति उसे नहर के पेट में फैली हुई सौ एकड़ भूमि की मालकिन बनाकर चल बसा। जीवन-भर उसे पैसे की कमी नहीं हुई। किन्तु प्रवृत्ति से कंजूस वह कुछ ऐसी थी कि आजीवन उसकी साड़ी पेबन्दों से भरी रही। घर में नौकर-चाकर तो

कभी रहे नहीं, बस कोठिला से धान निकाल मजदूरिनों को कुछ देकर अपना काम निकलवा लेती। भण्डार में अनाज सड़ जाता मगर गरीबों को दिया न जाता। सोनिया जब से आई है इस खर्चे से भी बहुत हद तक उसकी जान बच गई है। घर का सारा काम अब उसीके अधीन है। मौसी की सारी हुकूमत अब उसी पर चलती। अब तो जैसे वह सौ एकड़ नहीं, हजार एकड़ भूमि की अधिकारिणी है।

सोनिया सारा काम हँसते-हँसते करती जाती है। उसे काम करने में आनन्द ही आता। हाँ, कभी-कभी वह चकित जरूर होती कि अनाज से भरा हुआ यह कोटिला किस काम का है? घर में मौसी के बाद तो भूत लोटेंगे— न एक बेटा, न एक बेटी। फिर इतना अनाज रखने का क्या काम? और आज की महँगी में, भादो में चावल के बोरे तेज दाम पर बेचने से जो रुपयों का अम्बार लग जाता उसे जमीन के अन्दर तिजोरी में सहेज-सहेज कर रख देने से भला किसी का क्या लाभ होता! उस तहखाने के ऊपर एक चौकी पड़ी रहती जिसपर मौसी सोती और उसकी कुंजी उसके गले में ताबीज की तरह बराबर लटकती रहती।

भावनाओं के जाल में उलझी सोनिया कभी-कभी मौसी से पूछ बैठती— "मौसी, अनाज से भरा यह घर, रुपयों से ठकचा यह तहखाना आखिर किस काम का? तू तो बूढ़ी हुई, यह सब किसी मन्दिर को या किसी आश्रम को क्यों नहीं दान में दे देती!"

यदि मौसी का 'मूड' उस समय ठीक रहता तो वह चट कहती—"बेटी, मैं निर्वंश नहीं हूँ। मेरी सन्तान तो तू ही है। मेरे घर का उजाला तो तू ही है। यह सब तेरे लिए ही तो है बेटी!"—और

यदि कहीं 'मूड' खराब रहता तो वह यों चमकती कि आकाश डोल जाता— "आग लगे ऐसे दान में, बज्र पड़े तेरी बुद्धि पर ! तेरी कमाई होती तो तुझे बुझाता।''''बेटी, बड़ों की बात में नहीं पड़ना चाहिए। तू अभी बच्ची है। भोली है। तुझे धन का मोह अभी क्योंकर होगा ?''''जा, जा, धान सुखा दे। छावनी से जो बोरे आए हैं वह भींगे हैं। भकोलवा कुछ भी काम नहीं करता।"

"ओह, आह, सर फटा जा रहा है·······ओह·······ओह·······!"

कैदी की हालत खराब है। फिर बेहोश हो गया। नर्स दौड़कर चली गई, और सिस्टर सीता को बुला लाई। सिस्टर ने आते ही कहा—"घबड़ाना कैसा ? टाइफायड का मरीज है, बुखार तेज है। सर पर आइस बैग रखो। जल्दी करो।" सर पर आइसबैग रखा गया। फिर कुछ देर बाद रोगी को होश आया। सीता अपने कमरे में जा चुकी थी। वह नहीं चाहती थी कि कैदी उसे अभी पहिचानने की कोशिश करे और सवालों की झड़ी लगा दे।

"नर्स, मैं कहाँ हूँ, मुझे कुछ दीखता नहीं······"

"सो जाओ भाई, सो जाओ। यह अस्पताल है। सोने की कोशिश करो। जल्द ही अच्छा हो जाओगे। घबड़ाओ नहीं। मैं तुम्हारी नर्स हूँ।"

"नर्स······नर्स·······"

"कहो······कहो······"

"पानी·······पानी·······तालू सटा जा रहा है।"

नर्स ने फीडर से उसे पानी पिलाया। उसकी लाल-लाल आँखें खुलीं

और फिर बन्द हो गईं। सर पर आइसबैग पड़ा रहा। वह सोता-जागता रहा; बड़बड़ाता-चिल्लाता रहा। नर्स उसे दवा-पानी पिलाती रही। जब ज्यादा परीशान हो जाता तो सिस्टर सीता दौड़ी चली आती और कुछ उपचार करती।

रात में सिस्टर सीता ड्यूटी नहीं रहने पर भी रह गई। अपने 'रिलीफ' से उसने कहा—"मैं रात में यहीं रहूँगी। मेरा खाना और बिछावन क्वार्टर से भिजवा देना।"

"मगर मैं तो रहने को आ ही गई हूँ, फिर आप क्यों तकलीफ करती हैं?"

"नहीं, कोई बात नहीं, तुम जाओ, आराम करो। 'केस' सीरियस है। मैं नहीं चाहती कि इसे एक घड़ी के लिए भी छोड़ूँ।"

"मगर आप खातिर जमा रखें, मेरी ओर से कोई भी ढिलाई नहीं होगी।"

"नहीं-नहीं, ढिलाई की तो कोई बात नहीं। मैं आज यहीं रहना चाहती हूँ और यही रहूँगी। मुझसे ज्यादा सवाल न करो। मैं आगे कुछ भी नहीं कह सकती।"

आज रात ही नहीं—कई-एक रात सिस्टर सीता अपने ऑफिस में जागती-सोती रही और अपने मरीज की अनवरत सेवा करती रही। आधीरात बाद जब नर्स भी नींद से झुकने लगती तो उसे आरामकुर्सी पर लेटाकर मरीज की बगल में खुद बैठ जाती और भोर तक बैठी ही रहती। यह सिलसिला तबतक चला जबतक मरीज का दिमाग 'डिलीरियस' स्टेज से साफ़ न हो गया और वह अपने को तथा अपनी परिस्थिति को समझने न लगा।

'टेम्परेचरचॉर्ट' पर 'ग्राफ' की लकीरों को पढ़कर जब सिस्टर सीता मरीज

की ओर मुड़ी तो डॉक्टर सतीश चौंक पड़ा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था और सीता दौड़कर अपने कमरे में भाग जाना चाहती थी, परन्तु सतीश के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—"सीता !·······सीता ! क्या मैं सही देख रहा हूँ या मेरा दिमाग ही तो नहीं खराब हो गया !—" वह परीशान था।

सीता सर गड़ाये बोली—"सतीश, तुम बिलकुल दुरुस्त देखते हो, मैं वही सीता हूँ।"

"सीता·······तुम फ्रॉक में—इस नर्स की पोशाक में······?"

"हाँ, जमाने को यही मंजूर था। तकदीर में यही बदा था। मगर तुम अभी सो जाओ। अभी तुम्हारी हालत नाजुक है। इतिहास बाद में सुनना। अभी यही जानो कि समय के प्रवाह पर सीता आज तुमसे फिर मिल गई।"

कैदी को सुलाकर वह अपने कमरे में चली गई। कैदी एक स्वप्न में डूबा-डूबा सो गया !

× × × ×

दूसरे दिन दस बजते जब सतीश की आँखें खुलीं तो देखा कि सीता एक कागज लिए मुस्कुरा रही है।

"क्यों, क्या बात है सीता ?"

"तुम मुक्त हो गये सतीश !"

"मुक्त···क्या मतलब ?···"

"अस्पताल में सरकारी चिट्ठी अभी-अभी आई है। बीमार होने के कारण तुम 'पैरोल' पर छूटे थे। अब सदा के लिए रिहा कर दिये गए।"

सतीश उसके हाथ से कागज लेकर पढ़ने लगा और खुशी से नाच उठा

उसे जान पड़ा कि वह बिलकुल नीरोग हो गया। मगर तुरत ही चिन्तित हो उठा और बोला—"नवीन जाने कहाँ बन्द होगा! उसे रिहाई नहीं ही मिली होगी। उसके खिलाफ कई-एक मुकदमे चल रहे थे।"

सीता ने उसे झकझोर दिया—"अभी अपनी चिन्ता करो, नवीन की बाद में होगी। 'हार्लिक्स' पी लो। फिर सो जाओ।"

सतीश 'हार्लिक्स' का एक घूँट लेकर बोला—"सीता, तुमने अभी तक अपनी नहीं सुनाई···!"

"सुनना भाई, सुन लेना; अभी आराम तो करो। सो जाओ।"

"सुनाओ भी, यहाँ नींद ही कहाँ आ रही है?"

"सुनने-सुनाने की कोई बात भी है जिसे सुनाऊँ? यही जान लो कि प्राइवेट सेक्रेटरी साहब एक दिन दीवानबहादुर के दरबार से शराब में बुत हो मोटर लेकर निकले और एक मील जाते-जाते पेड़ से टकराकर 'कार-एक्सीडेन्ट' से ही इन्तकाल कर गये। यही छोटी कहानी रही उनकी। बची मैं अभागिन। मुझ बेवा के आँसू पोंछनेवाला भी अब कोई नहीं। रोती-कलपती माँ के यहाँ चली आई और कुछ दिन रो-धोकर नर्सिंग की ट्रेनिंग के लिए इसी अस्पताल में भर्ती हो गई और तब से यहीं हूँ। दीवानबहादुर ने मेरे पति के सारे पैसे हड़प लिए। छः माह का वेतन आजतक लिखा-पढ़ी करने पर भी न मिल सका। मैंने तो अब उसकी आशा तक छोड़ दी है। मेरे बुरे दिनों में इस दुनिया के दोस्त या दुश्मनों ने मेरे साथ इस बेरहमी से व्यवहार किया कि मैं हर एक से दूर हो गई हूँ। अब तो चारो ओर से सिमट कर इसी अस्पताल में पड़ी एक छोटी-सी दुनिया बना ली है—अपने-आप पर निर्भर।

फिर जब तुम यहाँ आ गये तो मुझे सब कुछ मिल गया। मेरे लिए तो एक नई धरती यहाँ बस गई जैसे।"

"तुम यहाँ अकेली क्यों रहती हो? माँ को भी बुला लेती।"

"माँ का नाम न लो सतीश! शोक से संतप्त जब मैं सान्त्वना के हेतु उसके पास दौड़ी गई तो उसने मेरे आँसू तक न पोंछे। तड़ से बोल उठी—'बड़ी गई थी घर से फिरंट हो 'लव-मैरेज' करने। अब तो पा गई न फल! पाप का घड़ा फूट पड़ा तब आई है यहाँ। तू ने माँ का दिल जो दुखाया था तो ले, अब विधाता ने तेरी माँग जला दी।' मैं तो जल-भुनकर रह गई। अब मुझ में शक्ति नहीं कि उसकी बातों को, उसके तानों को वर्दाश्त कर सकूँ। वह माँ नहीं,···नहीं···नहीं, माँ नहीं—कुछ और ही उसे कह लो सतीश!"

"सतीश, तुम अब बिलकुल चंगे हो गये।"—सीता ने मुस्कुराते हुए कहा।

"यही तो मैं नहीं चाहता था !"

"अजीब आदमी हो !

"बात साफ़ है। अब तो जी ऊबा करता है। कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ। कॉलिज से डॉक्टरेट की डिग्री लेते ही जन-आन्दोलन में कूद पड़ा, फिर वहाँ से जेल और जेल से अस्पताल। मगर अस्पताल से अच्छा होकर अब मैं तुम्हारे यहाँ चला आया तो यहाँ अब कुछ करने को रहा नहीं। दिन-भर योंही अकेले ऊबा करता हूँ।

"तुम जो कहो, करूँ। अस्पताल छोड़कर तुम्हारे पास बैठी रहूँ। ताश खेलूँ, शतरंज खेलूँ।"

"वाह, काम छोड़ देने से पेट कैसे भरेगा ? हाँ, पहले मेरी प्यारी चीज़ सिगरेट तो मँगा दो। अकेलेपन को वह बहुत हद तक दूर कर देती है। जब से आन्दोलन में गया उससे साथ छूट गया। पहले मुझे सिगरेट पिलाओ

तो किसी काम के लिए सोचूँ। विज्ञान मेरा प्रिय विषय रहा है सीता! अपनी विज्ञानशाला में ही मैं सदा सोता-जागता रहा हूँ। अब मैं पुनः उसी विज्ञान-शाला में चला जाना चाहता हूँ। वहीं मुझे सच्ची शान्ति मिलेगी।"

"तुम वही करो जिससे तुम्हें शान्ति मिले।...खैर, इस समय तो सिगरेट जलाकर कुछ कल्पना करो—तबतक मैं अस्पताल से हो आती हूँ। समय हो गया है।"

सीता अस्पताल की ओर लपकी चली गई। दोपहर में लौटी तो देखा कि सतीश पत्र लिखने में तल्लीन है। पूछा—"क्यों, क्या बात है? आज यह नई धुन कैसी? किसे खत लिखे जा रहे हैं?"

"किसे लिखूँ सीता! कौन है ऐसा अपना? बस, बच रहे हैं घर पर बूढ़े पिताजी। उन्हें ही खबर दे देता हूँ कि अब मैं छूट गया और शीघ्र ही दर्शनार्थ आऊँगा। सोचता हूँ, घर से कुछ पैसे का इन्तजाम कर लौटूँ तो कहीं चलने का विचार किया जाय।"

"किधर जाओगे?"

"विज्ञान की ओर। जन-क्रान्ति के समय गाँवों में घूम-घूम कर मैंने पाया कि विज्ञान की दुनिया में हम कितना पीछे हैं। आखिर पश्चिम तो हमें अपनी वैज्ञानिक शक्ति के ही सहारे न अपनी मुट्ठी में दबाए हुए है। यदि कुछ लोग देश को आजाद करने को मर-मिट रहे हैं तो कुछ लोग देश को नई-नई वैज्ञानिक खोजों से समृद्धिशाली बनाने के लिए भी जियें, और मरें। हर किसी को सत्याग्रह की शक्ति में आस्था नहीं हो सकती सीता! देखो, सुभाष इस कफस से निकल भागे और आज सशस्त्र हो उन्होंने हिन्दुस्तान पर धावा बोल दिया है। सैगाँव रेडियो पर हमें जो-कुछ सुन पड़ता है उससे तो

साफ़ ज़ाहिर होता है कि उनके पीछे एक आधार-शक्ति है—जनता की और विज्ञान की भी।"

"आज तो तुम कुछ और ही देख रहे हो सतीश !"

'हाँ, अब मैं अपना रास्ता तय कर चुका हूँ। सेवा का मार्ग तो बहुत विशाल—बड़ा विस्तृत है सीता ! यदि नवीन का जन-सेवा का तरीका जन-आन्दोलन है, तुम्हारा रास्ता दुखियों को दवा-दारू करना है तो मेरा भी तरीका वैज्ञानिक अनुसन्धान होगा। आज शाम को ही मैं पिताजी से मिलने घर जा रहा हूँ।"

सतीश के जाने की बात सुनकर सीता को आज कुछ अजीब-सा लगा। कुछ भय, कुछ असन्तोष भी। बात तो यह थी कि वह सतीश को अपने यहाँ से जाने देना-नहीं चाहती थी। जिस दिन हमीरपुर में उसे सतीश से भेंट हुई थी उसी दिन से सतीश के प्रति तथा उसके 'मिशन' के प्रति जो श्रद्धा उसके अन्तर में जगी वह आज तक बढ़ती ही गई। फिर अस्पताल में उसे पाकर वह निहाल हो गई। उसे जान पड़ा कि निराश्रय को एक आश्रय मिल गया—डूबते हुए को एक तिनके का सहारा मिल गया। यह बात और है कि ऐसा सोचने का उसे कोई हक़ न था। आखिर एक स्त्री सतीश के सम्बन्ध में अनजाने ही ऐसी बातें क्यों सोचने लगे, और यही नहीं, इस हदतक क्यों सोच जाये कि जाने या अनजाने में वह उसी पर आश्रित हो गई है ? और तुर्रा यह कि पैसे के लिए नहीं, अपितु केवल उसे एक केन्द्र बनाकर उसी के घेरे पर नाचने के लिए; उसे ही बिन्दु मानकर अपने रात-दिन के कर्मों को एक अर्थ, एक पुष्टि देने के लिए !

कुछ देर सोचकर उसने गम्भीर होकर पूछा—"तो लौटोगे कबतक ?"

"बस, पैसे का इन्तजाम हुआ और मैं लौटा।"

'मगर पैसे के लिए तो तुम्हारा काम हर्ज होता नहीं।"

"वाह, उसी के लिए तो सब काम रुका है। बम्बई में कितनी अनुसन्धानशालाएँ हैं। मुझे वहाँ जाना होगा, कुछ दिनों तक तो होटल में ठहरना होगा, अखबारों में विज्ञापन देखने होंगे, फिर इन्टरव्यू का सामना करना होगा, तब कहीं जाकर कुछ हाथ लगे तो लगे। बिना पैसे के कहाँ क्या होने को है?"

"लेकिन यदि तुम न जुटा सके तो पैसे मैं दूँगी। मेरे पिता मरने के समय कुछ पैसा मुझे दे गये थे। वह मेरे 'पासबुक' में जमा है। यदि तुम चाहो तो ले सकते हो।"

सतीश के चेहरे पर कुछ क्षणों के लिए एक खुशी की लहर दौड़ गई, किन्तु तुरत शर्माते हुए उसने कहा—"अभी नहीं, पहले मुझे अपनी तकदीर आजमा लेने दो। घर तो मुझे कुछ दिनों के लिए जाना ही पड़ेगा। फिर बम्बई जाने के पहले मैं तो यहाँ आऊँगा ही। मुझे तुम्हारी सहमति और अनुमति तो हर बात में चाहिए।"

आखिरी पंक्ति को सुनकर सीता को बड़ा हर्ष एवं सन्तोष हुआ।

"ओ सोनिया, अरे, ज़रा देख अपने तिलकी की माँ की हालत। बड़ी दानी बनती है न तू!"—बुढ़िया ने गरजते हुए कहा।

"क्यों, क्या बात है मौसी?"—सोनिया भण्डार से दौड़ी चली आई।

"देख, तिलकी की माँ अपनी कमर में दस जोड़ी पूड़ियाँ छिपाये बाहर चली जा रही थी। इसीलिए मैं पर्व-त्योहार मनाने से भागती हूँ। आज ब्रह्म-भोज का पकवान क्या बना कि इन मजदूरिनों की बन आई। मेरी आँखों से तो कुछ दीखता नहीं। तू इधर-उधर चली जाती है और ये औरतें हाथ मारने लगती हैं। खैरियत यही हुई कि मुझे शुबहा हो गया इस मुँहजोर पर, नहीं तो राततक जाने कितनी पूड़ियाँ निकल जातीं।"—मौसी एक सुर में कह गई।

तिलकी की माँ तो जड़वत् वहीं की वहीं खड़ी रह गई थी। सेंध पर पकड़े गए चोर की तरह वह जमीन में गड़ी जा रही थी। सोनिया को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मगर कुछ कहना ज़रूरी था। उसने झट परिस्थिति को सँभालते हुए कहा—"तिलकी की माँ ने जो-कुछ किया वह बहुत ही बुरा

किया मौसी ! मगर इसे जाने दो, अपनी गलती इसने स्वीकार कर ली है ।"

"बड़ी बनी है इसे जाने देने वाली ! तेरा यही लच्छन देख कर जी जल जाता है । इसकी एक-एक पूड़ी रखवा लूँगी और जूते मार कर घर के बाहर निकाल दूँगी । और, अब इस साल तालवाली जमीन तो इसके बेटे को देने से रही ।"

इतना कहकर मौसी ने पूड़ियों की गठरी तिलकी की माँ से झपट ली और एक तैश में बड़बड़ाती चौके में चली गई ।

सोनिया एक ज़रा भौंचक-सी ठमक गई । फिर तिलकी की माँ को अलग एक कोने में ले जाकर पूछ बैठी—"क्यों तिलकी की माँ, ऐसी गलती आज क्यों कर बैठी ?"

"क्या करूँ बिटिया, अपनी जीभ और अपने नन्हे पोते-पोतियों के मोह में पड़कर आज जो न करना चाहिये वही कर बैठी । तुम तो मुझे बहुत दिनों से जानती हो । तुम्हीं बताओ, आजतक मैंने कभी ऐसा किया ? मगर आज जीभ के चलते मेरी यह गति हुई । क्या कहूँ बिटिया, लेने के देने पड़ गये । पानी-पानी भी हुई और खेत भी हाथ से गया । इज्जत भी गई और रोजी भी गई । अपनी चटोर जीभ को क्या कहूँ मेरी बिटिया !"—तिलकी की माँ की आँखों से ढर-ढर नीर ढरक चला ।

सोनिया पिघल गई, उसका दिल भर आया—'बड़ी गरीब है बेचारी । एक बार फिसल ही गई तो इसे इस तरह पानी-पानी कर देना कहाँ तक उचित था ! मौसी तो समझती है कि गाँव में वही केवल आबरूवाली है और सभी तो बेआबरू हैं जैसे । और कुछ नहीं, सिर्फ इसलिए कि यह बेचारी नीच जाति की है । हाय राम, यह ऊँच-नीच का भेद कब मिटेगा !

चारों ओर ऐसा ही अन्धकार नज़र आता है।' अपने को सँभालते हुए उसने कहा—"यहीं खड़ी रहो बूढ़ी, मैं अभी जाती हूँ और तुम्हारे लिए पूड़ियाँ चुराकर लाती हूँ।"

"ना, ना, बेटी! अब ऐसा न करो—न करो....."—बुढ़िया ने डरते-लजाते कहा, मगर उसके ना-ना कहने पर भी सोनिया चौके की ओर दौड़ गई और मौसी की आँखें बचाकर कुछ पूड़ियाँ और अँचार केले के पत्ते में छिपाये चली आई।

तिलकी की माँ से तो न 'हाँ' कहते बना और न 'ना'। उसकी बेबस आँखों में कृतज्ञता के आँसू बरबस छलक आये।

बुढ़िया को घर भेजकर सोनिया बाहर बरामदे की ओर मुड़ी। खिड़की से झाँककर देखा कि ब्राह्मण-भोज खतम हो गया है और जूठे पत्तलों पर डोम तथा कुत्ते एक ही साथ जूझ पड़े हैं—पिल पड़े हैं।

उधर गाँव के तृप्त ब्राह्मण टेंट में दक्षिणा दबाकर मौसी की जय मनाते घर जा रहे हैं और इधर अकलू डोम भूखे कुत्तों की पसलियों पर लाठी बरसाने में अपना कमाल दिखा रहा है। खीझकर चिल्लाता भी—"इस ताजी कुत्ते को तो मँगरी ने गोश्त के टुकड़े खिला-खिलाकर इतना बदमाश बना दिया है कि आज यह मेरे बच्चों की ही रोटी पर टूट पड़ा है। इसकी टँगरी न तोड़ दूँ तो मेरा नाम नहीं। देख मँगरी, अपने कुत्ते को सँभाल, नहीं तो आज खून हो जायगा!"

"ऐं-ऐं! बड़ा आज रोब दिखा रहा है अकलुआ! मेरे हिस्से पर यदि हाथ लगाया तो सरापते-सरापते तुम्हारे खानदान को खा जाऊँगी। आज बड़ा आँख दिखाने आया है।"

"चल, हट, तेरा हिस्सा पूरबारी दालान का है और मेरा पछयारा। तुम्हारे करम में कम जूठन लिखा था तो मैं क्या करूँ!"

"चल, हट, बाप-बेटा का अलग-अलग हिस्सा लगा रहा है। देखती न हूँ अब कौन मेरे हिस्से में हाथ लगाता है!"—मँगरी ने कहा।

अकलू के माथे पर ताड़ी का नशा सवार था। उसने न आव देखा न ताव, बस चट पकड़ ली मँगरी की गर्दन। उधर मँगरी जोर से चिल्ला उठी—"बाप रे बाप! जान गई। अकलू मेरा गला घोंट रहा है।"

तब तक मँगरी का कुत्ता अकलू की नरेटी पर चढ़ बैठा। दो-चार मिल-कर उसे नहीं छुड़ाते तो भँभोर ही डालता। मगर पंजे तो लग ही गये थे। वह लहू-लुहान हो गया। फिर क्या था, कुहराम मच गया।

मौसी लाठी टेकती बाहर बरामदे में चली गई और गरजती हुई बोली—"ओ मुनीमजी, इन दोनों की गरदन में हाथ डालकर फाटक के बाहर निक-लवा दो।······बड़े लड़ने आए हैं मेरे दरवाजे पर·······।"

मौसी की आवाज सुनते ही उनकी हैंकड़ी गुम हो गई! जो-कुछ मिला, ले-देकर भागने लगे। मगर मँगरी के साथ अकलू ने अन्याय किया था। उस पर सोनिया तरस खा गई। मौसी से उसने कहा भी—"कहो तो कुछ पूड़ियाँ-पूए इसे लाकर दे दूँ।" परन्तु मौसी का तेवर तुरत बदल गया—"इन डोमिनों को तू जितना देगी उतना ही इनका दिमाग चढ़ता जायेगा। जा-जा, इन बातों में तू दखल न दिया कर।"

"ना, मौसी, ना। आज तो मैं दखल जरूर दूँगी। आज दिन किसी को तरसा कर न भेजो। दो-चार पूड़ियाँ दे देने से तुम्हारा धन घट न जाएगा, परन्तु आज तुम्हारे फाटक से कोई अतृप्त होकर चला गया तो सारे ब्राह्मण-

भोज का महत्व कौड़ी का तीन भी नहीं रह जायगा।"—इतना कहकर सोनिया ने पास ही के कठवत से पाँच जोड़ी पूड़ियाँ निकालीं और मँगरी को सामने बुला गुलेट कर उसके फाँड़ में डाल दिया। मँगरी तो निहाल हो गई, मगर अकलू दाँत पीस कर रह गया और मौसी छाती पीटती फिर चिल्ला पड़ी—"अरे, बस कर, बस कर! सारा भण्डार लुटा देगी क्या? अभी पवनियों को भी देना है रे!"

"जय हो बड़ी माँ जी की, जय हो ! जय दरबार की, जय हो !"—सूरदास जय-जयकार मनाता पहुँचा ।

"अरे, कौन है रे ?" अन्दर से मौसी ने आवाज लगाई ।

"मैं हूँ माँ, सूरदास !"

"सूरदास ! आ बेटा, आ ! तू ही कल छूट गया था ।"

"बड़ा अचरज लग रहा था माँ, मुझे । ब्रह्म-भोजन के दिन—इतने बड़े काज-परोजन के दिन ही भुला दिया ?"

"क्या कहूँ सूरदास, बूढ़ी हुई न, मन में ज्यादा बातें याद नहीं रहतीं । तुम्हारा प्रसाद रखा है । आओ-आओ ।"

तब तक सोनिया भण्डार से कुछ पूड़ियाँ लिए बाहर आई और सूरदास की झोली भर दी । सूरदास चलने को हुआ तो सोनिया ने कहा—"सूरदास ! आज यहीं भजन-कीर्त्तन करो । कुछ बात-चीत भी होगी । बहुत दिन के बाद आये हो ।"

सूरदास जन्म का अन्धा है । पैतृक-सम्पत्ति में उसे केवल दस कट्ठे

जमीन की एक टुकड़ी मिली है। उसे हर साल वह किसी को बटाई पर दे देता है और उससे अनाज जो आता है वह मन्दिर को दे देता है। खुद भी मन्दिर में ही रहता है और वहीं भजन-कीर्त्तन करता रात-दिन बिता देता है।

सोनिया के आग्रह पर सूरदास वहीं रुक गया। प्रसाद पाकर जब वह निश्चिन्त हुआ तो सोनिया ने उससे सवाल किया—"सूरदास, तुम तो प्रसाद पाकर, भजन-कीर्तन कर तृप्ति पा लेते हो मगर मुझे तो इतने धन-धान्य से भरे हुए घर में कभी भी तृप्ति नहीं मिलती। अभाव का वायुमंडल मुझे विभव के वायुमंडल से सदा अच्छा ही जँचा। अपने पिता के घर में दस की सेवा रोज कर लेती तो मुझे बड़ा आनन्द आता मगर यहाँ रातदिन घर में पड़े-पड़े अनाज और रुपये गिनने से मुझे जरा भी सन्तोष नहीं मिलता। कोई रास्ता बताओ।"

सूरदास आज पहले-पहल सोनिया के मुँह से ऐसी बातें सुनकर आश्चर्य्यचकित हो गया। हवेली में पलती हुई बच्ची के मुँह से ऐसी बात! मगर शायद उसे यह पता न था कि सोनिया के जीवन के आदर्श तो कुछ और ही थे।

कुछ सोच-समझ कर सूरदास ने कहा—"बेटी! मेरे जैसे दुखियों को खिला देना, तुम्हारे घर जो अपाहिज आवे उसे एक टूक वस्त्र तथा कुछ चावल दे देना और जो हाथ पसारे, उसे तृप्त कर देना—भूखे को अन्न, प्यासे को पानी और नंगे को वस्त्र का दान देने से बढ़कर पुण्य इस दुनिया में और कुछ नहीं।"

"इतना तो मैं रोज करती हूँ सूरदास, मगर इससे मुझे चैन नहीं। जब

से मैं यहाँ आई, धनी और गरीब, ऊँच और नीच का भेदभाव मुझे बहुत खला। मेरे पिता एक गरीब देश-सेवक हैं। उनके यहाँ मैंने कभी भी न धन देखा न अनाज से भरा कोठिला। प्रतिदिन अभाव ही रहा और हर दिन किसी की सेवा की योजना ही बनती रहती। मगर यहाँ आकर मुझे धनियों के पैरों-तले कराहते हुए दरिद्रों का एक अपार जन-समुदाय दीख पड़ा और लगता है, उस समुदाय की सेवा ही इस जीवन का लक्ष्य बन सकता है।"

सोनिया कुछ सोचती जाती और कुछ कहती जाती—"मैं अपनी मौसी को बहुत समझाती हूँ कि इतना धन रखकर क्या करोगी? कुछ गरीबों को देती रहो। आखिर कोई सन्तान नहीं, कोई जाल-जंजाल नहीं। परन्तु वह मेरी एक न सुनती। ज्यादा समझाने पर मुझ पर ही बिगड़ पड़ती है। बस, मैं चुप हो जाती हूँ। उसका कुछ ऐसा संस्कार बन गया है कि उस पर मेरी बातों का असर ही नहीं पड़ता।"

"तुम्हारी भावनायें बड़ी अच्छी हैं बेटी! अहा-हा! तुम्हारी बातों को सुनकर मेरे जैसे ग़रीबों को बड़ा सन्तोष होता है बेटी! मगर हम तो मन मारकर, दिल हार कर, दैव के भरोसे बैठ गये हैं। भला हमारी हालतों को कौन सुधारेगा बेटी! यह बहुत बड़ी समस्या है। माथा खराब हो जाता है। बस, राम-नाम का सहारा है।"

"मैं सोच रही हूँ, मैं ही कुछ····।"

"राम! राम! ऐसा कभी न करना बिटिया, नहीं तो तुम्हारी मौसी के दरवाजे मुझे जो कभी-काल कुछ मिल जाता है वह भी बन्द हो जायगा। बूढ़ी मालकिन मुझे गाँव से बाहर निकलवा देंगी। आखिर, तू बड़ी हवेली की

बेटी है। तुम्हारी मौसी से बढ़कर इस गाँव में कोई अमीर नहीं। भला उनके घर की बेटी अपनी मर्यादा छोड़कर घर के बाहर दरिद्रों की सेवा को निकले —इसे वह बर्दाश्त करेंगी ! ऐसा कभी सोचना भी नहीं बिटिया ! मौसी हाथ समेटकर जो रखती हों, पैसे सूँघ-सूँघकर जो खर्च करती हों, मगर ठहरीं तो वह बड़ी हवेली की। फिर उन्हीं की बेटी····ऐसा करे···राम ! राम !"

सूरदास एक सुर में सब कह गया। सोनिया सोचने लगी—"हाय राम ! मैं यहाँ किस पिंजड़े में आकर जकड़ गई ! नवीन बाबू के बताए रास्ते पर चलने का तो मुझे यहाँ कोई भी अवसर न मिलेगा। उसी राह पर चलने से मुझे सच्ची शान्ति मिलेगी, मगर यहाँ तो उसकी पगडंडी भी नहीं मिलती। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, मान-मर्यादा, जाँति-पाँति सभी जीवन के क़फस हैं—क़फस। मर्यादा की भी एक ही रही। एक-एक पैसे के लिए, एक-एक छटाँक अनाज के लिए, मौसी अपनी मर्यादा का प्रतिदिन उल्लंघन किया करती हैं, अपना ईमान तक बेंच देती हैं मगर उसे गाँववाले सह लेते हैं और यदि मैं डोमखाने में जाकर बेचारों की गिरी हुई हालत को सुधारने के लिए कुछ करूँ तो उसे अमार्यादित करार दे दिया जायगा ! हाय भगवान् ! यह कैसी विडम्बना है !"

सूरदास ने फिर छेड़ा—"क्या बेटी, क्या सोच रही हो ?"

"तुम्हारे ही रीति-रिवाजों को, तुम्हारी ही मान-मर्यादा को।"

"यह एक अजीब गोरख-धन्धा है। इस पर माथा-पच्ची न करो। हम गरीब पूर्व-जन्म का पाप भोग रहे हैं। भला हमारी किस्मत को कौन सुधार सकता है ! इस जीवन में यदि अच्छा कर्म करें तो अगला जीवन शायद सुधर जाय। तप से चूकने पर बड़े घर में जन्म होता है। हम तो न तपस्वी थे न बड़े घर में

डॉक्टर सतीश परीशान है। सिस्टर सीता के मकान में ताला पड़ा है। कहीं किसी का पता नहीं। अजीब हाल है। कुल पन्द्रह दिन में ही, तबादला हो गया। आखिर वह गई कहाँ? कुछ खबर भी न दी। उसने एक बार आवाज़ भी लगाई मगर गौरैयों के चें-चें के अलावा कुछ सुनने को न मिला। आखिर वह जाय किधर? घर तक लौट जाने को पैसे नहीं। बड़ी मुसीबत है। उधर रिक्शावाला अलग चिल्ला रहा है—"बाबूजी, गाड़ी खाली करें। मुझे बच्चों को स्कूल पहुँचाना है। हर्ज हो रहा है।"

"भई, क्या बताऊँ, चलो ज़रा अस्पताल की ओर।"

"बाबूजी, मेरा रिक्शा खाली कर दें। मुझे बड़ा काम है...।"

'अजी, यहीं पर—उस बड़े अस्पताल की ओर चलो न।"

अस्पताल पहुँचते ही सतीश अपने पुराने वार्ड की ओर लपका। शायद कुछ पता लग जाय। रास्ते में सिस्टर पुष्पा से भेंट हो गई। वह झट पूछ बैठी—"कहिए साहब! आप आज किधर?" वह मुस्कुरा उठी।

"सिस्टर, मैं सिस्टर सीता का क्वार्टर ढूँढ़ रहा हूँ। पुराने मकान में तो ताला पड़ा है।"

"क्या बताऊँ सतीश बाबू! वह बेचारी बड़ी मुसीबत में पड़ गई।"

"क्या,....आखिर बात क्या हुई?"

"आजकल सब जगह की हवा बिगड़ी हुई है। महँगी की मार से सबकी कमर टूट गई है। अस्पताल के छोटे तबके के कर्मचारी भी एक युनियन बनाकर साहबों के पास भत्ता बढ़ाने को अपनी माँगें ले गए थे। उनकी लीडर बनी थीं सीता देवी। बस, साहबों से चख-चुख हो गया और वह अस्पताल से निकाल दी गईं। आखिर यह पादरियों का अस्पताल ठहरा। यहाँ तूफान-बदतमीजी चलने की नहीं। वैसे सीता देवी इन झमेलों में क्या उलझतीं, मगर वह पड़ गई थीं इधर कामरेड महबूब के चक्कर में। वह बीड़ी वर्कर्स युनियन, प्रेस वर्कर्स युनियन तथा जाने कितने युनियन का प्रान्तीय सेक्रेटरी है। उसीने उन्हें चढ़ा-बढ़ाकर लीडरानी बना दिया। और, अब तो उसकी भी सारी लीडरी हवा हो गई।"

"बड़ा बुरा हुआ। खैर, यह तो बताइए, इस समय वह हैं कहाँ?"

"श्याम भंडार की गली में एक खपड़ापोश मकान है। उसी में एक कोठरी लेकर रहती हैं। कभी-कभी कोई 'प्राइवेट केस' मिल जाता है तो काम चल जाता है। मैं रिक्शावाले को बतला देती हूँ। वह आपको जगह पर पहुँचा देगा।"

रिक्शावाला पहले तो जाने को तैयार न था, पर बहुत आरजू-मिन्नत के बाद राजी हुआ। आध घंटे में वे पहुँच गए।

सीता की कोठरी एक 'डैम्प' तहखाने जैसी थी। कमरे में सदा धुक-धुक

करता एक बल्ब जलता रहता था। इर्द-गिर्द की किराए की कोठरियों में कुछ मरीज पड़े हुए थे। किसी कोठरी में खाना भी पक रहा था। बीच के आँगन में कुआँ था। एक अजीब दमघुटन वाला वातावरण, जहाँ धूप और प्रकाश की कभी पहुँच नहीं।

सतीश को देखते ही सीता उछल पड़ी। उसे जैसे खोया हुआ धन मिल गया। झट पूछ बैठी—"यहाँ का पता तुम्हें कैसे मिला ?"

"अजी, जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ !"

"फिर भी ?"

"पुष्पा ने मुझे सारी कहानी सुनाई और यहाँ का पता भी बताया। यह क्या गजब कर बैठी तुम ! आसमान से पाताल में जा गिरी, यह कौन-सा खब्त सवार हो गया था।

सीता का तेवर बदल गया—"मैंने जो कुछ किया उसके लिए मुझे ज़रा-भी अफसोस नहीं। धर्म के ठीकेदार पादरियों ने हमारे वर्कर्स की जो हालत बना रखी है उसके खिलाफ़ आवाज उठाना हमारा फ़र्ज है। एक नौकरी गई—कोई परवाह नहीं, ऐसी बीसियों नौकरियाँ मिलेंगी।"

सीता का मिज़ाज किस हदतक बिगड़ा हुआ है—इसका पता सतीश को अभी-अभी मिला। वह समझ गया कि उसकी अनुपस्थिति में कॉमरेड महबूब की हवा उसपर हावी हो गई है। कमाल का उसका टैक्टिस है। ऐसा जादू-मन्तर उसने चला दिया है कि आज वह उसी की हो गई है। इस समय उससे अधिक बातें करना उचित न समझ उसने बंडल से लोटा निकाला और कुएँ से पानी खींचकर नहाने लगा।

नहा-धोकर जब वह स्थिर हुआ तो सीता ने पूछा—"कहो, बम्बई जाने को रुपये जुटा लाये ?"

"नहीं सीता, एक पैसा भी नहीं जुटा सका। पिता जी ने कहा, 'तू इतने दिनों तक जेल में रहा। घर में कोई कमानेवाला था नहीं। घर की सारी पूँजी में इतने दिनों तक खाता रहा। मैं पैसे कहाँ से दूँ ? बम्बई जाने का सपना छोड़ दे। जेल जाकर तूने अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार दी, नहीं तो अबतक किसी कॉलेज में प्रोफेसर हुआ रहता। शहर में जाकर कुछ काम कर और किसी तरह पैसे जुगा तो अलबत्ता बम्बई जाने का तेरा मनसूबा फल सकता है। तू पढ़ा-लिखा है, विद्वान् है—जल्दी बड़े ओहदे पर पहुँच जाएगा···' तो समझो कि मोची का मोची, मैं फिर यहाँ मारा-मारा चला आया और अब नौकरी की तलाश में हूँ—कुछ पैसे कमाना चाहता हूँ···"

"विज्ञान की दुनिया के हवाई सपने छोड़ो सतीश ! चलो, यहीं कम्युनिस्ट पार्टी का काम किया जाय। कॉमरेड महबूब पार्टी का लीडर है। बड़ा भला आदमी है।"

"तुम्हारे सर पर महबूबका भूत सवार है। मैं 'पॉलिटिक्स' का शिकंजा देख चुका हूँ। खूब भोग चुका हूँ। पहले रोटी-दाल का मसला हल करो, फिर पॉलिटिक्स की गुत्थियाँ सुलझाना। और महबूब के चकमे में मैं तो आने का नहीं। मैंने तुमसे ज्यादा दुनिया देखी है। बस, मानो न मानो—तुम जानो—मैंने तो कह दिया—महबूब के झमेले में पड़ कर अपने को बर्बाद न करो···।"

पहले तो सीता को एक तीखी चोट-सी लगी और वह तिलमिला उठी, पर फिर जाने कैसे सतीश के साथ की उसकी पुरानी आत्मीयता ने उसके

अन्तर की तह को झकझोर दिया और उसकी बेबसी पर अनायास हमदर्दी उमड़ पड़ी। उसने बड़ी आजिजी से कहा—"सतीश! मेरे रहते तुम्हारा सपना बिखरने न पायेगा। यह मैं पहले ही कह चुकी हूँ। पिताजी से मिले मेरे रुपये तुम्हारे लिये सुरक्षित हैं। तुम उन्हें लेकर अपनी किस्मत आजमाने बम्बई चले जाओ। तुम्हारा काम हर्ज न होगा।"—सीता ने सतीश के हाथ में अपना हाथ रख दिया।

सतीश सिहर उठा—"तुम्हारे एहसान को मैं कभी भी नहीं भूलूँगा सीता!"

"इसमें एहसान की कोई बात नहीं। आत्मीयता से बढ़कर आखिर दूसरी और वस्तु है ही क्या इस संसार में? इस गाढ़े में यदि मैं तुम्हारे कुछ काम आ सकी तो मैं अपने को धन्य समझूँगी।"

"मगर अकेले जाना तो बड़ा बेमजा रहेगा—तुम्हें भी साथ चलना होगा। यहाँ पड़ी-पड़ी करोगी भी क्या?"

"जो काम उठा चुकी हूँ उसे कैसे छोड़ दूँ? पार्टी का काम, गरीब मजदूरों का काम।"

सतीश ने देखा कि सीधे विरोध करने से काम नहीं निकलेगा। हो सकता है, वह और भी तनती ही जाय। आजकल हर बात में पॉलिसी की पॉलिश जरूरी है। बस, उसने तारीफ़ से ही शुरू किया और कहता गया—"यह काम तो बड़ा सुन्दर है और फिर तुम जैसों के हाथों तो यह सोने में सुगंध की नेमत पा जायगा। मगर बात यह है कि यह तो बम्बई में भी हो सकता है। सेवा का भाव चाहिए, फिर इसका विस्तार तो इतना विशाल है कि सारा

संसार इसमें समा जा सकता है। अभी बुलाओ महबूब को। मैं उसे सारी बातें समझा दूँगा।"

सतीश ने सोचा कि महबूब को मिलाकर ही काम निकालना ठीक होगा। बहस का वह कीड़ा है। उससे बहस करने में वह पार न पाएगा। फिर कई दिन उसने महबूब से घुल-मिल कर बातें कीं, उसे दोस्त भी बनाया और समझाया कि सीता बम्बई में पार्टी की ज्यादा मदद कर सकेगी—बनिस्बत इस वीरान जगह से। फिर वहाँ वह भी पार्टी को कुछ पैसे से मदद करता रहेगा।

आख़िर कोई एक हफ्ते बाद कहीं सीता को यहाँ से निकलकर बम्बई जाने की इजाजत मिली।

लॉर्ड बेवेल के वाइसराय होते ही राजबन्दी छोड़े जाने लगे। यह साफ़ हो गया कि ब्रिटिश गवर्नमेंट समझौते का द्वार खोलना चाहती है। शिमला में प्रान्तों के भूतपूर्व मुख्य मंत्रियों को राय-मशविरे के लिए बुलाया गया। कितने प्रमुख नेता और कार्यकर्त्ता जेल की चहारदीवारी से बाहर आ गये।

नवीन की भी रिहाई हो गई। उसके सारे कसूर माफ़ कर दिये गये। उसकी खोई आज़ादी उसे वापस मिल गई। पर एक अजीब सुनसान में वह ख़ुद खो गया। आज वह बिलकुल अकेला है। सालों कैद रहने के बाद आज उसे सब ओर रीता ही रीता लगता है। लगता है किसी अनजान टापू में वह उतर आया है। किधर जाए, क्या करे—कुछ समझ में नहीं आता। हमीरपुर गाँव के उसके साथी अभी रिहा नहीं हुए थे। नहीं तो वह पहले उन्हीं के साथ हमीरपुर जाता। मगर अकेले वहाँ जाकर क्या करे? इस तनहाई में उसकी रिहाई भी उसके लिए एक भँवर बन गई। वह उबचुब होने लगा।

मगर ढूँढ़नेवाले को राह मिल ही जाती है। जेल में ही सुनी ख़बर

उसे याद आ गई कि कलकत्ते के साप्ताहिक 'स्वतंत्र' को एक सम्पादक की जरूरत है। बस, उसके दिल में मनसूबे भूम उठे कि वह कलकत्ते जाकर 'स्वतन्त्र' में अपनी किस्मत की आजमाइश करे। यदि वहाँ कुछ नहीं भी हुआ तो कलकत्ता महान नगरी है, वहाँ कुछ-न-कुछ काम मिल ही जायेगा। फिर रोटी कमाने के साथ ही वह वहाँ के विशाल सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ पैठ भी पा जाएगा। यह सोच उसके पैरों में पंख लग गये। रात की ही गाड़ी से वह कलकत्ते के लिए प्रस्थान कर गया। जेल में कुछ पैसे रोजमर्रे के खर्च में से बचा लिये थे वही आज काम आये।

नवीन की जिन्दगी ने एक नई करवट ली। कल का आन्दोलनकारी आज सम्पादक बन बैठा। भगवान की देन उसकी प्रतिभा कुछ ऐसी बहुमुखी थी कि इस नए पद की मर्यादा भी वह बड़ी खूबी से निबाहने लगा। दर्जनों उम्मीदवारों की होड़ के बीच भी वह बात-की-बात में चुन लिया गया। दो सौ रुपये माहवार वेतन तथा प्रेस के ही एक हिस्से में रहने का प्रबन्ध। अकेले नवीन के लिए यह काफ़ी था। वह दिन-भर पढ़ता और रात में सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखता। इतने दिनों तक पढ़ाई-लिखाई छूट जाने के कारण अब उसे इस काम में एक नया जोश—एक नया उत्साह मिलता। इस नई लगन और उमंग-तरंग में वह मौज की लहरें लेने लगा। सन्ध्यासमय राजनैतिक तथा साहित्यिक जीवों का जमघट लग जाता। विचारों का आदान-प्रदान होते-होते खासी अच्छी बहस भी छिड़ जाती।

'स्वतन्त्र' के संचालक श्री रामलालजी जयपुरिया एक धनीमानी व्यक्ति थे। उनकी राय थी कि उनका पत्र उद्योग-प्रधान रहे मगर नवीन के इसरार पर उसमें राजनैतिक तथा साहित्यिक मसाले भी दिये जाने लगे।

नवीन ने कितने नये-नये शीर्षक एवं स्तम्भ भी चलाए। सम्पादक का काम उसके लिए बिलकुल नया था मगर उसकी कल्पना-शक्ति कुछ इतनी बेजोड़ थी कि कुछ ही दिनों में उसने 'स्वतन्त्र' को चमका दिया। कलकत्ते की अखबारी दुनिया में उसका नाम हो गया। साहित्यिक सभाओं में नवीन बाबू का पधारना बहुत जरूरी हो गया, राजनैतिक मजलिसों में कुछ बोलना भी उसके लिए आवश्यक था तथा व्यवसायी समाज में भी औद्योगिक विषय पर अपनी राय देने को उसे मजबूर होना पड़ता। कुछ अजीब हाल था।

मध्यरात्रि के उपरान्त कलकत्ते जैसी महानगरी के तमाम धन्धों से छुटकारा पा जब नवीन अपने कमरे में लौटता तो एकान्त में उसकी भावनाए उसे खींचकर हमीरपुर की बस्तियों में ले जातीं जहाँ उसे चिरपरिचित दृश्य मिलते; भगत, मँगरू, निजाम मिलते और मिलती सोनिया—रोटी सेंकती, सर में तेल मालिश करती, घाव पर पट्टी बाँधती, फिर रोती, बिलखती, बिसुरती चली जाती—दूर-सुदूर, मन के आकाश-क्षितिज में लीन होते-होते जाने कहाँ! फिर भाभी याद आतीं, घर याद आता, उन्हें खत डालने को रोज सोचता मगर आज तक न डाल सका, जाने क्यों......और डॉक्टर....उसे तो वह महीने भर परिश्रम करके भी न ढूँढ़ सका। वह कहाँ छिप गया, कैसे लुप्त हो गया, कुछ पता नहीं। पैरोल पर छूटने के बाद एक-दो खत आए, फिर नदारद। कहीं कोई खबर नहीं, कोई संकेत नहीं।

और बाहर दिन-रात सैकड़ों चेहरों, दर्जनों मजलिसों और पार्टियों की हलचल से घिरा रह कर भी वह बेचारा 'स्वतंत्र' का परतंत्र सम्पादक भीतर से अकेला बना रहता है। हाँ, धीरे-धीरे पुराने साथी बीते दिनों के साथ

जाने कहाँ खो गये, आज नए साथी हैं, नई अनुभूति है और नया वातावरण। रसिकजी, कलाधरजी, सुमतिजी, नीलमजी तथा सुश्री अनामिका सदृश सुकवि, कहानीकार शेखर, किंकरजी सदृश उपन्यासकार तथा रामरतनजी, रामधनीजी सदृश पत्रकार नवीन के यहाँ आयोजित गोष्ठी में सदा पधारते रहते। और, राजनैतिक संवाददाताओं, नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के झमेले की तो बात ही क्या—वह तो कहीं नहीं और कहाँ नहीं!

नवीन सम्पादकीय लिखने में तल्लीन है। मेज पर दूसरे फर्मे का मशीन-प्रूफ भी रखा है। डाकिया डाक दे गया वह बंडल भी अभी ज्यों का त्यों है।

इसी समय चपरासी ने आकर कहा—"बाबू! रसिकजी आए हैं। जल्द मिलना चाहते हैं।" नवीन ने मुँह बिचका लिया—"अरे भाई, अभी मशीन-प्रूफ का ऑर्डर देना है। उन्हें दो मिनट भी तो बैठाओ। आते ही मिलने के लिए उतावले हो जाते हैं। इतना काम धरा-पड़ा है।"

बातों का सिल-सिला अभी खत्म भी नहीं हुआ था कि रसिकजी अन्दर पिल ही पड़े।

रसिकजी—"जय सम्पादकजी की, जय। कहिए, आनन्द तो है!"

नवीन—"बड़ी कृपा आपकी, महाराज! बड़ी कृपा! कहिए, कैसे कष्ट किया?"

"इधर दो-चार दिनों से भेंट नहीं हुई थी; सोचा, प्रेस में ही मिल आऊँ।'

"बड़ी कृपा आप की।.......आपकी कविता इस अंक में जा रही है। आपकी कलम भी क्या कमाल करती है! इस बार तो सभी मात हैं।"

रसिकजी नाच उठे। रग-रग फड़क उठा। बड़ी नम्रता से कह पाए—"यह तो आपकी महत्ता है।........"

दोनों कुछ देर तक चुप रहे। नवीन छुट्टी पाने को कसमसा रहा है। मगर रसिकजी उठने को तैयार नहीं। फिर शान्ति भंग करते हुए नवीन ने कहा—"कहिए, और क्या हुक्म है?"

"एक चेक........"

"कैसा?"

"इसी कविता का!"

"मगर छपने तो दें!"

"बात यह है कि कवि-सम्मेलन में आसनसोल जाना है। संयोजक महोदय की चिट्ठी आई है कि राह-खर्च यहीं मिल जायेगा। इसलिए पैसे का प्रबन्ध करना है।"

"अजीब हैं संयोजक महोदय! यह कौन तुक है?"

"क्या बताऊँ, हमारे बिरादरीवालों ने रेट बिगाड़ दिया है। पैसे लेकर हजम कर गये हैं।"

"तो लीजिए यह १५) रु० का चेक।"

"फिर रहने भी दीजिए। कलाधरजी, नीलमजी, सुमतिजी का रेट मैं नहीं लेता।"—रसिकजी ने मुँह खट्टा कर लिया।

नवीन ने देखा कि यह जीव सीधे पिराड छोड़ने का नहीं। बस, झट २५) रुपये का चेक थमाकर अपनी जान बचाई। मशीन प्रूफ के लिए

मशीनमैन जाने कितनी बार दौड़ चुका था। पहले उसने वही देखना शुरू किया।

सोलह पेज का प्रूफ देखकर जब उसने संतोष की साँस ली तो देखा कि कलाधरजी महाराज कमरे में बेधड़क दाखिल हो गये।

"अजी साहब, आप भी खूब निकले!"—कलाधर जी ने अपनी रोष-कला का रोब आते ही जमाया।

"क्यों, बात क्या है?"—नवीन ने चौंक कर पूछा।

"साहब! गत सप्ताह मैंने आपसे इतना कहा कि मेरी साहित्य-सभा के विषय में कुछ टिप्पणी लिख दें, मगर आपने मेरी तनिक भी न सुनी। वाह, ऐसी बेरुखी!"

"क्षमा करेंगे कलाधर जी, लाख प्रयत्न करने पर भी कोई 'स्पेस' न निकाल सका। परन्तु मैंने तो आपको लिख दिया था कि इस सप्ताह में कुछ अवश्य ही जिक्र कर दूँगा।"

"अजी साहब, कुछ नहीं......जरा तगड़ा जिक्र होना चाहिए। कम-से-कम दो कॉलम।"

"जी, कोशिश कुछ वैसी ही रहेगी।"

"अरे भाई, मैं आपको कितना समझाऊँ कि इस महानगरी में मेरी साहित्य-सभा एक ही संस्था है जो हिन्दी की पताका, साहित्य की ध्वजा आसमान में उठाए खड़ी है। नहीं तो इस बंगला देश में हिन्दी को कोई पूछता? मैं न रहता तो यहाँ रवीन्द्र के सामने निराला, पन्त, महादेवी, दिनकर का कोई नाम भी जानता? शरत् तथा बंकिम के सामने प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और बेनीपुरी को कोई पूछता भी? यह तो मैं हूँ जो हिन्दी के सपूतों

का नाम इस अहिन्दी प्रदेश में जगाए-जुगाये रखता हूँ। परन्तु मुझे बड़ा दुख है, आप मुझे प्रोत्साहन नहीं देते, मुझे आगे नहीं बढ़ाते। मेरा दुर्भाग्य है कि रसिकजी का प्रभाव आप पर इतना है कि मेरे लिए आपकी कलम उठती तक नहीं।....."

"नहीं कविजी, आप भी कैसी बातें करते हैं। रसिकजी का प्रभाव मेरी लेखनी पर क्या पड़ेगा ?"

"छिपाइए नहीं, सम्पादक जी, मैं सब कुछ जानता हूँ। वह नीच है, ...क्या कहूँ—कुछ कह भी नहीं सकता—कवि-बन्धु है—मगर मेरी जड़ सदा खोदता रहता है। अभी-अभी देखा आपके ऑफिस से निकलकर बाहर गया है। जाने क्या-क्या मेरे खिलाफ कह गया होगा।"

"अजी साहब, आप कुछ शंका न करें, मुझसे ऐसी कोई भी बात नहीं हुई है। विश्वास रखें—।"

"मैं तो भाई, भगवान पर ही एकमात्र भरोसा रखता हूँ—हो, जो हो। अच्छा, अब चला। देखना है, इस अंक में भी कुछ साहित्य-सभा का उल्लेख होता है या नहीं।"—कलाधर जी अपनी कला समेटे, छड़ी घुमाते बाहर निकल गए।

नवीन ने फोरमैन को झट बुलाकर कहा—"एक कॉलम भी जगह 'साहित्य-जगत्' शीर्षक में रखेंगे। अभी कुछ छूट गया है।"

"मगर उसका मैटर तो बँध चुका है।"

"अरे फोरमैन साहब, उसे तोड़वाइए, वरना मेरा सर फूटकर रहैगा....." —और वह झट साहित्य-सभा पर कुछ लिखने को जम गया।

फोरमैन सरपर सवार है। समय भागता चला जा रहा है। अंक परसों

ज़रूर निकल जाना है और इधर बँधा मैटर तोड़कर नया मैटर कम्पोज करके घुसाना है। अजीब परीशानी है। मगर परीशानी का अभी अन्त नहीं। कुर्सी के सामने खड़े हैं नीलमजी—बेबसी लिए, आरज़ू लिए, करुणा लिए।

आखिर कलम रखकर सम्पादक जी को बोलना ही पड़ा—"राजन्! क्या आज्ञा है?"

"महाराज, मेरी कविता के लिए तो एकाउन्टैन्ट बाबू ने केवल १०) रुपये ही दिये। मैं कुछ कहना नहीं चाहता। यह तो प्रोत्साहन-पुरस्कार है। मगर मजबूरियाँ हैं। यदि ५) रु० और मिल जाते तो एक कमीज भी बन जाती।"

वह लज्जा से गड़े जा रहे थे। कुछ कहना न चाहते हुए भी इतना सब कुछ वह कैसे कह गए इस पर उन्हें भी आश्चर्य हो रहा था। परन्तु मजबूरियाँ जो न करायें, जो न दिखायें।

"भाई साहब! मेरी पूरी सहानुभूति आपके साथ है मगर नियम भी तो नियम ही है। इस मास पारिश्रमिक की सूची कुछ नियम पर ही बनी है...।"

"परन्तु यह तो मेरी प्रार्थना है, एक सहृदय से, सहोदर से। नियम का व्यतिक्रम चाहता हूँ, महाराज!"

नवीन की नज़र नीलम की फटी कमीज पर गई, उसके मैले पाजामे के पेवन्दों पर गई पर जाने क्यों वह उससे फिर उसकी आँखों में आँखें डालकर कुछ बातें न कर सका, कुछ समवेदना न जाहिर कर सका। कुछ देर तक कशमकश में पड़ा रहा, किंकर्त्तव्यविमूढ़ रहा, किसे बुलाए, क्या कहे—फिर एक सिप् पानी पीकर झट अपने मनीबेग से ५) रु० का नोट निकालकर उसकी सूखी तलहथी पर रख दिया और फिर लिखने लगा साहित्य-सभा पर अपनी जोरदार टिप्पणी, पुरजोर सम्पादकीय।

गरीब नीलम अपने को पूरा-पूरा उघारकर फिर पूरा-पूरा छिपा भी नहीं पाया था कि चपरासी ने झट आकर कहा—"कविजी, एकाउन्टेन्ट बाबू रसीद लिखवाने को आपको अपने ऑफिस में बुला रहे हैं।"

आज के इस वातावरण में नवीन सम्पादकीय क्या खाक लिखे! शृंखलाएँ रह-रहकर टूट जाती हैं। बातें भूल जाती हैं। फिर लगा तार जोड़ने, सुर मिलाने। दो-चार पंक्तियाँ और लिख पाया कि सुमतिजी आ टपके। नवीन लिखता जा रहा है और आप कुर्सी पर मूर्तिसदृश बैठे हैं। इस बार उसने निश्चय कर लिया था कि टिप्पणी लिखकर ही किसी से बातें करूँगा। चन्द मिनटों में जब पूरा मैटर तैयार हो गया तो उसे फोरमैन के हवाले करते हुए सुमतिजी से उसने बहुत ही नम्रतापूर्वक पूछा—"कहिए महाराज, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

"नई-पौध के लिये एक कविता लाया हूँ।"

"ओफ्! आजकल तो केवल कविताओं की ही भरमार है। लाइए, रख लेता हूँ। अगले अंक में देखूँगा।"

"महाशय, जरा इसे पढ़ लें, मैं शीर्षक ढूँढ़ रहा हूँ।"

"अभी तो सर चकरा रहा है। कल इतमीनान से····।"

"बड़ी छोटी चीज है। बस, एक ही सरसरी निगाह में····।"

नवीन जानता था कि सुमतिजी अनामिका से प्रेम करते हैं और उनकी कविताएँ अनामिका को ही संकेत करके लिखी जातीं हैं। ऊबकर उसने झट कहा—"क्यों, प्रणय-गीत है ही, 'अनामिका' शीर्षक रखे देता हूँ—!"

सुमतिजी लज्जा से गड़ गए। सम्पादकजी से ऐसी खुलासगी उन्हें कभी भी नहीं हुई थी। झेंपते हुए बोले— आपने भी खूब मजाक किया।····जी,

मैं आप पर ही छोड़े देता हूँ। जो अच्छा शीर्षक जँचे, रख लेंगे। अच्छा, नमस्कार !"

"नमस्कार ! नमस्कार !!"

तब तक पाँच बज गए। ऑफिस की चहल-पहल शान्त हो चली।

"कहिए किंकरजी, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? आप जैसे कहानीकार के दर्शन कर आज मैं धन्य-धन्य हो गया।"

"साहब, कल ही मैंने 'स्वतन्त्र' में विज्ञापन पढ़ा है कि आपलोग प्रकाशन-कार्य भी करने जा रहे हैं। आपकी बड़ी वृहत् योजना है। मालूम हुआ है कि हिन्दी के गणमान्य कलाकारों की रचना आप जल्द ही प्रकाश में लाने जा रहे हैं। तो मेरा भी सहयोग आपके साथ है।"—किंकरजी ने बड़ी नम्रता से कहा।

"अति सुन्दर, अति सुन्दर। मैं तो आपसे मिलने ही वाला था। कहिए, कोई उत्तम रचना तैयार है?"

"साहब, एक नहीं, अनेक! क्या कहानी और क्या शब्द-चित्र। दो-चार नाटक भी हैं। एकाध उपन्यास भी। कहिए, क्या चाहिए?"

"एक कहानी-संग्रह ही दीजिए। अच्छा-सा।"

किंकरजी ने चट अपने चमड़े का बैग खोलकर एक पुलिन्दा थमा दिया।

नवीन ने इधर-उधर कुछ पन्ने उलटतेहुए कहा—"दस कहानियाँ हैं—"

"जी, सब मौलिक हैं।"

"हाँ, हाँ, कहना क्या, आप तो जो भी छू देते हैं वह सोना हो जाता है। मेरी प्रकाशन-संस्था आपकी रचना प्रकाशित कर धन्य-धन्य हो जायगी।"

"खूब, खूब ! तो नवीन जी, मुझे भी धन्य-धन्य कर दीजिये—ही-ही··· हा-हा-हा—"

—और किंकरजी का जोरों का ठहाका ऊपर-नीचे सब ओर गूँज उठा।

मगर नवीन इस संकेत को न समझ सका। वह कहता ही गया—"हिन्दी-संसार में जाने कितने कहानीकार हैं मगर आपके टक्कर का तो मैंने किसी को न पाया। जेल में ही आपकी रचनाओं से जो मेरा प्रेम बढ़ा वह आजतक बरकरार है और सदा बरकरार रहेगा। आप तो जिन्दगी उड़ेलकर रख देते हैं अपनी लेखनी की नोक पर।"

"नवीन जी ! मैं अपनी तारीफ़ नहीं करता मगर फिर भी मैं इस युक्ति में विश्वास रखता हूँ कि जबतक लेखक अपनी चीज़ को खुद ऊँचा उठाकर सरेबाजार यह घोषणा न करता फिरे कि जरा इधर भी मुखातिब होइए, यह अद्वितीय चीज़ मैं आपको दे रहा हूँ···इसे पारखी परख चुके हैं, यह सोना है, सोना—दप्-दप् चमकता हुआ—तबतक किसी लेखक की रचनाओं की कद्र ही नहीं होती। आख़िर क्या कीजिएगा, यह युग ही जो विज्ञापन का ठहरा !"

नवीन अकचका कर भौंचक-सा रह गया ! तबतक किंकरजी ने दूसरी युक्ति पेश की—"और, जनाब, जबतक आप लेखक की झोली भरपूर नहीं भर देते, उसे कलम उठाने को वैसा उत्साह नहीं रहता। भाई मेरे, कलम के

इन मजदूरों को यदि मजदूरी मनमुताबिक न मिली तो तुम्हारे लिए ये सोना न जुटा सकेंगे—समझे ? बस, माल निकालिए और खुद मालामाल बनिये। लाइए साहब, कन्ट्रैक्ट फॉर्म और····और निकालिए चेक बुक। मंगल मुहूर्त में मीन-मेष नहीं करते—बस, शुभस्य शीघ्रम् !"

नवीन ने कन्ट्रैक्ट फॉर्म पेश कर दिया। किंकरजी ने चट दस्तखत बनाकर रॉयल्टी की पेशगी के ५००) के आगे एक शून्य और जोड़ दिया। नवीन ना-ना कहता हुआ कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ मगर किंकरजी कब चूकनेवाले ? चट नवीन की ओर सिगरेट बढ़ाते हुए बोले—"हाथ मिलाओ दोस्त ! जो लिखा गया सो लिखा गया। इतने पैसे तो पन्द्रह दिन में आ जायेंगे। पहला संस्करण तो हाथों-हाथ बिक जायेगा। किंकर का रेट न खराब करो भैया ! पैसे जब बरसने लगेंगे तो तुम्हें मजा आ जायगा बाबू !"

"मगर इतनी रक़म तो सेठजी शायद नामंजूर कर देंगे।"

"क्या बातें कर रहे हो तुम भी ? मैं तो सेठ के साथ किफ़ायत कर रहा हूँ, वरना इसी रचना के लिए लक्ष्मी-प्रकाशन मुझे ६०००) रु० दे रहा था। मैंने समझा, पैसे तो आते-जाते रहेंगे—संगत की बात और है; तुमलोगों से अपना सरोकार···"

"मेरी हिम्मत नहीं होती। सेठजी से पूछकर ही···"

"क्या मज़ाक कर रहे हो दोस्त ! मेरे सहयोग की खबर सुनकर सेठजी खुश ही होंगे। लाओ, चेक में खुद भरे देता हूँ। तुम दस्तखत बना दो।"

आख़िर हुआ यही कि किंकरजी हाथ पकड़कर नवीन से चेक पर दस्तखत कराकर चलता हुए। नवीन तो हारा-सा मुँह लिए कुर्सी पर बैठा रहा। कुछ देर तक उसे कुछ सूझता ही नहीं था। किसी तरह चैन नहीं। सेठजी

जाने क्या रुख लें। किसी अज्ञात अनिष्ट की अशंका से वह व्याकुल हो उठा।

दो पहर को उसने सेठजी से सारी बातें सुना दीं। सेठजी बेतरह उबल पड़े। नवीन ने बहुत ऊँच-नीच समझाया, पर लाख सफाई देने पर भी वह अपने दोष को न धो सका। सेठजी ने उसे अबोध, अव्यावहारिक और अनाड़ी कहकर सम्बोधित किया। उसने सर झुकाकर सारी भर्त्सना सह ली।

दिनभर नवीन भावनाओं के भँवर में डूबता-उतराता रहा। राजनीति के विशाल मैदान का खिलाड़ी इस पिंजरे में बन्द-बन्द ऊब रहा है। जी चाहता है इस कफ़स को तोड़कर निकल भागे। यह उब-चुब की जिन्दगी उसे पसन्द नहीं। पर क्या करे, कहाँ जाय?

संध्यासमय ऑफिस से छूटते ही वह उपन्यासकार शेखरजी के यहाँ चल पड़ा। जाने क्यों, कलकत्ते के साहित्यिक-समाज में सबसे अधिक उसे शेखरजी से ही पटती है। शेखरजी से वह घुलमिलकर बातें किया करता है। फिर शेखरजी की ईमानदारी तथा उनकी सहृदयता किसके हृदय को बिना छुए रह सकती है!

शेखरजी ज्वर-क्लान्त हैं। उनका बेटा भी पिल्ही रोग से पीड़ित है। उनकी स्त्री पति-पुत्र की सेवा में रात-दिन एक किए खट रही है। नवीन की आवाज सुनते ही शेखरजी ने नवीन को अन्दर ही बुलवा लिया। फिर खाँसते हुए बोले—"भई, बीमार पड़ गया हूँ, इसीलिए हाज़िर न हो सका। आपका पत्र मुझे समय पर मिल गया था। इधर बच्चा भी बीमार है। क्या करूँ,

क्या न करूँ ! आप तो जानते ही हैं, मैं कहीं जाता भी कम ही हूँ।"

"वाह, खबर क्यों न दे दी पहले ?"

"किससे कहलाता—?"

"वाह ! मेरे पत्रवाहक द्वारा......"

"सोचा, अपनी परीशानी से दूसरों को क्यों परीशान करूँ ?"

"वाह, यह तो खूब रही ! खैर, अब कैसी तबीयत है ?"

"अब कुछ ठीक हूँ। बच्चों की बीमारी लेकर ज्यादा बेचैनी है।"

शेखरजी की मजबूरियों से नवीन भली-भाँति परिचित है। इसीलिए उसने बड़ी आजिजी से कहा—"भाई साहब, इस समय आपको पैसे की बहुत कमी है। मेरी प्रार्थना है कि अपनी पुस्तक की रॉयल्टी के एकाउन्ट में यह ५००) रु० आप रख लें। पाण्डुलिपि तो मैं आपसे ले लूँगा ही, आप कोई सोच न करें।"

"नहीं-नहीं, नवीन बाबू, यह नहीं हो सकता। आप मेरा धर्म न बिगाड़ें। जब मैं संशोधन कर पाण्डुलिपि आपको दे दूँगा, तभी पैसे लूँगा, अभी नहीं। इस ढिठाई के लिये क्षमा चाहता हूँ।"

"कोई बात नहीं, पाण्डुलिपि तो मैं ले ही लूँगा। इस समय तो इस रुपये से आपका बड़ा काम हो जायेगा।"

"नवीन बाबू, उसकी व्यवस्था हो जायेगी, उसकी चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं। मैं पैसे लेकर यदि कल मर जाऊँ और पाण्डुलिपि आपको न मिले तो मैं राम के दरबार में कौन-सा मुँह दिखाऊँगा ?"

इतना कहकर शेखर बाबू हँस पड़े। वह कट्टर सिद्धान्तवादी हैं। उन्हें भुलावा दे देना आसान काम नहीं। नवीन चुप रहा। कुछ देर इधर-उधर

की बातें कर वह घर की ओर चल दिया। राह में सोचता रहा—यह साहित्यिक-समाज भी रंग-बिरंगा है—कोई कलाधर है और कोई रसिक, फिर कोई नीलम और कोई किंकर। और इसी समाज में शेखर बाबू भी तो हैं। साहित्यिक तपस्वी, साहित्यिक दधीचि। कलम की कमाई पर जीना चाहते हैं; मगर अधर्म से बचकर —राम से डर कर।

"नवीन बाबू, साहित्य-सभा पर आपकी टिप्पणी तो कमाल की निकली। वाह, आपने तो कलम तोड़ दी। जनता पर इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा। आपको लाख-लाख बधाई!"—कलाधरजी हँसते-हँसते कह गए।

"आपको मेरी टिप्पणी पसन्द आई इससे मुझे बड़ा संतोष हुआ, बड़ा सुख मिला। फिर आपकी संस्था ही ऐसी है कि जो भी उस पर कुछ लिखे वह प्रशंसनीय ही होगा।"—नवीन ने भी मुस्कुरा दिया।

कुछ देर तक गम्भीर वातावरण रहा, फिर मौन को भंग करते हुए कलाधर जी ने छेड़ा—"नवीन बाबू, आप तो हमारे सदस्य हैं। अपनी नवीन रचना 'वासवदत्ता' पर एक समीक्षात्मक लेख लिखवा लाया हूँ। आप इसे कृपाकर 'स्वतन्त्र' में किसी दूसरे के नाम से छाप दें।"—कलाधरजी ने लेख निकालकर मेज पर रख दिया।

नवीन तो चक्कर में पड़ गया। क्या कहे—अजीब परिस्थिति है। किसी तरह वह कह पाया—"आखिर मैं किसका नाम दूँ? कुछ समझ में नहीं आता।"

"अजी, कोई उपनाम ही दे दें। मगर भई, अगले अंक में अवश्य निकल जाए। इतनी कृपा आप अवश्य करें।"

"....................................."

"नवीनजी, आप संसार को नहीं पहचानते। यदि मैं अपनी रचनाओं को पूर्णरूप से प्रकाश में न लाऊँ—तो भला इसकी कोई कद्र करेगा ? यह विज्ञापन का युग है—विज्ञापन का। बिना चकमक पैदा किये कोई किसी की ओर ताकता है ? इसीलिए आलोचना, प्रत्यालोचना लिखकर, यानी लिखवाकर, जहाँ-तहाँ प्रकाशित-प्रसारित कराना नितान्त आवश्यक है।"—वह फिर हँस पड़े।

नवीन ने उस लेख को लेकर अपने डेस्क में डाल दिया। उसकी आत्मा इसे नामंजूर कर रही थी—किन्तु कलाधरजी इस तरह बरज़िद हो गये कि उसे 'ना' करते नहीं बना।

कलाधरजी के प्रस्थान करते ही शेखरजी पहुँच गये। नवीन ने बड़े तपाक से कहा—

"......आइए-आइए, शेखरजी, पधारिए। कुछ सुनी आपने अपने मित्र किंकरजी की करामात ?"

"क्यों, बात क्या है ?"—वह कुछ घबड़ा कर बोले।

"महाशय जी, आपने अपने उपन्यास का सौदा हमसे भी किया और लक्ष्मी-प्रकाशन से भी। बताइए तो भला, अब तो दोनों छापेंगे और न वह बेच पायेंगे और न हम। दोनों लड़ पड़ेंगे और किंकरजी दर किनार। ज़रा आप ही सोचें, कैसी बात है यह ! जयपुरियाजी सुनेंगे तो फौरन मुकदमा चलाने को कहेंगे। भला किंकरजी को कोर्ट के हवाले किया जाय तो इसका

असर हिन्दी-संसार पर क्या पड़ेगा ? उफ़, मेरा तो माथा चकरा गया। अजीब धर्मसंकट में प्राण पड़ गए हैं—क्या करें, क्या न करें—खायें किधर की चोट, बचायें किधर की चोट !"—नवीन माथा ठोकने लगा।

शेखरजी कुछ देर गम्भीर बने रहे, फिर धीरे-धीरे बोलने लगे—"नवीन बाबू, एक बात सोचिये, आखिर लेखक भी तो हाड़-माँस का ही बना हुआ मानव है। उसे भी मन है, आकांक्षाएँ हैं और पेट है। बाल-बच्चे हैं, बीवी, भाई हैं। यदि वह पेट भरने के लिए कभी ऐसा कर बैठता है तो आप उसे छोटी निगाह से देखते हैं—और यदि जयपुरियाजी अपने व्यवसाय में प्रतिदिन ऐसा करते रहते हैं तो आप उस ओर नज़र उठा कर भी नहीं देखते। यह भी एक अजीब बात है। जयपुरियाजी दोष-रहित रह जाते हैं और बेचारे किंकरजी बेइज्ज़त किए जाते हैं। आखिर यह कहाँ का न्याय है !"

"तो आप भी ऐसा क्यों नहीं करते !"

"भाई साहब, हर आदमी का अपना-अपना नैतिक स्तर है। मेरे सिद्धान्त कुछ और हैं और उनके कुछ और। मेरा अपना ढंग है और उनका अपना। दोनों की दो निगाहें हैं। मगर मैं तो यह कहता हूँ कि लेखक भी अन्य मानवों की ही तरह मानव ही है ; और जो कमजोरियाँ अन्य बन्धुओं में हैं वे उसमें भी हैं। जिस धरातल पर सब हैं उसी पर वह भी है—न ऊँचे न नीचे।"

नवीन को एक तीखी चोट लगी। शेखरजी से ऐसे उत्तर की उसे कल्पना भी न थी। उनकी नैतिकता पर जमी उसकी आस्था को अनायास एक गहरा धक्का लगा। वह एकबारगी काठ हो गया।

"·······उसे भी आदमी की ही कत्तार में रखें न कि देवताओं की।"—शेखरजी कुछ और गम्भीर होकर बोले।

"मैं तो समझता था कि कलम के धनी धन के मायाजाल से दूर हैं। इसकी मादकता उन्हें छू नहीं गई है।"

"यही न गलत समझते हैं आप। आखिर वह मन और पेट की मार से भागकर जाता कहाँ है! पैरों में पंख बाँधकर उड़ने की हविश उसे जो हो मगर उन्हीं पैरों में मनभर भारी सीकड़ भी बँधे हैं जो उन्हें धरती पर पटक कर दे मारते हैं। बड़ा बुरा है लेखकों का भाग्य—नवीन बाबू! पैरों में पंख भी हैं और बेड़ियाँ भी। हाय राम!"—शेखरजी की हँसी में भी एक दर्द था।

"भाई! आपकी बातें अपने दायरे में पूरा महत्व रखती हैं मगर मैं तो समझता हूँ कि साहित्य से जीवन बड़ा है। यदि साहित्यकार का जीवन उसके आदर्श को, उसकी लेखनी द्वारा प्रस्तुत नैतिक स्तर के मापदंड को नहीं छूता तो उसकी लेखनी क्या खाक उसके पाठक को एक नई रोशनी, एक नई दिशा दे सकेगी! आप सोचते कुछ हैं, लिखते कुछ हैं और करते कुछ हैं। जहाँ जीवन में इतनी विषमता है वहाँ पाठक क्या सोचता होगा, क्या समझता होगा? इस पहलू पर भी आपने कभी सोचा है?"

"नवीन बाबू, आखिर कितने पाठक हैं जो लेखक के जीवन तक पहुँच पाते हैं, उसे निकट से देख सकने में समर्थ होते हैं?"

"यही तो खैरियत है! मगर जो ज़रा भी किंकरजी सदृश लेखक के समीप पहुँचेगा वह उतना ही उससे दूर भागना चाहेगा और उसकी रचनायें तो उस पाठक के लिए कूड़ा-कर्कट ही रह जायेंगी। भला क्या भली प्रेरणा दे पाएँगी वे उसे?"

"नवीन बाबू, अपनी-अपनी नज़र और अपने-अपने विचार। मैं क्या कहूँ? हाँ, इतना ज़रूर मानता हूँ कि साहित्य से जीवन महान है।"—उनकी आवाज़ में एक करुणा थी, एक बेबसी थी।

उस दिन ऑफिस में बैठे-बैठे नवीन को अचानक भगतजी का पत्र मिला कि उसके सब साथी रिहा हो गए। नवीन कुर्सी से उछल पड़ा। बीते हुए दिन फिर लौट आए। हमीरपुर में उसकी तुरंत बुलाहट है। आन्दोलन में गाँवों की बुरी तरह तबाही हो गई है। राजबन्दियों के घर बर्बाद हो गए हैं। उन्हें अपनी सारी गिरस्ती बनानी होगी। फिर इस काम में उन्हें जल्द लग जाना है और इसका नेतृत्व भी तो नवीन को ही करना है। सब के पकड़ जाने तथा घोर दमन के कारण जनता में जो पस्ती आ गई थी वह नेहरू के गर्जन तथा राजबन्दियों की रिहाई से दूर होने लगी। जवाहर-लालजी ने साफ एलान कर दिया कि इस आन्दोलन की सारी जिम्मेवारी हमारी है और हमने ऐसा किया है। इस निर्भीक घोषणा का तत्काल असर यह हुआ कि चारो ओर जो घोर आतंक के घने बादल छा गए थे— वह छँटने लगे और जनता की नस-नस में फिर बिजली दौड़ गई। आसमान से कुहासा हटने लगा और अब आँखों के सामने एक नया प्रकाश चमक उठा है, कानों में एक नई आवाज़ गूँज उठी है।

नवीन ने संध्यासमय जयपुरियाजी से गाँव लौट जाने की इजाजत माँगी और अपने साहित्यिक बन्धुओं से अपना निर्णय कह सुनाया। सभी उदास हो गये। कोई भी नवीन को खोने के लिए तैयार न था। जयपुरियाजी ने लाख समझाया, वेतन बढ़ाने का प्रलोभन भी दिया, कविजन उसे कलेजे से सदा लगाकर कलकत्ते में रखने को प्रस्तुत थे, और शेखरजी आँखों में आँसू भरकर उसे रुकने को आरजू-मिन्नत करते रह गए, मगर सब बेकार। उसे तो हमीरपुर की मुसीबत की मारी जनता की आह-कराह—भीषण चीत्कार के आगे यह साहित्य-संगीत का संसार दानव-दल के अट्टहास-सा भयंकर लग रहा था। जनता के प्रति उसका प्रेम अटल था, कर्त्तव्य की पुकार पर दौड़ पड़ने को वह विवश था।

उसने कविजन को समझाया कि मैं तो सदा आपका हूँ और जब भी आप मुझे याद करेंगे, मैं सेवा करने को तैयार आऊँगा। शेखरजी से कहा कि मेरा-आपका साथ तो कभी भी इस जीवन में छूट नहीं सकता। मैं अपना सारा काम ठीक कर आपको अपने क्षेत्र में बुला लूँगा। साहित्य और राजनीति के इस सच्चे हेल-मेल से देश की अन्तरात्मा को एक नया बल मिलेगा। बस, समझिए कि यह गंगा-यमुना का मिलन होगा। कलाकार शेखर का कोमल हृदय शब्दों का इतना दान पाकर कृतकृत्य हो गया।

इस तरह सबसे मिलजुल कर, विदा लेकर नवीन कलकत्ता-प्रवास की अवधि बिताकर अपनी कर्मभूमि की ओर चल पड़ा। गले में सुन्दर महमह करती हुई फूलों की माला और हृदय में कितने सहृदयों की प्रेम-भावना।

हमीरपुररोड स्टेशन पर ट्रेन पहुँचते ही हजारों की संख्या में खड़ी जनता ने उसका स्वागत किया। 'नवीन बाबू की जय' के नारे बुलन्द होने

लगे और माताओं-बहनों ने आगे बढ़कर आरती भी उतारी। भगत, निजाम तथा मँगरू इत्यादि ने उसके पैर छूए। उसका एक हाथ कैसे कटा और उस रात नदी को कैसे पार किया, इसकी कहानी इस इलाके के घर-घर में प्रचलित हो गई थी। सभी अपनी कल्पना के वितान पर उस कहानी को तानकर और भी कौतूलहपूर्ण बनाते चले गये थे। कितने रसिक उस कहानी को गाने के लय में गा-गा कर सुनाते थे। खेतों में औरतें रोपनी-सोहनी करते उसे गातीं, भैंसों-गायों को चराते हुए चरवाहे कानों पर हाथ रख उसका आलाप लेते और गाँव के बूढ़े-जवान किसी की दालान में जुट कर रात में झाल-मंजीरे पर भी उसे गाते। आज इस लोक-गीत के लोक-नायक को आँखों के सामने पाकर जनता निहाल हो गई।

एक लम्बा जुलूस बनाकर उसे स्टेशन से हमीरपुर लाया गया। हमीरपुर में एक बड़ी सभा हुई। उसकी त्यागभरी सेवाओं के लिए उसे हार्दिक धन्यवाद दिया गया और फिर से उस अंचल का नेतृत्व करने को उससे प्रार्थना की गई।

नवीन ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—"धन्यवाद के पात्र आप हैं, मैं नहीं। इस अंचल में आन्दोलन जड़ न पकड़ता, यदि आप मरने को तैयार न होते। यह तो आप ही की महत्ता है, कुछ मेरी सत्ता नहीं। अब सबसे पहला काम यह है कि हम पीड़ितों की सहायता में झट लग जायँ। जिन्होंने अपना बेटा खोया है, जिन्होंने अपना पति खोया है तथा जिन्होंने अपना सर्वस्व खोया है उन्हें झट सान्त्वना देना तथा आर्थिक सहायता देना हमारा पहला कर्तव्य है। राजनैतिक पीड़ित-कोष खोलकर, हम झट पैसे इकट्ठे करने में

जुट जाएँ और साथ-साथ हमारे जो भाई अभी भी सीकचों में बन्द हैं उन्हें छुड़ाने की उचित कारवाई करें।"

सभा-विसर्जन के बाद नवीन गाँव में घर-घर गया। प्रायः सभी के घर जला दिये गये थे। लोग बाहर की छावनियों और दालानों में गुजर कर रहे थे। मवेशी पेड़ों की छाया में रहते। इस गाँव की तबाही बुरी तरह हुई थी। भगत का पुराना घर तो जलकर खाक हो गया था। आज उसका नामनिशान तक नहीं। जेल से छूटने पर उसने वहीं एक झोपड़ी बना ली थी। नवीन पुनः उसी में रहने लगा।

हाँ, वह झोपड़ी हरी तो थी मगर भरी नहीं थी। सूनी-सूनी-सी लगती थी। भगत की गिरस्ती की आत्मा सोनिया तो अभी भी अपनी मौसी के ही यहाँ पड़ी थी। उसे यह खबर कहाँ कि उसका नवीन उसकी कुटिया में फिर लौट आया है! रात में अपने अनुभवों की कहानी सुनाते-सुनाते नवीन ने पूछ ही तो दिया—"भगतजी, सोनिया के बिना यह झोपड़ी सूनी-सूनी-सी लगती है। क्या उसे अब यहाँ नहीं बुलाएँगे?"

"हाँ, नवीन बाबू, उसे झट ही यहाँ लिवा लाएँगे। वह तो मेरे प्राणों से भी बढ़कर है। एक दिन उसकी मौसी के गाँव पर सभा की जायगी। हम आपको वहाँ ले चलेंगे। अपने कोष के लिये कुछ पैसे भी एकत्र करेंगे और उसे भी लिवा लाएँगे।"

"बड़ा सुन्दर विचार है। प्रोग्राम बना लेना है।"

रात जाने पर भगत सो गया और नवीन सोचता रहा—डाक्टर कहाँ है, कैसे है—कोई पता नहीं। इस जगह आने पर उसकी याद फिर हरी हो गई। जाने उसकी जिन्दगी ने फिर कौन-सी करवट ली। उसका पता लेना

जरूरी है। इस अंचल में लोग अब उसे अदना नेता मानने लगे। उसे अब एक नेता का दायित्व निभाना है। आज वह लाखों के हृदय पर राज्य करता है। उसका क्षेत्र असीम है, उसकी भुजाओं में शक्ति है। वह इस उत्तरदायित्व को शान से निभायेगा। उसके पास आज जन-शक्ति है—अपार शक्ति है। जनता-जनार्दन का असीम प्रेम है। भला उससे बढ़कर बड़भागी और कौन है! वह आज जन-नायक ही नहीं—गण-देवता भी है।

"मौसी, मौसी ! बाबा का पत्र आया है, बाबा का। बाबू जेल से छूट कर चले आए कुशलपूर्वक और वह भी""वह भी ! जय भगवान, तेरी जय हो ! तू धन्य है ! तेरी महिमा अपार है !"—रोमांच से सोनिया की आँखों में आँसू छलक आए।

"जय देवीजी, जय ! भगतजी छूटकर चले आए सहीसलामत। भगवान ने हमारी प्रार्थना सुन ली। और हाँ, यह दूसरा कौन छूटकर आया है री बिटिया ?"

"नवीन बाबू, मौसी""

"यह कौन है री ?"

"गाँधी जी का चेला, मौसी !—देश-सेवक !"

"राम, राम ! नाम न लो उसका, उसी ने तो भगतजी को भी जेल में डलवा दिया।

"ना मौसी, ऐसा मत कह। सभी देश-सेवा के चलते जेल गए। सभी सेवक ही थे मौसी !"

"हुँः! कितने घर तबाह हो गए। ये लाख कोशिश करें, हम तो जैसे थे वैसे ही रह जाएँगे। ये अँग्रेज जानेवाले जीव नहीं हैं बिटिया!"

ये दलीलें सोनिया को अच्छी नहीं लग रही थीं। परन्तु मौसी को कुछ जवाब देना उसने उचित न समझा। झट फूल-डलिया उठाकर मंदिर को पूजा करने चली गई। मन-ही-मन लाखों मिन्नतें मान रखी थीं उसने। सभी को एक-एक कर उतारना था उसे। मंदिर में ज्यादा देर वह टिकी नहीं। झट लौट आई तो मौसी ने सवाल किया—"क्यों, आज इतनी जल्दी कैसे लौट आई?"

"तुम्हें क्या मालूम नहीं मौसी, आज मंदिर में सभा है। नवीन बाबू पधार रहे हैं। बाबा भी साथ में आएँगे। घर-घर में बन्दनवार सजाए जा रहे हैं। कई-एक जगह अशोक के मेहराब भी खड़े किये जा रहे हैं। हनुमान-गली से होकर जब वे निकलेंगे तो रामप्रकाश के कोठे से हमारे नवीन बाबू पर फूलों की वर्षा की जाएगी। अहा, देश के पुजारी के लिए कैसी पूजा, कैसा सत्कार! मौसी, हम भी बन्दनवार लगाएँगे, हम भी दरवाजे पर केले के स्तम्भ तथा शुभ-सूचक पानी से भरा घड़ा रखेंगे। तुम सूई-तागा निकालो मौसी, मैं अभी बाग से फूल तोड़ लाती हूँ—भर-टोकरी फूल। रंग-बिरंगे फूल।"

सोनिया के पैर आज जमीन पर पड़ते ही न थे। फूल-डलिया उठा वह फिर बाग की ओर दौड़ गई। फूल लेकर लौटी तो पड़ोस से छोटी-छोटी बिटियों को लेती आई। सभी घर की सजावट में भिड़ गईं। दुपहर होते-होते मौसी का घर फूलों और पत्तों से गहगह करने लगा।

घर की सजावट कर सोनिया अपनी सजावट में लग गई। सबों को आज आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। सदा धूल में सनी हुई, बिखरे बालोंवाली

सोनिया आज तेल-फुलेल लगाकर सुघड़ नवयौवना वनी चाँद की तरह निखर उठी है। गोरे ललाट पर एक छोटी लाल बिन्दी तो मानो उसके सौन्दर्य्य की बिन्दी बन रही थी। अपने जूड़े में एक लाल फूल जड़ रही थी कि एकाएक किसी ने पुकारा —"ओ बेटी सोनिया, बेटी सोनिया !"

"अरे ! यह तो बाबा की आवाज़ है, बाबा की। आ गए वे लोग, आ गए !"

बस आँचल समेटती वह झट दौड़ पड़ी बाहर दालान में।

बाबा खड़े हैं—आँखों में आँसू, होठों पर मुस्कान। सोनिया चरण छूने झुक पड़ी। उनसे मिलने मौसी भी बाहर दालान में चली आईं। इतने दिनों बाद बेटी को छाती लगा रामू भगत आनन्दविभोर हो गए। जहाँ आजीवन कारावास की सज़ा थी, वहाँ छूटकर इस तरह सहीसलामत लौट आना सभी के लिए एक कौतूहल, एक आश्चर्यजनक घटना थी। सबकी आँखें गीली थीं —स्नेह से, कृतज्ञता से, आह्लाद से !

कुशल-क्षेम के बाद मौसी ने भगतजी को जलपान कराया और बेटी सोनिया उन्हें पंखा झलने लगी।

"अब देर हो रही है बेटी, जल्द ही चलें। सभा शुरू ही होनेवाली है।" —भगत ने ममता-भरी आवाज़ में कहा।

"अभी चली"—सोनिया तैयार थी।

भगतजी सोनिया को लिए सभा में चले गए और मौसी से कहते गए कि उन दोनों का खाना मौसी के ही यहाँ होगा।

दूर ही से नवीन को देखकर सोनिया खुशी से नाच उठी। नजदीक आते-आते उन्हें ठीक से निहारने लगी—पहिले से बहुत दुबले हो गए हैं,

शरीर का रंग तो ज्यादा गोरा हो गया है, शायद जेल में वन्द-बन्द रंग पीला पड़ गया हो। चेहरे की कान्ति पहिले से ज्यादा गम्भीर हो गई है। फिर एक हाथ कटा हुआ देखकर उसका जी जाने कैसा करने लगा। क्षण भर के लिए उसका मन खराब हो गया।

सोनिया को देखते ही नवीन उसकी ओर दौड़ा चला आया और उसका कन्धा थपथपाते हुए पूछा—"कहो सोनिया, अच्छी तो हो?"

"हाँ।"—पुलक के आँसू आँखों के कोने में आते-आते रह गए। हाय राम, कोई देख लेता तो! दोनों कुछ देर तक बातें करते और हँसते रहे। क्या बातें हुईं—जाने सोनिया, जाने नवीन। फिर नवीन मंच की ओर बढ़ा और सोनिया महिला-समाज की कतार में समा गई।

मंच से बोलते हुए नवीन ने अपील की—"भाइयो और बहनो, अगस्त-क्रान्ति के राजवन्दियों को सहायता देना आज हमारा एकमात्र उद्देश्य है। कितनों के घर जला दिए गए, कितनी बहू-बेटियों की माँग का सिन्दूर धुल गया। कितने पुत्र अनाथ हो गए। उन संतप्त परिवारों को यदि आप सहारा नहीं देते तो देश के लिये त्याग और बलिदान का मान मिट जायगा और यदि आपने उन्हें सहायता के बल पर जगा दिया तो आप धन्य-धन्य हो गए। मेरी प्रार्थना है कि आप राजबन्दी पीड़ित कोष में खुले दिल, खुले हाथ दान दें। इस दान-यज्ञ में एक पाई का भी उतना ही मूल्य है जितना एक या एक लाख रुपए का। हम दान में चावल भी लेते हैं, पुराना कपड़ा भी लेते हैं और आप जो देंगे वह सब हम लेंगे। और जो पैसा नहीं दे सकते वे हमें अपनी सच्ची सहानुभूति ही दें।..."

करतल-ध्वनि के साथ उसका भाषण समाप्त हुआ। फिर मंच पर पैसे,

उसी पुराने टीले पर भगतजी ने एक बड़े घिरौंदे जैसी अपनी झोपड़ी बना रखी है। पुराना घर तो अगस्त-क्रान्ति की ही लपटों में जलकर खाक हो गया था। आज इसी घरौंदे में देश-सेवकों की एक टोली बैठी है। प्रस्ताव पेश है कि अगले महीने होनेवाले चुनाव में असेम्बली के लिए कौन उम्मीदवार हो। कानाफूसी चल रही है। सभी नवीन बाबू को ही खड़ा करना चाहते हैं मगर नवीन कहता है कि निजाम या मंगरू या भगतजी खड़े हों। उसका कहना है कि अभी भी वह एक सिपाही के रूप में रहना चाहता है, सरदार नहीं। फिर भगत जी इत्यादि की सेवाएँ उससे किसी मानी में कम नहीं। फिर वह इस कुर्सी का हकदार क्यों हो? सोनिया का अपना कोई भी विचार नहीं था। वह अभी समझ ही नहीं पाती थी कि असेम्बली की मेम्बरी कोई बहुत बड़ी चीज है। वह इन सब झमेलों से तटस्थ थी।

जब घंटों इसी पशोपेश में बीत गए और कोई हल निकलता नजर नहीं आया तो भगतजी ने खड़े होकर नवीन बाबू का नाम पेश कर दिया और

झट निजाम ने उसका अनुमोदन कर दिया। फिर क्या था, सर्वसम्मति से नवीन बाबू असेम्बली के उम्मीदवार चुन लिए गए।

दूसरे ही दिन नॉमीनेशन फॉइल हुआ। नवीन के खिलाफ गोरी सरकार ने दीवानबहादुर को मुकर्रर किया। चुनाव में सरगर्मी आ गई। दोनों तरफ से ताल ठुक गए।

रात में दीवानबहादुर का दरबार जमा है। मंजुला भी कलकत्ते से आ गई है। उसने तेवर बदलते हुए कहा—

"मुझे तनिक भी समझ में नहीं आया कि नवीन किस बूते पर चुनाव में खड़ा हो गया। चन्द शोहदों के बल पर भला कोई चुनाव लड़ सकता है? अजीब बेवकूफ है। मगर पापाजी, आप फिक्र न करें। अबकी बार बच्चू छठी का दूध याद करेंगे। चट्टान से टकरा कर वह अपना ही सर चूर करेगा।"

दीवानबहादुर—"क्या पिद्दी क्या पिद्दी का शोरवा! अजी, उसे निजाम और भगत ने पीठ ठोंककर आगे कर दिया है, नहीं तो वह क्या हाथ उछालता! ये बदतमीज, मेरी ही जमीन पर पलनेवाले, मेरी ही खिलाफत करने लग गये हैं। उस बार झोपड़ी जली, अबकी बार साले खुद जलकर भस्म हो जाएँगे। कमर कस लो बेटा डेविड!"

"मैं तो तैयार हूँ; बस, ऑर्डर की देर है।"

"देखो, कलकत्ते से एक दर्जन जीप और सौ साइकिलों का ऑर्डर दे दिया है। सब अगले मंगल को पहुँच जायेंगी। हर बूथ पर हमारी छावनी रहेगी और हर छावनी पर हमारे स्टाफ का एक-एक जिम्मेवार आदमी इन्चार्ज होगा। पैसे की कोई परवा नहीं। पैसे पानी की तरह बहा दूँगा। यही समझो कि लड़ाई के जमाने के सीमेंट की ब्लैकमार्केटिंग में बनाये गए

पैसे एक चुनाव में उड़ गए। इन भाड़ेवालों का सर न झुका दिया तो मेरा नाम नहीं। फिर कलक्टर भी मेरे रोब का कायल हो जायेगा। और लाट साहब........"—और दीवानबहादुर जो-जो कहते गए मानों सबको साथ-साथ फलते देखते गए और इस बेजोड़ कल्पना की रंगीनी पर वह एक शान से मुस्कुरा उठे।

"डैडी, C. I. E."—डेविड ने हँसते हुए कहा।

"चुप बे, बदतमीज !"—दीवानबहादुर ने एक झटका-सा देते हुए कहा—"मंजुला ! जहाँ आरजू-मिन्नत कारगार न होगी वहाँ चाँदी के सिक्के फेंके जाएँगे। और जहाँ चाँदी फेल हो जायेगी वहाँ हुकूमत की मदद लेनी होगी, पुलिस को इशारा किया जायेगा। समझी ? इसे कहते हैं चुनाव-भिड़न्त !"

उधर नवीन अपनी गोष्ठी में बैठा अपने कार्यकर्त्ताओं को समझा रहा है—

"उधर पैसा है, इधर सेवा है; उधर हुकूमत है, इधर प्रेम है; उधर ललकार है, इधर अपील है। हम दीन-दुखियों के प्रतिनिधि हैं, वे सरकार के नुमाइन्दे हैं। हमारा कार्यकर्त्ता तो हर कोई है। कन्धे पर सत्तू की गठरी हो और ज़बान पर देश की पुकार। फिर वोट तो हरएक के देश-प्रेम का इजहार होगा। बस यही हमारा चुनाव-संघर्ष होगा। क्या ख्याल है भगत जी—"

"आप बिलकुल ठीक कहते हैं नवीन बाबू। यह चुनाव तो अँग्रेजी सरकार तथा उसके पिट्ठुओं के ख़िलाफ लड़ा जा रहा है। यदि जीत हमारी हुई तो उनकी सत्ता लुप्त हो जायेगी और यदि जनता ने हमारे ख़िलाफ मत दिया तो समझिए कि अभी देश आज़ाद होने को तैयार नहीं। हमारी शक्ति

जनता-जनार्दन है और उनकी शक्ति पैसा और हुकूमत। हम सत्तू की गठरी बाँधकर गाँव-गाँव गाँधीजी का सन्देश सुनाने को जल्द ही निकल पड़ें। अगस्त-क्रान्ति के समय जो हमने जोत जगाई वह आज भी जल रही है—जल रही है। बस, चलो, बढ़ चलें।"

रात में सोनिया ने अपने बाबा से कहा—"बाबा, मैं चाहती हूँ कि इस चुनाव में मैं महिलाओं का एक संगठन बनाऊँ और उनका भी वोट लिया जाए। अक्सर चुनाव में महिलाएँ अछूती रह जाती हैं। उनकी शक्ति से अभी भी हम अनभिज्ञ हैं। गाँव की महिलाएँ हमारी जीत के लिए उतनी ही उतावली हैं जितना हम हैं। फिर इस समय उनका संगठन हो जाए तो सदा के लिए एक अच्छा कार्य हो जाएगा।"

नवीन और भगत दोनों ने इस सुझाव को पसन्द किया और सोनिया अपने नवीन को जिताने के लिए पुनः रण-संग्राम में कूद पड़ी। आज वह एक चिनगारी है जो अनन्त ज्वालाओं को जगा सकती है।

नवीन प्रान्तीय असेम्बली का चुनाव जीत गया। एक अजीब बात हुई देश के इतिहास में। मगर दीवानबहादुर के तो पैरों तले से मिट्टी सरक गई। उन्हें क्या पता था कि देश कहाँ से कहाँ चला गया है! वे तो हक्का-बक्का हो झक मारकें बैठे हैं। कितने हजार पर पानी फिर गया। सदियों से उनकी जमीन पर पली हुई उनकी अपनी रियाया ने भी उनका साथ नहीं दिया। वह जिन्हें भोले अबोध कहकर उपेक्षा से पुकारते थे वे राजनीति के पूरे खिलाड़ी निकले। जिन्हें वे बहकावा दे रहे थे वे उन्हीं को धोबिया-पाट में दाबकर आगे बढ़ गए।

आखिर यह हुआ कैसे? क्या सूरज पूरब से पश्चिम निकलने लगा? क्या गंगा और यमुना की धारायें पलट गईं? या अल्ला! या मौला! यह क्या? मंजुला की ज़बान पर तो केवल विलायती गालियाँ ही आती थीं। डेविड तो दरबारियों का सारा जत्था लिए अपने कमरे में ही बन्द रहता। दीवानबहादुर और उनकी बेटी का मिज़ाज इधर कुछ इस कदर खराब हो गया था कि बातें करते-करते वे अनायास ही फट पड़ते थे।

हाँ, दीवानबहादुर जो हारे हों, उनके अमलों ने तो कई दस्त का माल घर में उलीचकर रख लिया। देशसेवकों के नुमाइन्दे हर जगह जीत गये। सरकारी महकमों में सरगर्मी है। अब तो देश-सेवकों की सरकार बनेगी। अँग्रेजी सल्तनत के खम्भे तो जैसे अब गिरे, तब गिरे। दो-चार सरकारी अफसर डरते-डरते नवीन बाबू को मुबारकवादी भी दे गए।

दीवानबहादुर परीशान हैं। गोरी सरकार की नज़रों से भी गिर गए और जनता की आँखों से तो कब के न उतर चुके। अब किधर जाएँ, क्या करें? मगर उन्होंने दुनिया बहुत देखी थी। बाजी हारकर भी वह जीत जाने की कूवत रखते थे। सन्ध्यासमय उन्होंने मंजुला को बुलाया और पूछा—"बेटी, अब क्या करना चाहिए?"

"अब यहाँ ठहरना मिट्टी पलीद कराना है। आज रात ही यहाँ से भाग चलिए। अब कलकत्ता ही रहेंगे। समझिए यह सब सपना था। यहाँ की जलालत अब सही नहीं जाती। चलिए वहीं। वकीलों से राय ली जाय और चुनाव-परिपत्र देने की तैयारी की जाय। अभी भी हम हताश नहीं हुए हैं। यदि कुछ रास्ता निकल आया तो देखियेगा—।"

दीवानबहादुर ने हँसी रोकते हुए कहा—"अभी तुम भोली हो मंजुला, दुनिया की रीति नहीं जानती। राजनीति में अक्सर दुश्मन के पैर भी चूमने पड़ते हैं। याद रखो, वह दिन दूर नहीं जब हुकूमत की बागडोर नवीन के हाथों में आ रहेगी। इस हार को खाकर मैं जान गया कि आज नवीन और भगत के हाथ में कितनी बड़ी शक्ति है। इसे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। कल से तुम्हारे दोस्त—ये सरकारी अफसर उसी की वज़ेदारी में लग

जायँगे। हमें दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकना उनके लिए कुछ मुश्किल न होगा।"

"तो क्या आप चाहते हैं कि मैं थूक कर चाटूँ? आपकी भी यह दलील अच्छी रही। यह काम मुझसे न होगा बाबूजी! नवीन से समझौता कर लूँ, यह मेरे मान का नहीं।"

"समझौता नहीं, मेरी बेटी! क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि चुम्बन और चाँटा एक ही हथियार की दो तेज धार हैं? इस समय चुम्बन का मौका है। समझी?"

"तो फिर यह काम आप ही करें। मैं इससे सहमत नहीं हूँ।"—इतना कहकर मंजुला देवी अपने कमरे में चली गई।

बाप ने आज पहली बार बेटी की बात नहीं मानी। डेविड को पुकार कर जल्द मोटर मँगाई और उस पर सवार हो सरकसिया ग्राम की ओर चल पड़े। रास्ते में डेविड ने पूछा—"पापाजी, किधर जाना होगा?"

"आज सरकसिया ग्राम में नवीन को सम्मानित करने के हेतु एक बहुत बड़ी सभा हो रही है। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि मैं ही उस सभा का सभापति हूँ।"

डेविड चौंक पड़ा। अरे, आज वह क्या सुन रहा है! यह सब उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसने सिर्फ इतना ही कहा—"पापाजी, आप यह क्या कर रहे हैं? भला दुश्मन की सभा की सदारत......."

"चुप बे! बेकार की बकबक! तेरा दिमाग ही कितना! बोदा ......"

नवीन को सम्मानित करने के उद्देश्य से सरकसिया गाँव में आज एक बड़ी सभा हुई। गाँधीजी तथा नेहरूजी की सभाओं के बाद आज ही इतनी

भीड़ इकट्ठी हुई थी। नवीन की सेवाओं की प्रशंसा सबकी जबान पर थी। दर्जनों वक्ता मंच पर आए। सबने उसे फूल-मालाएँ पहनाईं और उसका यशगान किया। किसी ने उसे 'हमीरपुर का गाँधी' कह कर पुकारा, किसी ने दधीचि के त्याग से उसके त्याग की तुलना की, किसी ने वीर अर्जुन के पराक्रम की पूर्णता उसमें पाई और कुछ ने तो उसे सारथी कृष्ण ही कहकर सम्बोधित किया। परन्तु जो भाषण सबसे बेजोड़ रहा, वह था सभापति का भाषण। नवीन की प्रशंसा में आज दीवानबहादुर ने तो अपना दिल लुटा दिया, अपनी जबान तराश कर रख दी। सभी चकित रह गए कि आखिर कल का प्रतिक्रियावादी आज एकबारगी देश और देशसेवक का इतना बड़ा प्रशंसक कैसे बन बैठा! आज उनके तमाम व्यवहार में एक अजीब परिवर्त्तन आ गया था। आज वे भगत और निजाम से एक दिली दोस्त की तरह बातें कर रहे थे। उन्होंने नवीन के गले में एक सुन्दर-सी माला पहनाकर झुककर प्रणाम किया और फिर भाषण प्रारम्भ किया—"आज जब मैं नवीन बाबू को देखता हूँ और फिर पलटकर अपने आप को देखता हूँ तो मुझे पता चलता है कि नवीन बाबू कितने महान हैं और मैं कितना अकिंचन। कहाँ पर्वत और कहाँ राई! एक ओर त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति और दूसरी ओर मैं,...मैं क्या कहूँ मैं...आप से। आप तो हमारे नेता ठहरे, हमारे पथ-प्रदर्शक भी। हमें तो आप से प्रकाश चाहिए। हम तो आपके अनुगामी हैं। हमें आप रास्ता दिखाइए, ज्ञान दीजिए। नवीन बाबू की जय! हमीरपुर के गाँधी की जय!"

अन्त में नवीन ने अपने भाइयों को धन्यवाद देते हुए कहना शुरू किया—"इस चुनाव में मुझे अपना प्रतिनिधि चुनकर आपने जो मेरे प्रति

प्रेम दर्शाया है उसका ऋण तो मैं आपको अपनी सेवा द्वारा ही चुका सकूँगा। मैं आज जनता को साक्षी रख कर प्रण करता हूँ कि आज से मेरा सारा समय जनता-जनार्दन की निःस्वार्थ सेवा में ही लगेगा। पद के मद से दूर रह कर मैं आपकी सदा सेवा करते हुए आपके प्यार का प्यासा रहूँगा। सत्य और अहिंसा ही मेरे जीवन के मुख्य आधार-स्तम्भ होंगे तथा राष्ट्रपिता बापू के चरण-चिह्नों पर चल कर देश को राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक जंजीरों से मुक्त करने की मेरी साधना एकरस अखण्ड रहेगी। सर्वशक्तिमान् परमात्मा मुझे शक्ति दे।"

उधर सोनिया ने भी इस प्रण को मन-ही-मन दुहराया और दृढ़ संकल्प किया कि नवीन का आदर्श ही अब उसका भी आदर्श होगा और इस आदर्श के लिए वह भी उसी के पीछे जियेगी-मरेगी।

भारत में कैबिनेट मिशन आया। मुस्लिम लीग और काँग्रेस की फिर झुलाहट हुई। राजनैतिक वातावरण में सरगर्मी बढ़ गई और कुछ दिनों के बाद अन्तरिम सरकार बनी। विधान-परिषद् बनाने की भी घोषणा हुई। नवीन का पाया मजबूत हुआ। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना से उसका महत्व बढ़ गया। हर जगह चर्चा होने लगी कि अब अँग्रेजों की हुकूमत और उनके पिट्ठुओं की रौनक खत्म होने पर आई। भारत अब आज़ाद होकर रहेगा।

दीवानबहादुर की चिन्ता बढ़ चली। मंजुला के सर पर भी बल पड़ा। उसकी पुरानी दुनिया मिटने जा रही है। नवभारत का निर्माण होने जा रहा है। उन्हें अब नाव का पाल बदलना होगा। आखिर यह हो क्या रहा है! बस, वही हो रहा है जिसकी उन्हें कभी कल्पना भी नहीं थी। धरती बदल रही है, आसमान बदल रहा है। यदि जीना है तो नए वातावरण में अपने को दूध-पानी की तरह मिला लेना होगा।

नवीन तो आसमान पर उड़ा जा रहा है। बड़े-बड़े लोग उसके दरबार में आते। सरकारी अफसर, जमींदार, साहूकार और एक-से-एक पैंतरेबाज

भी। भगत की कुटिया अब उसके लिए पर्याप्त नहीं। सिर्फ रात में सोने तथा खाने वह वहाँ आ जाया करता। दिन भर पी० डब्लू० डी० के डॉकबँगले में लोगों से मिलता-जुलता रहता। भगत, मंगरू और निज़ाम के तो कुछ कहने नहीं। वे सदा नवीन के बायें-दायें हाथ बने रहते।

और, सोनिया मंजुला की जगह ले बैठी है। हर बड़े मसले पर राय देती और उसकी सिफारिश की सुनवाई भी होती। बचपन से ही बाप के साथ राजनीति का खेल देखते-देखते उसे अब राजनीति के पैंतरों का भी अच्छा ज्ञान हो गया है। इधर सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते-लेते उसमें एक सबल आत्मविश्वास भी उग आया है। फिर चुनाव में जो उसने महिला-समाज में कार्य किया उससे उसके पीछे एक संगठन भी खड़ा हो गया है। वह अक्सर गाँवों में जाती और महिलाओं की सेवा करती। चुनाव के बाद वह 'सोनिया बहन' के नाम से मशहूर हो गई है। अविवाहिता वह है अवश्य मगर जन-सेवा द्वारा उसका जीवन कुछ ऐसा भर-पूरा दीख पड़ता कि उसकी इस अपूर्णता की ओर किसी का ध्यान भी कदाचित् ही जाता।

दीवानबहादुर अब नवीन की अवहेलना नहीं कर सकते। उन्हें यदि जीना है तो उसका होकर रहना है। इसीलिए तो वे आज नवीन का पिछलगुआ बन गए हैं। जैसा राज वैसा साज। किन्तु दया आती है मंजुला की स्थिति देखकर। घर से भागकर कलकत्ता जाती। मगर वहाँ के जीवन में भी कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन प्रवेश कर रहा था। फरपो और ग्रेट इस्टर्न में भी गाँधीटोपी की कतारें देखने को मिलतीं। जिन्हें वह ठोकरों से मारती वह आज सर पर चढ़े आ रहे हैं। पता नहीं अँग्रेज आज इतने कमजोर क्यों हो गए। हाय राम! फिर बाबूजी का तार मिलता। दौड़ी वापस आती। घर

पहुंचती तो दीवानबहादुर का वही रोना—"बेटी, अब तो मान-मर्यादा बचाना मुश्किल हो रहा है। गाँधीटोपी वाले तो आज सर चढ़कर शेर हो रहे हैं। अँग्रेज अफसरों की तो नजर ही बदल गई है। उनसे किसी मदद की कोई उम्मीद नहीं। वे तो स्वयं अपना बिस्तर समेट रहे हैं। अब तो इन टोपीवालों का ही जूता ढोना है। भगत तो अब जिलाधीश से कम अपने को नहीं समझता। और नवीन के तो क्या कहने, वह तो सब का नेता ही है। क्या जिला और क्या सूबा सब, जैसे उसकी मुट्ठियों में समा रहा है।"

इधर नवीन के माथे में भी द्वन्द्वों की कमी नहीं थी। बदला हुआ जमाना क्या-क्या न कराए, क्या-क्या न दिखाए! आज रात दूध पीकर जब वह बिस्तर पर जाने लगा तो भगत और सोनिया को बुलाया और बोला—"मुझे भास रहा है कि आज मैं नेता बनकर कहीं अपने ठिकाने से दूर—बहुत दूर—तो नहीं बहा जा रहा हूँ। राजधानी की चकमक, असेम्बली की रौनक तथा सरकारी हुकूमत का वातावरण; फिर 'डिनर', 'लंच' और पार्टियों का अटूट ताँता, राग और रंग के तमाशे, दरबारियों का जमघट, अफसरों की सलामी, पिछलगुओं की खुशामदें तथा सभाओं में जय-जयकार के नारे—पता नहीं मुझे किधर खींचे जा रहे हैं!"

और भगत ने साफ देखा, नवीन के चेहरे पर एक अजीब परीशानी दौड़ रही है और पेशानी पर पसीने की बूँदें उभर आई हैं। वह धीरे-से बोला—"नवीन बाबू! आज हमें वह मिला है, जिसकी कभी उम्मीद भी नहीं थी हमें। यह सेवा का नया क्षेत्र है। बस, हमें तो नित-प्रति सेवा करते जाना है—आगे बढ़ते जाना है। एक भाव से, एक लक्ष्य पर आँख टिकाये।"

"मगर भगतजी, सेवा अपने व्रती से सब-कुछ माँग लेती है और सेवा-

ब्रती—वह तो अपने को रिक्त करके ही पूर्ण समझता है, खाली होकर ही भरा-भरा रहता है। मगर आज मुझसे कोई कुछ माँगता नहीं, मुझे देने को ही, मुझे भरने को ही सभी परीशान रहते हैं—यह कैसा सेवा का क्षेत्र, यह कैसी सेवा की आयोजना! कुछ समझ में नहीं आता भगत, कुछ भी नहीं सूझता मैं क्या करूँ!"

"यह भ्रम है नवीन बाबू, कोरा भ्रम है। हमने जान दी है, सब-कुछ की बाजी लगाई है, अपना सर्वस्व गँवाया है देश के लिए, तब तो आज हमारी सेवाओं का तथा त्याग का पुरस्कार मिलता है और हमारी जय-जयकार होती है। यह तो एक हाथ से देना है, एक हाथ से लेना। जैसा दिया वैसा पाया। इसमें परीशानी कैसी, घबड़ाना कैसा! बस, आनन्द ही आनन्द है नवीन बाबू! मुझे तो हर कोने में, हर गोशे में बासन्ती-बहार ही दीखता है, रंगीनियाँ ही नजर आती हैं। सब ओर उल्लास ही उल्लास लह-राता है, जोश ही जोश उफनता रहता है। फिर यह रंग में भंग कैसा! यह राग में विराग कैसा! छोड़िये यह बेकार की माथापच्ची। रात बहुत गई, अब सोइए। कल तड़के हाई स्कूल की नींव देने आपको जाना है। इन्सपेक्टर साहब शाम ही को आ गये।"

दोनों सो गए।

सोनिया अलग-ही-अलग दोनों की बातें कान लगाकर सुन रही थी। नवीन के चेहरे के हर उतार-चढ़ाव को वह एकलव्य की तरह मौन-मूक निहार रही थी। जब दोनों चुप हो गए तो वह भी चुपचाप उठी और जाकर अपनी चारपाई पर धीरे-से लेट गई।

सुप्रभात का शुभागमन आज शहनाई के सुर की लहरों पर हुआ। नवीन की चेतना जब जगी तो भैरवी की तान उसके कानों में समा गई। उसने सोये-सोये पुकारा—"भगतजी, यह फुहार कैसी ?"

भगतजी माला जप रहे थे। बोले—"बधाई नवीन बाबू ! आज आपकी वर्षगाँठ है न ? शाम को दीवानबहादुर के यहाँ जलसा है। वहीं आज हँसी-खुशी की शहनाई बज रही है।········आखिर क्यों न बजे ? आज हमारे नेता की वर्षगाँठ है········दुखियों की आँखों का एकमात्र तारा, पददलितों का एकमात्र सहारा, हमारा वीर सेनानी ! उसी का जन्म-दिन है—हमारे लिए तो शुभ दिन है, शुभ दिन। अब आप जल्द उठें और लोगों के आने के पहले मन्दिर में दर्शन कर आएँ।

नवीन के तैयार होते-होते इलाके से बधाई देनेवालों का ताँता लग गया। कोई उसे माला पिन्हाता तो कोई उसके पैर पर सूत की गुंडियाँ रखता। कोई उसका चरण-रज लेता तो कोई उसे भगवती के चौरे का भभूत लगाकर देवी से उसके लम्बे जीवन की कामना करता।

सोनिया ने कई बार कहा कि मन्दिर में जाकर दर्शन कर आएँ मगर उसे दर्शन देने से फुर्सत मिले तब तो दर्शन करने को जाए! आज तो वह स्वयं भगवान हो रहा है। फूल की माला देनेवालों का सिलसिला टूटा तो स्तुति पढ़नेवालों का तमाशा शुरू हुआ। आसपास के गाँव के पण्डितों ने स्तुति-गान करके भाटों को झूठा कर दिया। उसके ललाट पर चन्दन-रोली की टीका हुई और आरती भी उतारी गई। गाँव के बैंडवालों ने दो-चार फिल्मी गानों का ट्यून भी बजाकर सुनाया। एक अजीब तमाशा था। कल के नवीन और आज के नवीन में जमीन-आसमान का फर्क है। कल का राजबन्दी आज राजदण्ड लेकर सिंहासन पर बैठा है।

फिर इस शानबान की रौनक का क्या कहना! इसी रेल-पेल में चन्द अफसरों के साथ दीवानबहादुर भी आ पहुँचे और नवीन के गले में निहायत बेशकीमती माला डालते हुए बोल गए—"भाइयो, आज का दिन खुशी मनाने का है। क्या अमीर और क्या गरीब—सभी आज नाच रहे हैं, गा रहे हैं, आनन्द मना रहे हैं। इस समय मेरे यहाँ कंगालों को मंजुला अन्न-वस्त्र दे रही है। आज शाम को मेरे यहाँ आप सब लोगों का निमन्त्रण है। भगवान यह दिन हर साल लाए। और नवीन बाबू, मैं तो दिल से यही मनाता हूँ कि—तुम सलामत रहो हजार बरस, हर बरस के दिन हों पचास हजार।"—तालियाँ बज उठीं और जय-जयकार के नारे लगने लगे। नवीन फूल और माला की ढेरी में छिप-सा गया।

"बधाई नवीन, बधाई, जिन्दा रहो—खुश रहो.... "

"ऐं! यह तो परिचित आवाज है। ओ-हो! प्रोफेसर साहब, आइए, आइए, पधारिए;..."—नवीन ने झुककर प्रोफेसर साहब के चरण छूए।

वही सौम्य मूर्ति, वही दिव्य दृष्टि। सभी चकित हैं—आख़िर यह कौन हैं जिनके चरण हमारा नेता छूता है!

नवीन ने बड़ी आजिजी से कहा—"भाइयो, आप हैं हमारे प्रोफेसर साहब। यदि आप न होते तो शायद मैं आज यहाँ न होता। यह आपकी ही महिमा है कि मैं भी लोहा से पारस हो गया। आप एकनिष्ठ देश-भक्त हैं और शायद जेल से ही छूटकर यहाँ आए हैं।"

नवीन का गला भर आया। प्रोफेसर साहब कृतज्ञता के भार से दबकर अपने-आप में सिमटे जा रहे हैं। लोग इधर-उधर नवीन की नम्रता की प्रशंसा करने लगे। थोड़ी देर के बाद जब लोगों का आना-जाना कम हुआ तो नवीन प्रोफेसर साहब को लेकर दूसरे कमरे में चला गया और बातें शुरू हुईं।

"नवीन! तुम्हें आज इतना ऊँचा देखकर मुझे बड़ा सन्तोष और आनन्द हुआ। आखिर मेरे शागिर्दों में से एक भी तो इस ऊँचाई तक पहुँच सका! मगर भाई, याद रहे, देश के लिए यह बहुत ही खतरनाक समय है। हमारा हर कदम नपा-तुला होना चाहिए। बस, समझो कि तलवार की धार पर चलना है। यदि पैर फिसले, तो हम सर के बल आ गिरेंगे। भाई, लीडरी बुरी नहीं, बुरे हो जाते हैं लीडर, पद तो ऊँचा ही होता है मगर मद पीकर वह पदवाला मतवाला हो उठता है। मसनद की रंगीनी के साये में जब महफिल जमने लगती है तो फिर जानो कि खतरे की घन्टी बज गई। बस सदा सावधान रहना—जूही का गजरा किसी दिन गले की फँसरी न बन जाय। तुम तो स्वयं होशियार हो, बुद्धि से काम लेते हो। तुमसे क्या कहना!"

इतना कहकर प्रोफेसर साहब सोनिया की ओर मुड़े और बोले—"बेटी,

इन चन्द घण्टों के ही तुम्हारे अतिथि-सत्कार से मैं इतना प्रभावित हुआ कि मैं क्या कहूँ! जान पड़ता है तुम्हारे प्रतिबिम्ब से ही नवीन आज चमक रहा है!"

सोनिया लजाकर ठमक गई। फिर प्रोफेसर साहब के नहाने के लिए पानी लेने चली गई।

नवीन ने फिर छेड़ा—"मेरी राय है कि कुछ दिन आप यहाँ ठहरें, हमारे कार्यों का निरीक्षण करें और आवश्यक निर्देश भी दें।"

"अभी नहीं नवीन, बंगाल जल रहा है और मैं यहाँ बैठूँ, यह मुझसे न होगा। मैं तो कलकत्ता जा रहा हूँ। वहाँ भीषण दंगा छिड़ा हुआ है जो तुम्हें मालूम ही है। आदमी आदमी नहीं रह गया है, हैवान हो गया है। बापू जान की बाजी लगाकर नोआखाली को प्रस्थान कर चुके हैं। लड़ाई के ज़माने में बंगाल अकाल के विकराल गाल में गल गया और अब जब राष्ट्रीय सरकार बनी तो लीग उसे तहोबाला करने पर तुल गई है। दोनों कौम में सद्भावना लाने के हेतु कुछ लोगों का मिशन बंगाल जा रहा है। मैं भी उसी मिशन में हूँ। जान की बाजी लगाकर अपने मिशन के साथ वहाँ जा रहा हूँ। अखबार में तुम्हारा नाम अक्सर देखने को मिलता है। सोचा कि कलकत्ता जाते समय रास्ते में तुम्हें भी ले लूँ। इस समय तो विधान-सभा भी बन्द है। फिर इधर का काम कुछ दिनों के लिये स्थगित भी हो सकता है मगर बंगाल का चीत्कार दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। हमें तुरत पहुँचना है वरना मामला और भी संगीन हो जायगा।"

सोनिया किवाड़ की ओट से इन बातों को सुन रही थी। वह बंगाल का

हाल सुनकर वहाँ जाने को तड़प उठी। उसने कल्पना कर लिया कि वह भी नवीन के साथ शान्ति-मिशन में भाग लेगी। बस, वह नवीन का 'हाँ' चाहती थी।

प्रोफेसर साहब कहते गए—"तो कब का प्रोग्राम बनाया जाय ? मैं तो आज ही चला जाना चाहता हूँ। इसी चार बजे वाली गाड़ी से।"

नवीन कुछ बोल नहीं रहा है। कुछ बेचैन-सा दीखता है। कुछ कहना चाहता है मगर किसी विवशता के वश कुछ बोल नहीं पाता। प्रोफेसर काफी देर तक बोलते रहे। जब नवीन ने कुछ नहीं कहा तो उन्होंने गम्भीर होकर फिर पूछा—"आखिर तुम्हारा क्या निर्णय हुआ ?"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ प्रोफेसर साहब ! मेरी समझ में तो कुछ आता ही नहीं।"

"यह कौन-सी ऐसी पहेली है जो तुम्हारे ज़ेहन में नहीं घुसती ? अजीब हिसाब है। मैं तो सोच रहा था कि बंगाल जाने की बात सुनकर तुम झट वहाँ जाने को तैयार हो जाओगे। मगर तुम······"

"आप गलत समझते हैं प्रोफेसर साहब, मैं बंगाल जाने को तैयार हूँ। भला इससे बढ़कर पुनीत काम कौन होगा ? मगर आप आज चलें, मैं दो-चार दिनों में ज़रूर आ जाऊँगा। ज़रा इधर का काम समेट लूँ।"—नवीन एक स्वर में कह गया।

प्रोफेसर साहब को गहरी चोट लगी। मगर अपनी चोट को छिपाते हुए बोले—"तुम सलामत रहो, भगवान तुम्हारा भला करें।"

वह उठे और लोटा ले कुएँ पर नहाने चले गए। उनसे कम चोट

सोनिया को नहीं लगी थी। उनके जाते ही वह कमरे में घुस गई और नवीन से पूछ बैठी—"आखिर आप बंगाल क्यों नहीं चले चलते ?"

"वाह, तुम भी खूब सवाल पूछती हो। पूरे सप्ताह-भर जिले में मेरा जन्म-दिवस मनाया जा रहा है। मुझे हर जगह जाना है।—"

"तो क्या यह रोका नहीं जा सकता ?"

"भला कैसे रोका जा सकता है ? सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं। सारी बारात तैयार और दुल्हा ही गायब ! मुझे भई, बंगाल जाने की फुर्सत नहीं। और तुम किस फिक्र में पड़ गई ? जाओ-जाओ, प्रोफेसर साहब के खाने का प्रबन्ध करो।"

सोनिया आहत हो गई। फिर कुछ बोल न सकी। प्रोफेसर साहब शाम को झोली उठाकर स्टेशन जाने लगे तो वह उनके साथ जाने को तड़पकर रह गई। उसके भावों का उफान अभी ढक्कन को फेंक कर बाहर तड़प जाने की ताकत नहीं पा सका था।

सन्ध्यासमय दीवानबहादुर के महल के सामने की लम्बी 'लॉन' पर एक बड़ी पार्टी हुई। इस पार्टी की मुख्य आयोजिका थीं सुश्री मंजुला देवी। आज पहली बार दीवानबहादुर की लॉन आम लोगों के लिए भी खुली थी। हाकिम-हुक्काम, देश के कार्यकर्त्ता, अमीर-गरीब सभी आमंत्रित थे। भोजन का वही पुराना सरंजाम। कलकत्ते के केक, बनारस की मिठाइयाँ तथा चाट खास तौर पर बनाकर मगाए गए थे। शराब की जगह शरबत और लस्सी ने ली, वीमटो और जींजर भी रहा।

भगत, निजाम, मंगरू तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं से घिरा नवीन जब लॉन

में पहुँचा तो एकबारगी बैंड बजने लगा और चारो ओर की चहल-पहल में एक नई जान आ गई। फिर एक सुन्दर माला पहिनाकर मंजुला ने उसका सादर अभिवादन किया। उस माला में कुछ ऐसा आकर्षण था, कुछ ऐसी महक थी कि नवीन तिलमिला उठा। कुछ देर तक तो उसे पता ही न चला कि यह अनूठा आकर्षण आख़िर उस माला में ही था या उसके पिन्हानेवाले में।

'हेड टेबिल' पर नवीन की बगल में मंजुला बैठी। आज उसकी फुर्ती के क्या कहने! नवीन को वह इस अदा से चाय देती, केक देती, पकौड़ी देती तथा आँखें नचाकर, भौं मिलाकर बातें करती कि नवीन को आज एक नई अनुभूति, एक नया आकर्षण इस सारे वातावरण में मिला। वह रह-रह कर सोचता कि राज्यभवन में, राजधानी में एक-से-एक बड़ी पार्टियों में वह शरीक हुआ परन्तु जैसी मिठास, जैसी चुहल, जैसी रसानुभूति उसे आज यहाँ मिली वैसी और कहीं नहीं मिली थी। मगर शायद उसे पता न था कि इस यज्ञ की आयोजिका कुछ ऐसी-वैसी नहीं, बस, लाख में एक है। यह उसी की महिमा है कि आज एक तपस्वी के भी जीवन में राग और रंग की लहरियाँ मौज ले रही हैं।

पार्टी के बाद खुले रंगमंच पर संगीत, नृत्य और नाटक का प्रोग्राम चला। कलकत्ते से क्लासिकल डांसर के नाम पर नवयुवतियाँ बुलाई गई थीं जिन्होंने अपने शरीर का जादू दिखाकर दर्शकों को मुग्ध कर दिया। नवीन को इस नाच से बड़ी दिलचस्पी रही। भगत तो रह-रह कर मूँछों पर ताव देते। निजाम और मंगरू सोफे पर बैठे आँखें मटकाकर कुछ बातें कर लिया करते। नवीन की बगल में यहाँ भी मंजुला ही बैठी थी। नृत्य की हर मुद्रा को, हर कम्पन को, हर वेदना को वह नवीन को बताये चलती। नवीन कभी नर्त्तकियों

को देखता, कभी मंजुला को, कभी आँखें चुराकर निजाम, भगत और मँगरू के चेहरे की प्रतिक्रिया को और फिर पलट कर अपने-आपको।

मध्यरात्रि के उपरान्त यह अभिनय समाप्त हुआ। नवीन के प्रस्थान के समय मंजुला ने प्रस्ताव पेश किया—"सुना, आपको किसी मीटिंग में कलकत्ता जाना है। मेरा इसरार है कि वहाँ आप हमारे अतिथि बनने की स्वीकृति दें।"

नवीन इस निमन्त्रण को अस्वीकार न कर सका। हँसते-हँसते कहा—"वाह, दीवानबहादुर का घर तो मेरा ही घर है! मैं तो वहाँ बिना बुलाए ही चला आता, परन्तु कलकत्ता जाने में अभी कुछ विलम्ब है। पहले तो हम सबको १५ अगस्त की तैयारी करनी है। हमारा आजादी-दिवस! भई, युग-युग की प्रतीक्षा के बाद तो यह शुभ दिन आया है। मैं तो चाहता हूँ कि उस दिन के मनोरंजन के प्रोग्राम का सारा भार आप ही अपने ऊपर उठा लें।"

"वाह, आपकी इच्छा और पूरी न हो? बस, आपका हुक्म सर-आँखों पर।"—मंजुला एक अदा से आँखों को नचाकर बोली।

"अजी साहब, यह दिन सदियों की तपस्या के बाद आया है। इसे मनाना हमारा फ़र्ज है। आप लोग जो प्रोग्राम बनाएँगे, हम उसे अवश्य ही कार्यान्वित करेंगे।"—दीवानबहादुर ने नहले पर दहला दिया।

नई अनुभूतियों तथा नई-नई भावनाओं से घिरा नवीन जब घर लौटा तो सोनिया ने कहा—"सिकरहटा ग्राम के कुछ लोग आकर बाहर सोए हैं। वहाँ हैजा और चेचक का प्रकोप है। बार-बार खबर देने पर भी सरकार के स्वास्थ्य-विभाग से कोई सुई देने वाला नहीं गया है। हालत नाजुक है। सभी नवीन बाबू-नवीन बाबू की रट लगाए हुए हैं। सुबह वहाँ चले चलिए।

आपके जाने से उन्हें बड़ी सान्त्वना मिलेगी और सरकारी अफसरान का ध्यान भी उधर मुड़ेगा।

सोनिया की बातें सुनते ही नवीन झल्ला उठा—"तुम्हारा भी क्या बेतुका प्रस्ताव होता है! भला मैं कैसे वहाँ सुबह-सुबह चले चलूँ? देखती तो हो, आधीरात के बाद एक समारोह से लौट सका हूँ। कल तड़के रामपुर के समारोह में सम्मिलित होना है और वहीं से राजधानी चला जाऊँगा। कल ही से विधान-सभा बैठ रही है। ऐसी हालत में सिकरहटा में कैसे जा सकता हूँ? हाँ, भगतजी और तुम वहाँ चले जाओ। राजधानी पहुँचते ही मैं स्वास्थ्य-विभाग के अधिकारियों के खिलाफ असेम्बली में प्रश्न पूछूँगा। ये बदतमीज लोग···।"

"परन्तु उपचार तो तुरत करना है। आपके प्रश्न पूछते-पूछते तो जाने कितनी जानें चली जाएँगी।"

"तो लाओ, जिलाधीश को एक तार दिए देता हूँ। जल्द कुछ-न-कुछ इन्तजाम हो ही जायेगा।"—इतना दिलासा दे नवीन तानकर सो गया।

सोनिया चारपाई पर पड़ी-पड़ी तारे गिन रही है। कुत्ते भूँक रहे हैं। झिंगुरों की झन्-झन् चारों ओर गूँज रही है। वह सोचती रह जाती है—आखिर नवीन कहाँ बहा जा रहा है! अब तक तो वह ऐसी घटना सुनकर रातोरात घटनास्थल पर चल देता था। न आग देखता था, न पानी। न थकान देखता था, न हैरानी। मगर अब तो वह आराम चाहता है, काम कम करना चाहता है। हाँ, भेंट-मुलाकात करने में बड़ी दिलचस्पी लेता है। जीवन से ईमानदारी घटती जा रही है और एक कृत्रिमता, एक दुनियादारी उसे जकड़े जा रही है। हाय, आज नवीन अपने-आपको पहचान नहीं रहा है!

एक मृगतृष्णा के पीछे वह दौड़ रहा है। एक मरीचिका उसे नचा रही है। उसे धक्का देकर जगा देना आवश्यक है, वरना इस मनमानी की नाव पर सोये-सोये वह किधर बह जाये, किधर चला जाये—पता नहीं। कल तक वह ऐसी घटनाओं को सुनकर रो पड़ता था, तड़प उठता था मगर आज वह तान-कर सो गया। तनिक भी परीशानी नहीं, तनिक भी चिन्ता नहीं। और, बाबा भी बदलते जा रहे हैं। उन्हें भी अब दरबार चाहिए, खुशामद चाहिए, मीटिंग और पार्टियाँ चाहिए, काम कम चाहिए, बात अधिक चाहिये। हे भगवन्, ईमान की कमी आ गई है—क्यों? मेरी समझ में कुछ नहीं आता, आखिर किन मौजों पर ये लोग बहे जा रहे हैं!

भोर होते ही नवीन अपने वर्षगाँठ-सप्ताह की आखिरी सभा में शरीक होने झटपट रामपुर को प्रस्थान कर गया। रात की बात उसके दिमाग़ की सतह पर टिक भी न सकी।

इधर सोनिया अपने महिला-समाज की चन्द सेविकाओं के साथ सिकरहटा ग्राम की ओर चल पड़ी। भगतजी काम का बहाना कर मुकर गए और फिर मँगरू तथा निजाम के पास जाने की सोनिया को हिम्मत ही न हुई।

टन्-टन्-टन्।

"ऐं ! कौन है ?"

नवीन अपनी स्पीच लिखने में तल्लीन है।

फिर टन्-टन्-टन्।

"चपरासी !"

"जी....!"

"अजी, देखो तो बाहर कौन है ?"

चपरासी आगन्तुक का कार्ड लेकर लौटा। कार्ड देखते ही नवीन उछल पड़ा और "डॉक्टर, डॉक्टर" कहता बाहर दौड़ पड़ा। वह डॉक्टर के गले से लिपट गया और पूछा—"कहो दोस्त, इतने दिन कहाँ रहे ? चिट्ठियाँ पर चिट्ठियाँ भेजता रहा, घर के पते से, मगर सभी लौट आए। तुम्हारा कहीं भी पता नहीं। आओ-आओ, चलो, बैठो।"

दोनों अन्दर आकर बैठ गये।

"भई, मेरी बड़ी लम्बी कहानी है। खैर, तुम से भेंट तो हो गई। मैं तो हमीरपुर जाने को सोच रहा था। मगर फिर ख्याल आया कि सेशन चल

रहा है, तुम जरूर ही यहीं होओगे। ऑफिस से तुम्हारे फ्लैट का पता पूछकर यहाँ पहुँच गया। भई, तुम तो अब हाकिम-हुक्काम हो गये, कहो कैसी कट रही है?"

"तुम भी क्या मज़ाक करने लगे डॉक्टर, मैं तो वही पुराना नवीन हूँ। लो, नाश्ता करो। फिर कुछ अपनी भी कहो।"

"भई, मैं तो जेल से बीमार होकर छूटा। छूटकर एक मिशन के अस्पताल में दाखिल हुआ। वहीं मुझे सीता से भेंट हो गई। सीता वहीं मेट्रन थी। वह विधवा हो गई है। उसे एक सहारे की ज़रूरत थी और उसने मुझमें ही अपना सहारा पा लिया है। मैं जब अच्छा हुआ तो बम्बई की एक अनुसंधानशाला में दाखिल हो गया। सीता ने मुझे पैसे से बड़ी मदद की। वह नौकरी से बरखास्त हो गई थी। अतः हम दोनों बम्बई साथ चले गये। मैं अपने अनुसंधान में लग गया और वह अपनी खुराफ़ात में लग गई। बेचारी पति और समाज दोनों से सताई हुई नारी है। उसकी दबी हुई भावनाएँ एक विस्फोट ढूँढ़ रही थीं। बस, ऐन मौके पर अस्पताल के ही जीवन में उसे कम्युनिस्ट भाइयों से भेंट हो गई। फिर क्या था, उन्होंने उसको ठोक-ठाककर अपना बना लिया और वह उनकी सेविका हो गई।

बम्बई में तो पार्टी से उसका और भी गहरा सम्बन्ध हो गया। मैं उसे जितना ही रोकता वह उतना ही उधर बढ़ती जाती। इधर मेरे अनुसंधान से प्रभावित होकर मेरे आचार्य ने मुझे एक सरकारी (Ordnance Factory) में रिसर्च इन्चार्ज बनवाकर नियुक्त करा दिया। मगर मेरी तबीयत वहाँ लगती न थी। बराबर यही सोचता रहा कि मेरे ही दिमाग़ की उपज से मेरे ही देशवासी मारे जायेंगे। फिर सदा से मेरी यह धारणा रही है कि विज्ञान

मारक न होकर तारक हो। और यह फैक्टरी विज्ञान को मारक बनाने के लिए नित नए-नए प्रयोग मुझसे करवाती थी। विज्ञान के इस दुरुपयोग से मुझे बड़ा ही दुःख और असन्तोष होता था। मुझे वहीं के जीवन में पता चला कि आज का वैज्ञानिक कितना निरीह और बेबस प्राणी है। वह मर-जीकर अनुसंधान करता है, मगर उसके अनुसंधानों पर अधिकार दूसरे का होता है, यानी सरकार का, जो अपने राजनैतिक उद्देश्य को साधने के लिए उसका गलत प्रयोग करती रहती है। बस यही समझो कि बेटा मेरा और जनमते ही अधिकार किसी गैर का! भला यह कैसी विडम्बना! यह कैसा व्यवहार!···आखिर यह सब क्यों? क्योंकि राजनैतिक शक्ति हमारे पास नहीं है, क्योंकि हमारी बात दूर तक सुनी नहीं जाती और हम सदा बदनाम होते रहते हैं। बस, दुनिया तो समझती है कि संसार के सर्वनाश के जिम्मेवार हमी हैं।

मेरा असंतोष बढ़ता गया। इसी बीच बम्बई में जहाज के सैनिकों में एक बड़े जबर्दस्त विद्रोह की आग भड़क उठी। विदेशी सरकार के खिलाफ़ आजाद हिन्द फौज के बाद यह दूसरा फौजी विद्रोह था। मैंने बलवाइयों को बारूद देना शुरू किया क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि मेरे बनाए हुए यंत्र से मेरे ही देश के फौजी मारे जायँ। इस काम में मुझे सीता से सहायता और प्रेरणा दोनों मिलीं। मगर सरकारी नजर से हम छिप न सके। हम दोनों पकड़े गए और वर्षों नजरबन्द रहे। अभी-अभी हाल में हम दोनों छोड़ दिये गए। अबतो भारत का नक्शा ही बदल गया है। सीता फिर अपनी पार्टी में चली गई है। और, मैं वही रोटी और रोजी की तलाश में यहाँ तक दौड़ा चला आया।"

"भई, बड़ी सनसनीखेज तुम्हारी कहानी है। कहो, मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

डॉक्टर सतीश ने अपना प्यारा सिगरेट रोल फिर जलाया और बोला—"तुम चाहो तो मेरा बेड़ा पार लग जाए। आज तुम एक ऐसे पद पर हो कि तुम मेरी पूरी मदद कर सकते हो। मेरा जीवन तो विज्ञान के लिए है। राजधानी में तुम्हारी सरकार एक अनुसंधानशाला खोल रही है। उसी के आचार्य्य के लिये अखबार में विज्ञापन निकला है। मैं भी एक उम्मीदवार हूँ।"

'भई, देश के वैज्ञानिक क्षेत्र में अब तुम्हारी इतनी कद्र है कि बिना सिफारिश के भी तुम सरकार के द्वारा ले लिए जाओगे। तुम्हारी प्रतिभा का वैज्ञानिक तो कोई दूसरा मिल न सकेगा। फिर भी मैं तुम्हारे लिए कोशिश करने से बाज नहीं आऊँगा। फिलहाल तुम मेरे ही साथ रहो। विज्ञान सम्बन्धी अभी बहुत-सी बातें करनी हैं।"

सन्ध्यासमय जब नवीन असेम्बली से लौटा तो चाय-पान करने के बाद उसने डॉक्टर से पूछा—"भई, सुनाओ कुछ अपनी करामात।"

"हमारी सबसे बड़ी करामात है ऐटमबम की खोज। १९४५ से संसार का नया युग आरम्भ होता है—परमाणु-युग। यह युग या तो सदा के लिए संसार से लड़ाई को विदा ही कर देगा या संसार का ही सर्वथा संहार कर डालेगा। इस आविष्कार से इन्सान के पास इतनी बड़ी शक्ति आ गई है कि अब मानव को विज्ञान को अपना मित्र ही बनाकर रखने में कल्याण है। आणविक शक्ति यदि संसार को सुखी और समृद्धिशाली बनाने के लिए उपयोग में लाई गई तब तो इस धरती की काया-पलट हो जायेगी अन्यथा यदि इसके अधिष्ठाता, जो आज के राजनैतिक नेता हैं, इसे अपने क्रूर-लक्ष्य को प्राप्त

करने के लिए इस्तेमाल करेंगे तो संसार का नाश निश्चित है। फिर अफसोस भी तो यही है नवीन, कि आज आणविक शक्ति को राजनैतिक नेता ही हाथ में लिये हुए हैं। यदि वैज्ञानिकों का इस पर अधिकार होता तो इसका गलत प्रयोग कदापि न होता। इस शक्ति का प्रादुर्भाव जिस रूप में इस धरती पर हुआ है वह मानव-समाज के लिए एक शर्मनाक और दर्दनाक घटना है। हिरोशिमा में बर्बरता का जो नंगा नाच हुआ है उसे एशियावासी शायद ही कभी भूल सकेंगे। कैसी दर्दनाक मौत, कैसा भयानक दृश्य! छिः-छिः! आखिर विज्ञान को हमारे नेता किधर लिए जा रहे हैं! हाय, क्या होना था, क्या हो रहा है!"—इतना कहते-कहते डॉक्टर का मुखमण्डल गम्भीर हो गया। एकाएक जैसे टूट कर वह चुप हो गया।

"१५ अगस्त का दिन आ चला मंजुला ! आज का अखबार देखा है तूने ? सभी अपने-अपने खिताब को प्रान्तीय गवर्नर को लौटा रहे हैं। नई राष्ट्रीय सरकार उसे मान्यता प्रदान नहीं करेगी। ब्रिटिश सरकार की दी हुई इज्जत अब बिस्तर लपेटने के पहले उसे ही लौटा दी जाय।"

मंजुला चुप है। उसे पता नहीं क्या जवाब दे। जिन उपाधियों के साये में उसकी खानदानी रौनक खिल-खुलकर जवान हुई है, वे आज बेकार हो गईं ! हाय री किस्मत ! उसने जी कड़ा करके कहा—"मैं क्या जवाब दूँ पापाजी ? कुछ समझ में नहीं आता। माउन्टबेटन के ऐलान ने तो हिन्दुस्तान का नक्शा ही बदल दिया। भारत का विभाजन होगा और सन् ४२ के क्रान्तिकारियों के हाथ में हुकूमत की बागडोर आएगी। आख़िर ज़माना क्या से क्या हो गया !" उसके ललाट पर बल पड़ गए।

"पापाजी, ऐसी धाँधली कभी नहीं देखी थी। स्वप्न में भी न सोचा था कि गोरी सरकार भारत छोड़कर यों चली जायेगी !"—डेविड ने जुल दिया।

"अनहोनी होनी हुई मंजुला! मगर अब तो समय के साथ चलना है वरना हम कहीं के न रहेंगे। अब तो नवीन को ही लीडर मानकर चलने में खैर है, नहीं तो रही-सही इज्जत भी मिट्टी में मिल जाएगी। यह भगवान की कृपा ही समझो कि मेरी बुद्धि ठिकाने रही और मैंने चुनाव हारकर भी नवीन को मिला लिया। नहीं तो भारत छोड़कर आज विलायत भागना पड़ता। तुम दोनों हिम्मत से काम लो। फिर बाज़ी हमारे हाथ आकर रहेगी।"—दीवान-बहादुर ने करोना सिगार का धुआँ हवे में उड़ाते हुए कहा। सिगार की गन्ध के साथ-साथ ह्विस्की की भी गन्ध हवा में बिखर गई। डेविड तो तालू चाटकर रह गया।

मंजुला—"तो फेंकिए इन विलायती सितारों को। सर पर जोधपुरी साफा न सही गाँधी टोपी तो रहेगी। चलो डेविड, महल पर तिरंगा आज ही लहरा दें। १५ अगस्त तो परसों है।"

"तो लाओ, मैं भी गवर्नर को खत आज ही भेज देता हूँ। बम्बई जाने के पहले दीवानबहादुरी और ओ० बी० ई० दोनों लेता जाय। और उसका सी० आई० ई० उसे ही मुबारक हो। सी० आई० ई० न दिया तो आज मुझे उसकी जरूरत भी नहीं।"

नवीन के इशारे पर १५ अगस्त के मनोरंजन-विभाग की मुख्य आयोजिका मंजुला ही बनाई गई थी। दीवानबहादुर भी भगत, निज़ाम, मँगरू सब को पूरी सहायता दे रहे थे। पैसे की कमी न थी। चन्दे से पूरा पैसा इकट्ठा हो गया था। किसानों में बड़ा उत्साह भी था। घर की सजावट, गली-गली में झंडी, मेहराब, बन्दनवार। सुबह में प्रभातफेरी। दुपहर में गरीबों को अन्न-वस्त्र का

दान, शाम को आम सभा और रात में नृत्य और गान का विशेष आयोजन।

सन्ध्यासमय आम सभा में करतालियों की गड़गड़ाहट के बीच दीवान-बहादुर ने मंच से ऐलान किया कि आज से वह जनता के सेवक हैं, मालिक नहीं; और दीवानबहादुरी को तो उन्होंने कल रात में ही दफना दिया।

फिर नवीन ने कहा—"आज हमारे स्वराज्य-संग्राम की इति-श्री है। बापू की सदारत में हमें स्वराज्य मिला। अब उन्हीं के दिखाये हुए पथ पर चलकर हमें भारत में सुराज लाना है, रामराज्य की स्थापना करनी है। आज से हम रामराज्य की स्थापना के लिए संलग्न हो जायँ। हमारा स्वराज्य किसी काम का नहीं यदि इस भूमि पर हम सुराज न ला सके। बस, आइए, हम एक दिल होकर भारत के भविष्य को उज्जवल बनायें। जय हिन्द!"

सभी ने एक सुर से नवीन की सराहना की। कितना अच्छा सुझाव, कितना सुन्दर विचार! सोनिया तो गद्गद् हो गई। आज से वह रामराज्य की स्थापना के लिए जियेगी, मरेगी। जय राम!

रात में दीवानबहादुर की लॉन में लोक-नृत्य की चहलपहल रही। सदर फाटक आम जनता के लिए खोल दिया गया था। लॉन की सारी जमीन खचाखच भरी थी। तिल रखने की भी जगह न थी। आज फिर नवीन की बगल में मंजुला ही बैठी। उसकी वेश-भूषा आज निराली थी। हर अंग पर कमाल की सजावट, हर कोने पर रंग की पुताई। नवीन तो रह-रह कर उसकी ओर खिंच जाता और वह उसे अपनी ओर खींचने से बाज भी नहीं आती। उसकी भाव-भंगिमा के क्या कहने? यदि रंगमंच पर

जाती तो हर नर्त्तकी के कान काटकर धर देती। भगत, निजाम और मगरू ने भी खूब रस लिया। मध्यरात्रि के बाद नृत्य की समाप्ति हुई और समारोह की सराहना करते सभी अपने-अपने घर को वापस आये।

दूसरे दिन भोर में ही सोनिया और भगत से बक-झक हो गई। आँखें खोलते ही सोनिया ने पूछा—"बाबा, तुम्हारे बक्स में इतने पैसे कहाँ से आए?"

"चन्दे के हैं बेटी! १५ अगस्त के चन्दे के पैसे कुछ मेरे ही पास रह गए हैं।"

"तो हिसाब करके ऑफिस में जमा कर दो।"

"वाह रे हिसाब! तुम भी अच्छा सबक पढ़ाती हो!"

"तो तुम चाहते क्या हो?"

"गाँव-गाँव दौड़ने का पैसा, एक्का का किराया, कभी-कभी राजधानी जाने का खर्चा, फिर हमारे घर पर जो कार्यकर्त्ता आकर बैठे रहते हैं उन्हें खिलाने-पिलाने का खर्च, आखिर कहाँ से आएगा? फिर अब अपने पास दो-चार धुली हुई धोतियाँ, चार सुफेद टोपियाँ और कुर्त्ता भी चाहिए ही। जूता भी फट गया है, उसे भी बदलना है।"

"बाबा, गरीबों के चन्दे के पैसे इस तरह बर्बाद न करो। अपने पर उसे खर्च करना तो पाप करना है। फिर पार्टी के लिए उसे खर्च करने के लिए अपनी कमिटी में सभी पैसे जमा कर इस काम के लिए कोई फंड खोल दो।"

"फंड की भी एक ही रही बेटी! यहाँ तो हाल यह है कि जिसे जो हाथ लगता है वह वहीं हड़पकर हिसाब पेश कर देता है। मँगरू, निजाम—सब तो यही कर रहे हैं! फिर मैं ही बुद्धू क्यों बनूँ?"

"बाबा, यह उचित नहीं। गरीबों के पैसे पर गुलछर्रे उड़ाना फलेगा नहीं। क्रान्ति के जमाने में हमने सत्तू खाकर और धूप में पैदल चल-चलकर काम किए हैं। आज भी वही लगन चाहिए, वही सेवा-भाव चाहिए। सेवा की वृत्ति कभी बदलती नहीं। मगर मैं तो कुछ और ही देख रही हूँ। आज़ादी आते ही हम कुछ बदले-बदले-से दीखते हैं। हमारे अन्दर गैरजिम्मेवारी बढ़ती जा रही है। आज जब हमें अपने को और भी सँवारना है, तो हम यों बिखर रहे हैं! आखिर यह तमाशा क्या है?"

"तुम आज भी वही पुरानी लकीर पीटे जा रही हो सोनिया! देखती नहीं, यहाँ क्या से क्या हो गया और क्या होने जा रहा है? आज नई जमीन है, नया आसमान है। समय किस तेज़ी से सरका जा रहा है—ज़रा देखो तो! अगर तुम उसके साथ—उसके अनुकूल न हुई तो रह जाओगी यों ही। याद रखो, क्रान्ति कभी अमर नहीं हो सकती। परिस्थिति कभी एक-सी नहीं रह सकती।" —नवीन भगत का पक्ष लेते हुए कह गया।

"माना मैंने आपकी दलीलों को, मगर हम तो सेवक हैं—हमारी वृत्ति, हमारे भाव तो सदा एकरस ही रहेंगे। इस तह में परिवर्त्तन कैसा! आप भी तो बराबर यही कहते आए। आज जाने कैसी हवा आ गई कि आप भी उखड़ रहे हैं। आपकी आज की बातें मेरी समझ में नहीं आतीं!"

समय समझा देगा सोनिया! मन के सभी दरवाजे खोलकर रखो, फिर चीजें आप-से-आप साफ़ हो जायेंगी।"

"ठीक है, देखना है, किसकी आँखें क्या दिखाती हैं!"

नवीन बातें बढ़ाना ठीक न समझकर चलता हुआ।

"नमस्ते मंजुला देवी !"—नवीन ने मेल ट्रेन की खिड़की से सर निकालकर कहा।

"नमस्ते, नमस्ते !"—मंजुला ने हँसकर कहा।

गाड़ी रुक गई। नवीन शेरवानी-पाजामे में था। डब्बे से उतरते ही उसने झट हाथ बढ़ाकर मंजुला से शेकहैंड किया। मंजुला की मक्खन-सी कोमल उँगलियाँ उसकी हथेली में समा गईं। उसकी आँखों में तृष्णा थी, होठों पर शोखी।

"आखिर आप कलकत्ते आ ही गये ! मेरी मुद्दत की इन्तजारी के बाद ! जाने मैं कब से आस लगाए बैठी हूँ।"

"क्या कहूँ, मीटिंग का दिन बराबर टलता रहा। कई दिनों बाद आज का दिन मुकर्रर हुआ।"

दोनों बातें करते बाहर चले आए। दीवानबहादुर की नई ब्यूक खड़ी थी। नौकर ने सामान पीछे रखा। दोनों सवार हो गए। गाड़ी हवा से बातें करती निकल चली।

"क्यों, आप किसी गम्भीर विषय का चिन्तन कर रहे हैं ?"—मंजुला ने मुस्कुराते हुए पूछा ।

"नहीं तो ! बस, सोच रहा हूँ बीते हुए कल को । जेल से छूटते ही मैंने इस महानगरी की शरण ली थी । आज जान पड़ता है कि यहाँ के सभी गली-कूचे मुझे छाती तले समेट लेने को लालायित हो उठे हैं ।"

"आख़िर क्यों नहीं, जीवन की सुखद स्मृतियाँ जो छोड़ रखी हैं यहाँ आपने । परन्तु चन्द महीने पीछे की मेरी स्मृतियाँ तो बड़ी दुखद हैं । गुण्डों ने इस नगरी को बर्बाद कर डाला था । हर ओर वर्बरता का नंगा नाच था । वे भी क्या दिन थे ! सड़कों पर तो लाशें बिछ गई थीं । आदमी आदमी को पहचानना भूल गया था । हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमानों की हत्या और मुसलमानों के मुहल्ले में हिन्दुओं का कत्लेआम एक आम बात हो गई थी । ओह ! आदमी भी क्या से क्या हो जाता है !"

मंजुला के मुख से इन बातों का निकलना था कि नवीन के दिमाग़ के परदे पर प्रोफेसर साहब की शकल उतर आई । क्षणभर को उसने अपने को अन्दर-ही-अन्दर कोसा भी कि उन बुरे दिनों में वह कलकत्ता-निवासियों की सेवा न कर सका । पर भीतर की भावनाओं को अपने चेहरे की चहारदीवारी के बाहर उसने झाँकने न दिया ।

बातें करते-करते गाड़ी दीवानबहादुर के विशाल महल की पोर्टिको में आकर खड़ी हो गई । सीढ़ियों पर नवीन के स्वागत में माला लिए दीवान-बहादुर खड़े थे । बग़ल में हाली-महाली भी मौजूद ।

माला पहने नवीन अन्दर दाख़िल हुआ । 'ब्रेकफास्ट' का सिलसिला चला । अँग्रेजी खाने के कमरे में बिल्कुल अँग्रेजी सामान और विलायती

वातावरण भी। चाय पीते-पीते मंजुला ने फिर पूछा—"नवीन बाबू, आज का प्रोग्राम अभी ही ठीक कर लें।"

"अभी तो मैं मीटिंग में जाऊँगा। बारह बजे आकर यहीं लंच लूँगा। फिर मुझे फुर्सत ही फुर्सत है। कल की मीटिंग बारह बजे से है।"

"दुपहर को लंच के बाद आराम करें। शाम को आपके साहित्यिक बन्धुओं को पापा ने यहीं पार्टी पर बुला लिया है और उसके बाद हम घूमने निकल जायेंगे। रात को बाहर ही खाना खाकर देर तक लौटेंगे।"

"बड़ा सुन्दर प्रोग्राम है। कल का कल बनेगा। अच्छा।"

सन्ध्यासमय दीवानबहादुर के ड्राइंगरूम में एक खासी अच्छी पार्टी हुई। रसिकजी, कलाधरजी, नीलमजी, सुमतिजी तथा शेखरजी आदि कलकत्ते के सभी गणमान्य साहित्यिक इस पार्टी में पधारे थे। मंजुला तो बस, पार्टी की दुलहिन ही थी।

सम्पादक नवीन और एम० एल० ए० नवीन में कितना अन्तर आ गया है—साहित्यिक बन्धुओं ने आँखें फाड़ कर देखा। कल वह एक अजनबी था, आज उसके हाथ में शक्ति है, सत्ता है।

आखिर मुस्कुराते हुए किंकरजी ने पूछ ही तो दिया, "कहिए आपको मेरी बधाई का पत्र मिला था या नहीं?

"जरूर-जरूर। अब एक बार हमारे क्षेत्र में भी पधारिये।"

"जब बुलाएँ तभी हाज़िर।" फिर कलाधरजी ने कहा—"कल सन्ध्या-समय हमारी सभा की ओर से आपका स्वागत होगा। हमारा आतिथ्य आप अस्वीकार नहीं कर सकते।"

"जो आज्ञा, अवश्य आऊँगा।"

"मंजुला देवी और दीवानबहादुर को भी थोड़ी देर के लिए कृपा करनी होगी।"

दोनों ने सर हिलाकर निमंत्रण स्वीकार किया।

शेखर ने बड़ी आत्मीयता जताई। कलकत्ता-प्रवास के दिनों में नवीन शेखर के हृदय के बहुत समीप पहुँच गया था। नवीन के दिल में दुखियों के लिए एक समवेदना थी, एक श्रद्धा थी और उसी के बल पर शेखर आज फिर नवीन के समीप पहुँचना चाहता था मगर चन्द ही मिनटों में वह भाँप गया कि नवीन अब एक आडम्बर में घिर गया है और हृदय की दुनिया से दूर हो रहा है। उसे नेता बनाकर सभी उसकी पूजा करना चाहते थे। दीवान-बहादुर के जुमले, मंजुला के इशारे, किंकरजी तथा कलाधरजी के स्तुतिगान ये सब-के-सब शेखर को बहुत खल रहे थे। मगर वह करता क्या! वह तो देख रहा था कि उसका नवीन आज इस कौसर का रस ले रहा है। वह मन-ही-मन कहता—"हाय री सत्ता और हाय री खुशामद, दामन-चोली-सा तुम्हारा जब भी साथ हुआ तो तुमने इन्सान को तबाह कर दिया।"

पार्टी के बाद मंजुला नवीन को लेकर मटरगस्ती करने निकल गई। महानगरी कलकत्ते की वह अपूर्व संध्या आज अपने यौवन की तमाम शृंखलाओं को जोड़कर जाग उठी है। नवीन जिधर भी दृष्टि दौड़ाता उसे सौन्दर्य ही सौन्दर्य दिखाई पड़ता। सर्वत्र मस्ती ही मिलती, उल्लास उछलता। शायद इस सारी प्रेरणा की तह में मंजुला ही है। फिर बालीगंज की घनी आबादियों को पारकर जब गाड़ी 'लेक' पर पहुँची तो मंजुला ने कहा—"नवीन बाबू, आइए, कुछ देर 'लेक' के किनारे-किनारे टहला जाय। आज हवे में एक अपूर्व मस्ती, एक अनोखा उल्लास है।"

"अजी, मजाक नहीं, बावन तोले पावरत्ती सही है।"

"मगर आज तक तो मैंने इसे छुआ भी नहीं।"

"तो रहे आप यों ही! शायद आपने वह जुमला अभी तक सुना नहीं है—"हाय कमबख्त तूने पी ही नहीं··· !"

"मगर कहीं नशा आया तो?"

"मैं सम्भाल लूँगी।"

दो गिलास मेज पर लग गये। मंजुला ने—'फॉर योर हेल्थ'—कहकर गिलास को टकराना चाहा, मगर इधर नए मेहमान के हाथ थरथरा रहे थे। एक हिचक-सी उभर आई चेहरे पर। मंजुला को यह झेंप बड़ी बेतुकी लगी। उसने नवीन की झिझक को झकझोर कर कहा—"इस भरी मजलिस में अपनी हँसी न कराइए नवीन बाबू! देखिए, बेयरे भी हँस रहे हैं!"

नवीन ने कंठी तोड़ दी, पैमाना लब को लबालब करने लगा। अन्तर की गुफा से किसी ने पुकारा भी—'भई मेरे, गाँधीटोपी को उतार फेंको।' मगर सर में मस्ती छा रही थी, नवीन ने इस गुफावासी की आवाज अनसुनी कर दी। फिर सूप, मछली, मुर्गी, सेवरी और पुडिंग का वह ताँता बँधा कि मध्यरात्रि के उपरान्त तो कहीं जाकर वह ढीला पड़ा।

कार में जब नवीन आया तो उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। सीढ़ियों से तो वह रेलिंग पकड़कर किसी तरह उतर गया। हाँ, कभी-कभी मंजुला भी उसे सहारा दे देती। कार में सवार हो मंजुला ने ड्राइवर से कहा कि किसी दूर के रास्ते से चलना। बड़ी गर्मी है। कुछ ठंढी हवा लगे।

मंजुला की आँखों के डोरे लाल हो रहे थे। उसके चेहरे का चढ़ाव-उतार इस तेजी से बदल रहा था कि काश कोई जमकर निहारनेवाला होता!

एक नवीन तो था, पर था वह अपने-आप में ? वह तो इस कूचे का नया राही, इस टुकड़ी का नया रंगरूट ठहरा ! धरती-आसमान के बीच वह कहाँ उड़ा जा रहा था—क्या पता !

और, इस मस्ती के उफान में, निशीथ के सुनसान में, मौज के तुरंग पर सवार उन दोनों ने क्या-क्या किया—कौन कहे ?

कलकत्ते की रंगीन स्मृतियों को लिए जब नवीन हावड़ा स्टेशन पर पहुँचा तो वहाँ उसे अचानक प्रोफ़ेसर साहब से भेंट हो गई। पहले तो उनसे वह कतरा कर दूर सरक जाना चाहता था, क्योंकि उसे पहुँचाने मंजुला भी वहाँ आई थी, मगर प्रोफेसर साहब की पैनी आँखें कब की चूकनेवाली? चट पुकार ही तो उठे—

"कहिए नवीन बाबू, किधर छिपे जा रहे हैं?"

"ओ, प्रणाम, प्रणाम। अरे-रे-रे, आप हैं? आपसे तो आज ही भेंट हो रही है।"

"अजी, यह कहो कि आज भी भेंट हो गई, वरना कहाँ तुम और कहाँ मैं!"

मंजुला तो मन-ही-मन कुढ़ रही थी कि कहाँ से बीच में आ टपका यह विषखोपड़ा!

"आपसे सम्पर्क तो मैं सदा चाहता आया, लाख कोशिशें भी कीं, मगर आपका कहीं पता भी तो मिले!"—नवीन ने ज़रा तेज़ी में कहा।

भई, उधर तो बंगाल में जो आग लगी थी उसे ही बुझाने का एक छोटा-सा प्रयत्न कर रहा था कि भारत का विभाजन हो गया। फिर पंजाब में जो हत्याकांड हुआ, जो बर्बरता का नंगा नाच हुआ उसे दूर से ही देखकर आँखें मूँद लेना मुझसे सम्भव न था। बस, मैं पंजाब को चल पड़ा और अपने विचार के लोगों की एक टोली बनाकर बेगुनाह लोगों तथा मासूम बच्चों और बहू-बेटियों की रक्षा करने को इस अग्नि-कुंड में कूद पड़ा। ईश्वर हमारे साथ था। भई, क्या पता दूँ, कहीं रहने का ठीक हो तब तो! आज यहाँ तो कल वहाँ। बस, जिप्सी की हालत है।....खैर, अभी गाड़ी में बैठो, खुलने पर बातें होंगी। अगले स्टेशन तक मैं तुम्हारे डब्बे में आऊँगा।"

गार्ड ने सीटी दे दी थी। प्रोफेसर साहब एक झोली लिए थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट में दाखिल हुए। साथ में दो और स्वयंसेवक थे। एक सेविका भी थी।

नवीन फर्स्टक्लास Air Conditioned कम्पार्टमेंट में दाखिल हुआ। चढ़ने के पहले उसने मंजुला को धन्यवाद देते हुए हाथ मिलाया और जबतक गाड़ी आँखों से ओझल न हुई, मंजुला उसे रूमाल हिला-हिलाकर ललचाती रही।

प्रोफेसर साहब की सादगी पर नवीन झेंप रहा था। फर्स्टक्लास का कम्पार्टमेंट उसके लिए एक शर्म का सामान बन गया। आखिर बर्दवान स्टेशन पर उतरकर वह ख़ुद उनके कम्पार्टमेंट में चला गया।

थर्ड क्लास का डब्बा अपनी सारी गन्दगी लिए ठकचा था। प्रोफेसर साहब किसी तरह आधी सीट पर अपना हॉलडॉल आधा खोलकर बैठे थे। नवीन वहीं आकर बैठ गया और पूछा—"बड़ी भीड़ है। इन्टर में क्यों न चले गये?"

"भई, तुम्हें तो सरकार से पैसा मिलता है और यहाँ तो संस्था के पैसे पर चलना है। फिर मैं यदि जनता से दूर भाग कर रहूँ तो शायद उससे दूर ही होता जाऊँगा और फिर उसके निकट आने से जी घबड़ाने लगेगा। हमें तो जनता के सम्पर्क में रहते हुए भी उससे परे होकर रहना है।"

नवीन इसका उत्तर न दे सका। कुछ देर बाद प्रोफेसर साहब ने फिर शुरू किया—"किसी तरह जलते हुए पंजाब की मैं उस समय कुछ सेवा कर सका और आज भी कर रहा हूँ। बेघर-बार के लोगों को बसाना तथा सताई हुई अबलाओं को गुण्डों के हाथों से बचाना आज हमारा मुख्य कार्य है। गाँधी का बलिदान होते ही यह आग तो बुझ गई—मानों इस शिखा को बुझाने के लिए ही यह जीव-दान देना था—मगर आज भी वहाँ बेशुमार काम पड़ा है।...बंगाल का सवाल भी कोई कम टेढ़ा नहीं है। हजारों लोग भारत के इन दो अंचलों में शान्ति-स्थापना करने को जान की बाजी लगाए हुए हैं। और मैं तो इसी सब्र पर जिन्दा हूँ कि मैं भी उन हजारों में एक अदना-सा व्यक्ति हूँ।" गाँधी का नाम लेते ही प्रोफेसर की आँखों में आँसू छलक आए थे। मगर पलक मारते सबको समेट वह अपनी बातें बेरोक कहते ही गए।

"प्रोफेसर साहब, मैं तो ऐसे कीचड़ में आ फँसा कि आपका साथ इस पुनीत कार्य में न दे सका। यह मेरा दुर्भाग्य है।"—नवीन ने अपनी बेबसी जताई।

"नवीन! तुम कीचड़ में भी कमल जैसे खिल सकते हो। उसके पत्तों के सदृश निर्लिप्त रह सकते हो—परन्तु यदि तुम चाहो तब। जहाँ चाह है वहाँ राह भी है।"

कुछ देर यों ही बातें चलती रहीं। जब गाड़ी अगले स्टेशन पर लगी तो नवीन अपने कम्पार्टमेंट में चला गया और वहाँ की बात वहीं रह गई।

नवीन भगत की कुटिया में पहुँचा तो सोनिया का तेवर देखकर सहम उठा। वह अपने बाबा से उलझ पड़ी थी—"बाबा! मैं तुम्हें सरकारी परमिट-कमिटी की मीटिंग में कभी न जाने दूँगी। सीमेंट की परमिट तथा चीनी की दूकान देने का अधिकार जो सरकार ने तुम्हें सौंपा है वह तुम्हें बरबाद कर देगा। तुमलोग अपने पिट्ठुओं को लाइसेंस देते हो और वे ब्लैक-मार्केट में सीमेंट तथा चीनी की बोरियाँ बेंचकर तुम्हारी कमिटी के सदस्यों की झोली भर देते हैं। बस, अनैतिकता का व्यापार खुलकर खेल रहा है और जो जहाँ है, वहीं ग़रीबों का गला मरोड़कर पैसा ऐंठ रहा है। भला सोचो तो, तुम क्या करने चले थे, क्या कर रहे हो! बर्बाद हो रहे हो बाबा! तुम इस जंजाल से निकल भागो, निकल भागो। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। तुम्हारे हाथ में यह सत्ता क्या आई, तुम्हें ही तबाह कर धर देने पर तुल गई है। इस तबाही से तुम्हारा जेल-जीवन कहीं श्रेयस्कर था।"

"तू भी क्या बेकार बकती है सोनिया! क्या हमलोग आजीवन जेल में ही सड़ते रहें?"

"सड़ना नहीं बाबा, आत्म-शुद्धि करना था।"

"हुँः, हमारी अपनी सरकार है। हम अपनी व्यवस्था खुद कर रहे हैं। इसमें बुरा क्या?"

"मैं तो देखती हूँ, तुम्हारी व्यवस्था अव्यवस्था ही बढ़ा रही है।"

"तेरा माथा खराब हो गया है रे! हमारी हर बात में नुस्ख निकालती रहती है तू! बड़ी बुरी बात है। जा, अपने महिला-समाज का संगठन कर। मेरे कामों में दखल न दिया कर।"

भगत का पारा चढ़ चला। रंग बदरंग देख सोनिया चुपचाप खिसक गई।

शायद भगत बाबा को गरम-गरम लड्डू का स्वाद लग चुका था। तभी तो उससे मुँह मोड़ने की बात पर पिनक आ जाती! तामसी भोजन के बाद सात्विक भोजन का स्वाद जरा भी नहीं रुचता। सोनिया तो अब उनकी आँख की किरकिरी हो रही थी। और वह भी अब उनका साथ जरा भी नहीं देती। एक अजब तमाशा है। उधर नवीन भी सोनिया के रुख़ से काँप उठता है। उसे देखते ही नवीन को भासने लगता कि वह कोई गुनहगार है और सोनिया एक ज्योतिपुंज है—एक अंगार उगलती हुई शिखा, जो नवीन को निगल जाना चाहती हो।

दिन-भर के धंधे की थकान के बाद जब सोनिया अपने बिस्तर का एकान्त पाकर सोने का उपक्रम बाँधती तो नींद की जगह अनायास विचारों का बवंडर उसके सारे अस्तित्व को झकझोर देता और प्रश्नों की एक कतार उसकी मानस-दृष्टि के आगे आ खड़ी हो जाती—'तो क्या बाबा, मंगरू, निजाम तथा नवीन जैसे सच्चे देशसेवक भी सत्ता की चकमक के आगे चित हो गये? आखिर वे किस बाढ़ में बहे जा रहे हैं, किस आँधी में उड़े जा रहे हैं?

सेवा और त्याग ही जिनके माथे का तिलक रहा आज तक, परमार्थ ही जिनकी आँखों के आगे लक्ष्य रहा निरन्तर, वही ···वही आज दुनिया की गन्दी और अन्धी गली में भटक रहे हैं? जो कल खुद प्रकाशपुंज हो चमक रहा था वही आज उजेला ढूँढ़ता दम तोड़ रहा है? हाय रे करम! आखिर वह कौन माया है, कौन सत्ता है, जो उनकी छाती पर पत्थर तोड़ रही है? कौन दैत्य है जो उनके सर पर चढ़कर दहाड़ रहा है? कहाँ गया त्याग का वह विराट् रूप, किधर खो गई तपस्वी की वह सौम्य मूर्त्ति! तो राजदंड ही क्या काल-दंड बन गया? ऐसा क्यों·······क्यों·······?'

और उन प्रश्नों का कोई भी उत्तर उसे नहीं मिलता। वह जितना ही उत्तर ढूँढ़ती उतना ही निरुत्तर होती जाती। आखिर पर मारते-मारते जब थक जाती तो उसी अतल-तल में डूबती-उतराती सो जाती।

"मंजुला ! कौंसिल में एक सीट खाली हुई है। किसी तरह वह सीट यदि मुझे मिल जाय तो मैं अपनी हार भूल जाऊँगा और इस खानदान की गई हुई इज्जत फिर लौट आएगी।"

"तो-इसकी कुंजी किसके हाथ में है?"

"बस, नवीन के हाथ में। यदि वह चाहे तो सब बेड़ा पार हो जाए।"

"क्या बेन्दिश बाँधी जाय? दूर से ही सिप्पा लगाना ठीक होगा पापा!"

"मैंने कम्पा लगा दिया है बेटी! मेरी योजना है कि इस साल की वर्षगाँठ के अवसर पर नवीन को एक अभिनन्दन-ग्रन्थ दिया जाय और उसी के साथ-ही-साथ ५१,०००) हजार की एक थैली भी। कहो, कैसा रहेगा?"

"खूब जमेगा पापा! किला फतह है!"—मंजुला उछल पड़ी। डेविड भी नाच उठा। फिर कुछ देर सोचकर मंजुला ने कहा—"मगर पापा, अभिनन्दन-ग्रन्थ तो अमूमन किसी बड़े बुजुर्ग को दिया जाता है। मृत्यु के पड़ोस में पहुँचे उनके जीवन का लेखा-जोखा करके उनका सम्मान किया जाता है। कहीं नवीन इसे बुरा न मान ले!"

"तुम भी कहाँ की बात ले आई मंजुला ! अरे, कलिया खानेवाले को कैसा भी गोश्त खिला दो, उसे मज़ा ही मिलेगा !"

तीनों ओर से हँस पड़े ।

"और भी सुनो—किंकरजी, रसिकजी, तथा कलाधरजी इस ग्रन्थ के सम्पादन का भार अपने ऊपर ले चुके हैं । काम भी शुरू हो गया है । वे भी पैंतरे पर हैं । वे जान गए हैं कि नवीन अब एक महान् राजनैतिक शक्ति है । उस शक्ति से बिजली पाकर वह भी चमक उठेंगे । बस, समझो कि वह भी कम्पा ही लगा रहे हैं । फिर तो जैसी जिसकी कौड़ी, जैसी जिसकी किस्मत !"

फिर जोरों का कहकहा—ठहाका ।

नवीन-अभिनन्दन-ग्रन्थ-समिति बन गई । दीवानबहादुर चेयरमैन बने । कलकत्ते के कई-एक सेठ तथा जिले के प्रमुख व्यक्ति उस कमिटी के सदस्य हुए । चन्दा जुटाने का काम जोर-शोर से शुरू हुआ । उधर किंकरजी ने चिट्ठियाँ उड़ाई । अभिनन्दन-ग्रन्थ के सम्पादक-मंडल की कई समितियाँ बनीं । सब लोगों को सब तरह के काम अलग-अलग सुपुर्द हुए । कोई नवीन बाबू के राजनैतिक जीवन का लेखा-जोखा करेगा तो कोई उद्योग-धन्धे, खेती-बारी सम्बन्धी लेखों और भाषणों को जुटायेगा । कलाधरजी ने संस्मरण लिखने का बीड़ा उठाया । कलकत्ता-प्रवास की कहानी उनसे बढ़कर सुन्दर और कौन लिखता ? पहले तो उनका विचार था कि शेखरजी को इसकी सूचना न दी जाय और उन्हें सम्पादक-मंडल में भी न लिया जाय परन्तु लोकमत की उपेक्षा करना बड़ा मुश्किल था ।

एक दिन किंकरजी तथा कलाधरजी शेखरजी की कुटिया पर पहुँचे और

दोनों ने बड़ी आजिजी से कहा—"नवीन-अभिनन्दन-ग्रंथ के विषय में आप क्या सोचते हैं ?"

"बड़ा सुन्दर प्रयास है।"

"तो फिर हमारी प्रार्थना है कि आप अपना नाम संपादक-मंडल में देने की हमें अनुमति दे दें।"

"यह मुझे मंजूर नहीं संपादकद्वय !"

"आखिर बात क्या है ?"

"भई, बात बिलकुल साफ़ है। अभिनन्दन-ग्रन्थ किसी महान व्यक्ति को, उसके जीवन की गोधूलि-वेला में, दिया जाना चाहिए। वही उचित है। और सच पूछिए तो किसी के जीवन का ठीक-ठीक मूल्यांकन उसके जीवन की अन्तिम वेला में ही हो सकता है। नवीन के त्याग और उसकी सेवा की मैं अवमानना नहीं करता किन्तु अभी तो वह देहली पर ही है! अभी उसका यशगान मैं क्या करूँ ? फिर इस समिति के जो लोग संयोजक हैं,उनका कोई अनुरूप नैतिक स्तर नहीं। दीवानबहादुर मानिकचन्द को कलकत्ता का कौन व्यक्ति नहीं जानता ? अंग्रेजों के जमाने में उसने राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने का कोई भी तरीका उठा नहीं रखा। बंगाल जब अकाल के विकराल गाल में बेहाल था, तब यही सेठ रिलीफ के नाम पर सरकार से लाखों का गल्ला लेकर ब्लैक करता था। आज जब सरकार बदली तो उसने भी नाव पर से पाल बदल दिया। समय और पैसे के गुलाम इन नक़ली लीडरों को सहयोग देना मुझसे न होगा। मुझे क्षमा करें।"

शेखरजी की बातों को सुनकर किंकरजी और कलाधरजी चिढ़ गये। क्रुद्ध कर दोनों वापस हो गये। रास्ते भर शेखर की निन्दा करते रहे—बड़ा

ईमानदार बनता है। बड़ा बना बैठा है! सदा सिद्धान्त की ही बात करता है। खैर, इसे छेड़ना भी ठीक नहीं—कहीं कोई बयान न निकाल दे!

किंकरजी और कलाधरजी तो यही सोचते थे कि इस बहती गंगा में डुबकी लगाने पर कुछ हाथ ही आएगा, कुछ जायेगा नहीं। फिर ऐसा अवसर चूकना निरी मूर्खता है—मूर्खता।

रात में शेखरजी ने नवीन बाबू के नाम एक चिट्ठी लिखकर लेटर बॉक्स के हवाले कर दिया। पत्र में शुभकामनाएँ प्रेषित करने के साथ-ही-साथ उन विचारों को भी स्पष्ट रूप में व्यक्त कर दिया गया था।

शेखरजी का पत्र जब नवीन ने पढ़ा तो उसकी अहंता को एक कठोर ठेस लगी। भीतरी क्रोध से उसका चेहरा तमतमा गया और शेखर की इस हिमाकत पर उसकी छाती जल उठी, खीझ से होंठ काँपने लगे।

"नवीन बाबू, आप तो त्यागवीर हैं, महान कर्मयोगी हैं, आपको यदि अभिनन्दन-ग्रन्थ मिला तथा ५१,०००) की थैली भेंट की गई तो आश्चर्य ही क्या! मगर अपनी सरकार से बाबा को यह ५,०००) का अनुदान क्या दिला दिया? इन्हें भी शह-सवार बना लिया आपने....."—सोनिया ने बाबा पर कटाक्ष करते हुए छेड़ा।

भगतजी ५,०००) का मन-ही-मन सौदा करते दूध-रोटी खा रहे थे। यह बात सुनते ही तिलमिला उठे। एक ही साथ लज्जा और क्रोध की सम्मिलित चोट ने उन्हें एकदम झनझना दिया और वे कुछ बोलने को उद्दत हुए मगर नवीन ने झट उत्तर दे दिया—"सोनिया! तुम भूलती हो। भगतजी ने जो देश की सेवाएँ की हैं, जो त्याग का उदाहरण हमारे सामने रखा है वह अद्वितीय है। तुम देखती ही हो कि तुम्हारी जली हुई झोपड़ी आजतक बनकर तैयार न हुई। आज जब देश आज़ाद हुआ तो आज़ादी के दीवाने को सहायता देना स्वराज्य-सरकार का धर्म है।"

सोनिया को तो जैसे तितकी लग गई इन बातों को सुनकर। झट उबल

पड़ी—"नवीन बाबू, मुझे त्याग का पुरस्कार नहीं चाहिए, मुझे सेवा का उपहार नहीं चाहिए। सेवा का शृंगार उसके फल के त्याग में है, त्याग की महत्ता तो उसकी प्रशंसा की अवहेलना में है। सेवक अनुदान नहीं खोजता, पुरस्कार नहीं चाहता। सेवा की वृत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि ही उसका पुरस्कार है, अनुदान है। वह तो जीवन की एक अटूट साधना है जिसकी कोई भी सीमा नहीं, कोई भी व्यवधान नहीं। सेवा के लिए पुरस्कार देकर तो आप उस सेवक की सीमा ¦ रत कर देते हैं। उसके जीवन की तमाम साधना को क्षीण कर देते हैं।"

बीच ही में बाबा बोल पड़े—"बिटिया, तुम्हें यह क्या बेसिर-पैर की बहक की हवा लग गई है? बराबर अटपटी बातें करती रहती हो। इतनी सेवा हमने आखिर किस दिन के लिए की थी? क्या आजीवन हम भूखे ही मरते रहें? मौत के दिन तक रोटी के लिए, सुख के लिए तरसते ही रहें? अब भी तो जरा विश्राम करें, आनन्द मनाएँ। अब तो यही है कि घर बन जाय। फिर नवीन बाबू की दया से, उम्मीद है, कुछ सरकार से खेती-बारी के लिए अच्छी जमीन भी मिल जायेगी। फिर क्या बात, तुम्हारी शादी किसी बड़े घराने में कर दूँगा और मैं ख़ुद चैन की वंशी बजाऊँगा। मेरी बिटिया रानी बनेगी—रानी! दर-दर धूप में, पानी में दौड़ना न होगा। उसका भी एक अपना घर होगा, पति-पुत्र होंगे, धन-धान होगा।"

भगतजी इस कल्पना से प्रफुल्ल हो गये। परन्तु सोनिया को बड़ी गहरी चोट लगी। पैर-तले से मिट्टी सरक गई। आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। उसने अपने को सम्भालते हुए कहा—"बाबा, मुझे आजतक मालूम न था कि तुम्हारी सेवा का दायरा इतना संकीर्ण हो गया है। तुम किस ऊँचाई पर

थे और आज कहाँ आ गिरे ! सेवक को विश्राम कैसा—आराम कैसा ! और उसके आनन्द का कोष तो उत्तरोत्तर बढ़ती हुई सेवा के स्रोत में है। उसका सुख तो उसके अन्तर की शान्ति तथा सन्तोष में निहित है। पता नहीं तुम आज उस शान्ति का पता—आनन्द का वैभव आलीशान इमारत तथा नहर के पेट में फैले हुए उपजाऊ खेत में कैसे ढूँढ़ रहे हो ! जिसे सच्चे आनन्द की एक बार झाँकी मिल चुकी है, वह आज आनन्द की तलाश तथा शान्ति की खोज के लिए उलटे रास्ते बेतुकी योजनाएँ क्यों बना रहा है ? यह कैसी लीला, यह कैसा भ्रम !"

बाबा डूबे हैं—पाँच हजार रुपये—पाँच हजार रुपये; नहर के खेत, धन-धान से भरा घर; अटारी पर बैठी उसकी बेटी नौकरों की पलटन पर हुकूमत चला रही है।

सोनिया ने बात आगे बढ़ाना ठीक न समझा। उसे विश्वास हो गया कि उसके बाबा और नवीन बाबू अब अपने को सुधार नहीं सकते, इस माया-जाल से बच नहीं सकते। वे अथाह जल में डूबते चले जा रहे हैं और अब भगवान ही उन्हें बचाए तो बचाए। उनके साथ अब सोनिया का निर्वाह नहीं हो सकता। रात-दिन बकझक होती रहती है। उसके विचार एक कर्मनिष्ठ साधिका जैसे सात्विक हो गए हैं जो नवीन तथा बाबा के विचार से मिल नहीं पाते। और अब अपनी राह छोड़ने में वह भी असमर्थ है, वे भी असमर्थ हैं। अब तो उसे दूसरा क्षेत्र चुनना होगा—इस वातावरण से दूर भागना होगा। यहाँ सेवा और राजनीति में द्वन्द्व हो रहा है। दोनों को पृथक्-पृथक् रूप देकर दो नई चीजें गढ़ी जा रही हैं। इस वातावरण में सोनिया अब जी नहीं सकती।

वह कुछ दिनों के लिए फिर मौसी के यहाँ चली जाना चाहती है।

यहाँ की मिट्टी से भी उसे घृणा हो गई थी, यहाँ अन्न-जल ग्रहण करना भी उसे पाप जैसा लगता था।

उसके बाबा भी उसे टालना ही चाहते थे। उन्होंने झट अपनी अनुमति दे दी और सोनिया अपनी मौसी के घर को विदा हो गई।

तृतीय खंड

"मौसी, इस तरह बैठे-बैठे मुझसे जिया न जायगा। यदि ऐसा ही जीना था तो बाबा के यहाँ ही न रह जाती? मेरे अन्दर जो लौ जगी है वह बुझ नहीं सकती.........।"

"भगतजी का सर खराब हो गया है बेटी! अब तुझे व्याहकर उन्हें निश्चिन्त हो जाना चाहिए। तेरा व्याह हो जायगा तो तू ठीक हो जायगी। नहीं तो तेरा माथा सदा इसी तरह चक्कर काटता रहेगा।"

"मौसी, तुझे हँसी करने को आखिर मैं ही मिलती हूँ?"—सोनिया मुस्कुराकर बात टालती हुई फिर बोली—"मौसी, यदि तुझे बुरा न लगे तो मैं कल से डोमखाने में जाकर उनके बच्चों को कुछ पढ़ा आया करूँ और उनकी स्त्रियों को भी कुछ.........।"

"ना बाबा! ना! यह काम यहाँ न करना। अपना समाज हमीरपुर में ही बनाना। ये सब छोटी जाति के लोग पढ़-लिखकर सिर चढ़ जाएँगे और मालिक और रियाया का सारा रोब ही मिट जाएगा। इज्जत ही मिट गई तो फिर रहा क्या? फिर तू बड़े घर की बेटी है, भला ताड़ीखाने में जाएगी? छिः! यह

बुद्धि तेरे माथे में कब कैसे समा गई? भगवान ने जिसे जैसा बनाया वह वैसा रहेगा। छोड़ दो उन्हें चुपचाप सूअर की मांद में। उन्हें छेड़ने से क्या भला?"

सोनिया तड़प कर रह गई। कोई रास्ता उसे यहाँ भी नहीं दीखता। मौसी अपने धान का हिसाब मिला रही हैं—कल्याणी के खेत से १०० मन धान आया, शिवबहार के खेत से ६० मन; नहर के खेत से २०० मन—और इधर सोनिया सर चीर रही है—अन्धकार में आलोक ढूँढ़ रही है—बाबा का साथ छोड़ा, मौसी के घर आई; अब यहाँ से कहाँ जाय—कौन राह, कौन डगर पकड़े?

कि अचानक कुछ शोर सुनाई पड़ा। सोनिया चौंक उठी। दरवाजे की ओर दौड़ गई। कान देकर सुनने लगी। मौसी के चेहरे पर घबराहट की लकीरें खिंच आई—यह कौन बला आई राम!

आवाज तीव्र होती गई—तीव्रतर होती गई। कुछ देर बाद चन्द सेवक और सेविकाओं की टोली नारे लगाती मौसी के घर की ओर आती हुई दीख पड़ी। वे आवाज बुलन्द कर रहे हैं—"बिना जमीन कोई न रहेगा—कोई न रहेगा। संत विनोबा की जय! भूदान-यज्ञ सफल हो...।" टोली नारा लगाती हुई मन्दिर की ओर बढ़ती चली गई। मौसी भौंचक हैं—"बिना जमीन कोई न रहेगा—कोई न रहेगा?"

"यह क्या बोलते हैं बिटिया? यह कैसी अटपटी बात! बिना जमीन के कोई न रहेगा?"—मौसी का चेहरा फक़ था।

सोनिया कुछ सोचती-सोचती झट बोल उठी—"ओ-ओ मौसी! समझ गई, बोलो सन्त विनोबा की जय-जय! आ गये वे—आ गये वे!"

"कौन रे? कौन रे?"

"गाँधीजी के शिष्य—सन्त विनोबा के दूत, जिन्होंने तेलांगना में भूदान-यज्ञ का श्रीगणेश किया है—यह नारा वे ही लगा रहे हैं। सन्त विनोबा के विचारों को मैं बहुत दिनों से पढ़ रही थी। तेलांगना तथा दक्षिणी प्रदेश में जो चमत्कार उन्होंने दिखाया है उससे संसार चकित है।"

"वे क्या चाहते हैं बिटिया?"

"वे जमीन माँगते हैं मौसी! भूमि का दान चाहते हैं भूमिपतियों से।"

"छिः! यह कैसी माँग, यह कैसा दान! इन सबों का माथा फिर गया है। रोज़ नये-नये टैक्स, नये-नये चन्दे, नये-नये दान। हमें ये मुफलिस बना कर धर देंगे।"

अभी बातों का सिलसिला चल ही रहा था कि सूरदास अपनी लाठी टेकते हुए पहुँचे और बोले—"माँजी, हमें आपकी दरी चाहिए। मन्दिर में आज सन्ध्या को भूदानी नेता स्वामी गोकुलदासजी का प्रवचन है। कल पास ही एक गाँव में उनका व्याख्यान हुआ था। बड़ा सुन्दर बोलते हैं। आज सुबह से ही उनके सेवक हमारे गाँव में घूम-घूमकर नारे लगाते हैं और सन्त विनोबा के सन्देश सुना रहे हैं। सन्ध्यासमय तुम दोनों मन्दिर में आना। मन प्रसन्न हो जाएगा।"

सोनिया आनन्द-विभोर हो उठी। आज वह मसीहा आ ही गया जिसका इन्तज़ार वह महीनों पहिले से ही कर रही थी।

सन्ध्यासमय मन्दिर के अहाते में एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। ऐसी सभा तो कभी देखने को न मिली थी। एक किनारे महिलाएँ भी बैठी थीं। स्वामीजी के दर्शन के लिए सभी उतावले हो रहे थे।

स्वामी गोकुलदास आ गए। जयजयकार से आसमान गूँज उठा। जब

वह मंच पर हाथ जोड़ खड़े हुए तो उन्हें देखते ही सोनिया एकबारगी चौंक पड़ी—अरे, यह तो वही प्रोफेसर साहब हैं! चेहरा पहले से भी कितना दिव्य हो गया है!

उनके मंच पर बैठते ही लोगों ने जब आवाज़ लगाई— 'बिना जमीन कोई न रहेगा—कोई न रहेगा।' तो उन्होंने हँसते हुए सबको शान्त किया और कहा—"जब हमारी सभा खत्म होगी तो मुझे विश्वास है कि तुम यह नारा लगाओगे कि 'बिना जमीन कोई न रहा—कोई न रहा।' सभी गम्भीर हो उठे। फिर प्रार्थना शुरू हुई। पहले बौद्ध-मंत्र के बाद कुरान की आयतें पढ़ी गईं, फिर उपनिषद् के कुछ अंश, तब गीता का स्थितप्रज्ञ-दर्शन और अन्त में 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' वाला भजन। प्रार्थना के बाद स्वामीजी का प्रवचन शुरू हुआ—"आपके गाँव में जितनी जमीन है वह सब भगवान की है। कोई भी उसका न बड़ा मालिक हो सकता है न छोटा। जिस तरह हवा-पानी और सूरज सब के लिए भगवान की देन है और जिसे कोई भी अपना नहीं कह सकता उसी तरह जमीन भी गोपाल की दी हुई है और सब के लिये है। यदि आप समझ लें कि 'सबै भूमि गोपाल की' तो फिर न कोई भूमिपति है और न कोई भूमिहीन। आप शास्त्रों की बात मानते हैं। शास्त्रों में मनुष्य को भूमि-पुत्र कहा गया है। जरा सोचिए तो, भूमि-पुत्र से भूमि-पति बन जाना कैसा अनाचार है! तो पृथ्वी हमारी माता है। माँ के सेवक ही होते हैं, मालिक नहीं। तो जाने-अनजाने में जो इसके मालिक बन गये हैं, उन्हें इस पद का त्याग कर सेवक बन जाना चाहिए। मनुष्य-जन्म की महत्ता है कि वह त्याग कर सकता है, सेवा कर सकता है। फिर भगवान ने आपको जो ये दो हाथ दिये हैं उनसे

सेवा ही करें, दान दें; दूसरों को सताएँ नहीं, डुबाएँ नहीं ! यही मनुष्य का धर्म है। सन्त विनोबा कहते हैं कि जमीन सबकी होनी चाहिए, इसलिए हम सबको मिल-जुलकर काम करना चाहिए । यदि हम ऐसा नहीं करते तो अधर्म होता है। भूमिपतियों से मेरी प्रार्थना है कि वे मालकियत की भावना को त्यागकर अपनी जमीन भूदान-यज्ञ को अर्पित कर दें। वे सोचने के लिए चाहे जितना समय ले लें मगर यह याद रहे कि भूदान परमात्मा का कार्य है और जो इस कार्य को जितना शीघ्र करेगा वह उतना ही अधिक परमात्मा का प्यारा बनेगा। अभी हमारा कैम्प यहाँ दो-एक दिन रुककर, कुछ काम निबटा कर ही आगे बढ़ेगा।...”

प्रवचन के बाद स्वामीजी को अनेकों दान-पत्र दिए गए। उनके प्रवचन का जनता पर बड़ा गहरा असर पड़ा। भूमिपतियों की टोली में खलबली मच गई। मालकियत का, स्वामीत्व का धुर्रा उड़ गया। भूमिहीनों को एक ज्योति मिली। एक नया प्रकाश मिला। धरती माता उनकी भी है, वे अनाथ नहीं, सनाथ हैं—उन्हें आज इसका आभास मिला।

सोनिया की मौसी तो मानों तिलमिला उठी। हे भगवान्, कहाँ से कहाँ यह आँधी उठी ! दान-पत्रों का सिलसिला चला तो वह निकल भागने को तैयार दिखाई पड़ी। कानाफूसी भी शुरू हुई कि वह तो इस गाँव की सबसे बड़ी भूमिस्वामिनी है—उसे तो सबसे ज्यादा देना चाहिए। जब सरगर्मी बढ़ी तो वह धीरे-से उठकर निकल भागी। सोनिया ने उसे समझाया भी, मगर वह काहे को सुने ? उसके चले जाने के बाद कार्यकर्त्ताओं ने सोनिया को एक दान-पत्र थमा दिया और मौसी से दान दिलाने का आग्रह भी किया।

उस दिन की सभा के बाद सोनिया के मन में एक नई हलचल, एक नई उथल-पुथल मच गई। सेवा और त्याग का जो चित्र वह सदा खींचती आई वह आज भूदान-यज्ञ के रूप में मूर्त्तिमान हो उठा है। स्वराज्य के बाद अपने पिता तथा नवीन के कार्यों में वह निष्काम सेवा और त्याग का उत्स बार-बार ढूँढ़ती मगर हरबार उसे निराशा ही हाथ लगती। उनकी हर बात में, हर काम में, सेवा की हर योजना में, त्याग के हर आचार में उसे पुरस्कार की भावना, फल की इच्छा छिपी मिलती। सन् '४२ के आन्दोलन में सेवा और त्याग का जो मापदण्ड उन्होंने रखा था वह जाने कहाँ खो गया। फिर आदमी भी इतना बदल सकता है—उसे विश्वास न होता। इसीलिए सोनिया उनके जीवन में, उनके काम में अपने लिए कोई उमंग, कोई प्रेरणा नहीं पाती। उसे निराशा ने घेर रखा था, अन्धकार ने छिपा रखा था और इस ऊमस में उसका दम घुट रहा था।

मगर आज भूदानियों से साक्षात्कार होते ही उसकी दुनिया बदल गई। इस यज्ञ की योजना को अभी वह ठीक-ठीक समझ न पाई थी, मगर इसकी

भावना में उसे सत्य का आभास मिला, श्रेय का पुट मिला। यही कारण था कि स्वामीजी के प्रवचन के बाद ही वह उनकी ओर खिंच-सी गई। जो विचार उसके मन में हिलोरे ले रहे थे वे अब स्वामीजी के विचारों से तारतम्य जोड़कर स्थिर हो चले। पावस के बाद जैसे सरिता निर्मल और शान्त हो जाती है वैसे ही उसके अन्तर की सतह को आज शान्ति मिल गई। कोलाहल, कुहेलिका का नाश हो गया। जड़ता में गतिशीलता आ गई। विचार को विचारों की लड़ी मिल गई।

मौसी दीया जलाकर चौके में घुसी और इधर सोनिया चादर ओढ़कर स्वामीजी के कैम्प की ओर बढ़ चली। गाँव के बाहर भूदानियों की झोपड़ी पड़ी थी। जब वह पहुँची तो सभी कार्यकर्त्ता भोजन कर रहे थे। स्वामीजी दूध का सेवन कर बाहर तख्त पर बैठे दूर-दूर तक फैले हुए निर्जन पठार को देख रहे थे।

सोनिया को देखते ही उन्होंने कहा—"बेटी, तुम यहाँ आज कैसे आई? क्या भगतजी या नवीन बाबू आए हैं?"

"जी नहीं, आज मैं अकेली हूँ।"

"क्या मतलब?"

"राहगीर ने अपने साथियों का साथ छोड़ दिया है।"

"आखिर क्यों?"

"क्योंकि वे रास्ते से भटक गए। उन्हें छोड़कर मैं जहाँ से चली थी, वहीं वापस आ गई।"

"तो अब क्या करोगी?"

"आपकी शरण में आई हूँ। प्रकाश दें।"

"लो, तुम्हें आशीर्वाद दिया। तुम भी हमारे यज्ञ में आज से हाथ बँटाओ।"

स्वामीजी ने हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया। सोनिया को जान पड़ा कि क्षण-भर में उसकी दुनिया कहाँ से कहाँ ऊँचे उठ आई; सारी काया ही पलट गई। बेटी सोनिया आज से भूदानी सोनिया बनी।

स्वामीजी के तख्त की बगल में एक दरी बिछी थी। सोनिया उसी पर बैठ गई। स्वामीजी ने फिर छेड़ा—"सोनिया! पहली बार हमीरपुर में जब तुम्हें देखा, तभी मुझे भास गया कि तुम नवीन और भगतजी के कार्यों से बहुत असन्तुष्ट हो। सचमुच मुझे नवीन को देखकर बड़ी दया आई। उससे मुझे बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं, मगर हाय री शक्ति की जादूनज़री! आज वह पानी-पानी हो रहा है। उसके आदर्श की मीनारें चूर-चूर होकर टूट रही हैं। उसे देखकर हृदय टूक-टूक हो जाता है। वह मेरा शिष्य था सोनिया! गरीब घर का बेटा था। विधवा भाभी अभी आज भी घर पर मौजूद है, मगर उसे पूछता तक नहीं। मैं ही उसे कहीं से पैसे जुटाकर भेज देता हूँ।....सोचा था, आन्दोलन की अग्नि में तप कर वह खरा सोना-सा निकल आयेगा। मगर मेरी सारी आशाओं पर उसने पानी फेर दिया।"

इतना कहकर स्वामीजी गम्भीर हो उठे। उनकी आँखें फिर दूर-दूर तक फैले सुनसान की ओर जा लगीं।

इधर सोनिया की आँखों में अनायास आँसू छलछला आये। हाय राम! यह क्या? वह सहम गई। इस उमड़ती गंगा को पी जाने की कोशिश में उसने कसर न की, मगर स्वामीजी की नज़रों से वह दूर न भाग सकी। उन्होंने झट पूछ ही तो दिया—"आज यह आँसू क्योंकर सोनिया?"

आँसू को समेट कर मुस्कान की हल्की लकीरें चेहरे पर उगाने का प्रयास करती सोनिया ने स्वामीजी के सामने अपना हृदय उड़ेल कर धर दिया— "स्वामीजी, मैंने भी जाने-अनजाने नवीन बाबू से बड़ा आसरा लगा रखा था। आपसे पर्दा क्या, मैं तो उन्हें अपना आराध्यदेव मान चुकी थी। मेरी प्रेरणा के सारे स्रोत वही थे, मेरे आदर्श की पताका भी वही थे, पर क्या बताऊँ, मैंने तो ऐसी मुँहकी खाई कि आज आपकी शरण में न आती तो कहीं की न रहती। भूदान-यज्ञ की वेदी पर सर रोप कर आज मैं सर्वस्व पा गई। चातक को स्वाती का बूँद मिल गया। मैं तो तर गई। कल संध्या के प्रवचन में सेवा के जिस विराट् रूप का दर्शन आपने कराया वह गीता के भगवान कृष्ण के विराट् रूप से कुछ कम नहीं। इस लक्ष्य के अनुष्ठान में प्रेम का जो सागर उमड़ पड़ा है वह विश्व के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है।"

"बेटी, यह घटना ही नहीं, एक महान् प्रयोग है। हमारे आचार्य विनोबाजी कहते हैं कि भूदान आन्दोलन नहीं, आरोहण है। हमें ऊपर उठना ही होगा। महाभारत का स्वर्गारोहण-पर्व तुमने पढ़ा होगा तो याद होगा, धर्मराज युधिष्टिर के सभी संगी-साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया मगर अकेला एक श्वान अन्त तक उनके साथ लगा रहा और उस साथी के बिना वे स्वर्ग-द्वार के अन्दर घुसने को तैयार नहीं हुए। इसीलिए, सोनिया, मैं तो यह कहता हूँ कि हमारे सारे साथी साथ छोड़ भी दें और एक कुत्ता भी हमारा साथ देता है तो उसी के साथ हमें आगे बढ़ते जाना है। जब तुम भी इस आरोहण में शामिल हो गई तो कुछ इसी भावना से काम करना। हर क्षण, हर घड़ी तुम्हें अग्रसर होते जाना है।"

बातें करते काफ़ी देर हो गई थी। चारों तरफ घुप्प अँधेरा छा गया

था। सिर्फ दूर से आती हुई बैलगाड़ी की बत्ती झुक्-झुक् करती रुक-रुक कर झलक जाती थी। कुछ देर बाद वह गाड़ी स्वामीजी के कैम्प की ओर बढ़ती चली आई। गाड़ीवान एक अन्धे को गाड़ी से उतारकर उसे लाठी पकड़ाए स्वामीजी के समीप ले आया। सोनिया ने उसे झट पहिचान लिया। पूछा—"अरे, सूरदास ? तुम हो !! इस अन्धेरी रात में···"

"हाँ-हाँ, स्वामीजी से मिलने आया हूँ।"

तब तक स्वामीजी स्वयं–पूछ बैठे— "कहिए, आप क्या चाहते हैं ?"

"महाराज, मुझ अन्धे के पास सिर्फ डेढ़ कट्ठा जमीन है। आपके यज्ञ से प्रभावित हो मैं उसे भूदान में दे रहा हूँ। लीजिए यह दान-पत्र। मुझ अभागे से जितना बन पड़ा, आपके चरणों में रख दिया। इससे किसी निरीह बालक या दुखिया का उपकार हो जाय तो अपने को धन्य समझूँगा। मेरे लिए तो अपने शिव-मन्दिर का प्रसाद ही भरपूर है।"

उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। सोनिया चकित है, उसे अन्धेरे में आँखें फाड़कर देख रही है।

स्वामीजी ने उसे आशीर्वाद देते हुए बिठाया और सोनिया की ओर देखकर बोले—"देखो बेटी, यह प्रेम का प्रभाव है। यदि हमारे यज्ञ की पताका प्रेम की वेदी पर खड़ी न होती तो भला सूरदास इतनी रात गए लाठी टेकते हमारे पास आते ? धन्य हो सूरदास, तुम धन्य हो ! कौन कहता है कि तुम नयन-विहीन हो ? तुम्हारे हृदय की आँखें तो खुली हैं। जब अन्तस्तल के नेत्र खुले हैं तो फिर ये नेत्र खुले रहें या बन्द रहें—कोई परवा नहीं।"

और सूरदास गुनगुना रहा है—"नयनहीन को राह दिखा प्रभु, पग-पग ठोकर खाऊँ मैं।"

कल रात सोनिया सूरदास की बैलगाड़ी पर बैठकर स्वामीजी के यहाँ से लौट आई थी। लौटकर आते ही मौसी से उसने कहा—"मौसी, तू आज सभा से भूमि देने के भय से धीरे-से सरककर चली आई, यह तूने अच्छा न किया। स्वामीजी की प्रार्थना पर कुछ भी तो दे देना था। इतने बड़े महात्मा हैं। बड़ी सीख की बातें करते हैं।"

"हाँ-हाँ, और तू आई है मुझे सीख देने—बड़ी ज्ञानवाली! अपने बाप को ऐसी बातें सिखाना। भला बाप-दादा की जनम-भर की कमाई-सँजोई चीज मैं क्षण-भर में दान के नाम पर गँवा दूँ? सीख देने सबको आता है। हुँह, पहले चन्दा था, अब तो जमीन ही माँगने लगे! क्या खूब तमाशा है!"

"सूरदास को भी तो अपनी डेढ़ एकड़ भूमि के लिए उतनी ही ममता थी, जितनी तुझे है, फिर वह क्यों बदल गया? और तू अभी भी एक धूर देने को तैयार नहीं।"

"अरे, वह तो जनम का छुछुन्दर है। सब गँवाकर अब साधू बन बैठा है। न जोरू न जाँता। न आगे नाथ न पीछे पगहा।"

"तो तू ही कौन बड़ी बेटेवाली हो कि भूमि और धन जोड़ रखने की माया तुझे आज भी घेरे है—" ऐसा कहते हुए सोनिया को बुरा भी लगा मगर ताव में वह अपने को रोक न सकी।

"बेटा नहीं है तो किसी को गोद ले लूँगी मगर इस तरह जायदाद न गँवाऊँगी।" मौसी ने पीठ पर हाथ न रखने दिया। सोनिया थककर बिस्तर पर चली गई। मगर रात में नींद नहीं आई। स्वामीजी के प्रवचन, भूदान, त्याग और सेवा आदि की बातें विविध रूपों में उसके मन के पर्दे पर उतरती रहीं और वह उसी उलझन में उलझी करवटें बदलती रह गई।

दूसरे दिन संध्यासमय उसने मौसी से कहा—"मौसी! स्वामीजी का आज आखिरी व्याख्यान होगा। चल, तू भी सुन ले।"

पहले तो मौसी ने साफ़ इनकार कर दिया, मगर सोनिया ने ऐसी जिद पकड़ी कि उसकी एक न चली। आखिर वह जाने को तैयार तो हुई मगर गई तो कुछ न देने की ठान कर गई।

प्रार्थना के बाद स्वामीजी बड़े ही कोमल स्वर में बोले—"आज हम भूदान विषयक सन्त विनोबा के कुछ बुनियादी विचार सुन-समझ लें तो अच्छा हो। इस यज्ञ के मूलभूत विचार क्या हैं—यह जान लेना सबसे पहले आवश्यक है। आचार्य ने जो कहा है वह आप ज़रा ध्यान से सुन लें—

*'भूदान-यज्ञ की बुनियाद में एक विचार है। वह यह है कि सारे समाज को अपना सर्वस्व समर्पण करना व्यक्ति का कर्तव्य है। इसको हमारे पुराने लोग कृष्णार्पण कहते हैं। याने अपनी कुल शक्ति, संपत्ति, बुद्धि और ताकत समाज की सेवा में समर्पण या कृष्णार्पण करें और भगवान् कृष्ण की कृपा से समाज

*'भूदान-पत्रिका' से साभार।

से जो वापिस मिले, वही प्रसाद के तौर पर ग्रहण कर लें। आज सब लोग परिवारों में बँटे हुए हैं। तो परिवारों को तोड़ने की कोई जरूरत नहीं है, सिर्फ उस परिवार को व्यापक भर बनाना है। सारे गाँव को ही हम परिवार समझें, अपने परिवार की सेवा गाँव को समर्पण करें और अपनी मालकियत छोड़ दें। हम कहेंगे कि 'न मम'—यह मेरा नहीं है, यह भगवान् का है, यह समाज का है, यह सृष्टि का है। मैं उसका सेवक मात्र हूँ। चंद दिनों के लिए मैं इस दुनिया में यहाँ आया हूँ और सेवा करना ही मेरे आने का उद्देश्य है। वह सेवा समर्पण करके जब भगवान् का बुलावा आयेगा, तब चला जाऊँगा। इसको कृष्णार्पण कहते हैं। कृष्णार्पण में सब-का-सब दे देना होता है, याने मालकियत छोड़नी होती है।

यह बात भूदान-यज्ञ के मूल में है। हम मालिक नहीं हैं। मालिक परमेश्वर है। परमेश्वर की तरफ से समाज मालिक है और हम सेवक हैं, इस तरह जब मनुष्य सोचेगा, तब मनुष्य-मनुष्य के बीच का झगड़ा मिट जायगा। मनुष्य अपनी अलग-अलग मालकियत रखते हैं, इसलिए झगड़े होते हैं। सिर्फ मनुष्य ही अकेला व्यक्तिगत मालकियत रखता है, सो बात नहीं। समाज भी मालकियत रखता है। एक समाज दूसरे समाज के साथ झगड़ा करता है। देश भी अपनी मालकियत रखता है और एक देश दूसरे देश के साथ झगड़ा करता है। परंतु हमको समझना चाहिये कि कुल दुनिया में जितनी जमीन है, वह सारी-की-सारी कुल दुनिया की है और जो लोग वहाँ रहते हैं, उनकी सेवा करने मात्र का अधिकार हमें है। मालकियत का कोई अधिकार हमें प्राप्त नहीं है।

दुनिया के किसी भी देश में जो भी जमीन पड़ी है, वह सब दुनिया की

है और जहाँ जो हवा है, वह भी सब दुनिया की है। लोग यह पहचानते नहीं हैं, फलतः उसका भयंकर परिणाम हो रहा है।

हमारे देशवालों को एक बात समझ लेनी चाहिये और वह यह कि दूसरे समाज का हमको द्रोह नहीं करना चाहिये और अपने समाज में व्यक्ति से व्यक्ति का झगड़ा नहीं होना चाहिये। सब व्यक्तियों की सेवा करना समाज का काम है और समाज की सेवा करने का काम व्यक्ति का है। हर-एक व्यक्ति को जीने का जो अधिकार है, वह समाज कबूल करे और हर-एक व्यक्ति अपने जीवन का कुल कार्य समाज को समर्पण करे। दूसरे किसी समाज का द्रोह हम न करें—यह एक विचार, और एक ही समाज में व्यक्ति से व्यक्ति का विरोध नहीं होना चाहिये —यह दूसरा विचार; यह भूदान-यज्ञ का दूसरा मूलभूत विचार है।"

संत विनोबा के ही शब्दों में उनके विचार जानकर सारी जनता स्तब्ध रह गई। एक नई योजना, एक नया विचार। इसके चमत्कार का जादू सब पर समान रूप से चल गया। आज दान-पत्रों की बाढ़-सी आ गई। मौसी के दिल में भी एक नया जोश, एक नया परिवर्त्तन जाने कहाँ से उमड़-उमड़ आया। स्वामीजी की बातों को वह बड़े ध्यान से सुनती रही और उनका प्रवचन समाप्त होते ही जाने किस खिंचाव पर वह उनकी ओर बढ़ती चली गई। एक कार्यकर्त्ता ने एक दान-पत्र उसके हाथों में थमा दिया। उसने झट अपने बायें अँगूठे का निशान उस दान-पत्र पर लगा दिया और गद्गद् होकर बोली—"लिख लेना भैया, मेरी भी ज़मीन भूदान-यज्ञ को अर्पित है।"

मौसी में एकबारगी ऐसा परिवर्त्तन देखकर सोनिया सन्न है। आखिर

कौन-सा जादू-मंत्र क्षण-भर में उसपर चल गया कि जिस ज़मीन से वह इतनी चिपटी रही, उसे एक पल में दान कर बैठी ? उसे अचकचाई देखकर मौसी ने झट कहा—"बेटी, स्वामीजी की बानी में एक अद्भुत चमत्कार है, कुछ ऐसी बिजली है, कुछ ऐसा जादू है कि छूते ही दिल-दिमाग़ जाने क्या-से-क्या हो जाता है !

स्वामीजी उनकी बातों को सुन रहे थे। हँसते-हँसते बोले—"बहन, मेरे पास प्रेम, करुणा और दया की कुंजी है जो हर-एक ताली को खोल देती है। प्रेम में कुछ ऐसी ही शक्ति निहित है ·········"

स्वामी गोकुलदास की टोली आज एक पहर रात रहते प्रस्थान कर गई। गाँव के सिवान तक ग्रामीण उन्हें विदा करने भी गए। विदा लेते समय स्वामीजी ने उन्हें नारा दिया—'बिना जमीन कोई न रहेगा, कोई न रहेगा'—फिर सोनिया के कन्धे पर हाथ रखे वे अन्धेरी रात में खो गए। एक टिमटिमाती बत्ती उन्हें राह दिखा रही थी।

स्वामीजी ने सोनिया से कहा—"बेटी, इस ग्राम में मुझे दान-पत्र ही नहीं मिले—एक सोनिया भी मिली जो भूदान-यज्ञ को सफल बनाने में कुछ उठा न रखेगी।"

सोनिया गम्भीर थी। सर झुकाए निरुत्तर और निरंतर चलती गई।

आज पड़ाव पाँच मील बाद अमुआ गाँव के प्राइमरी स्कूल में पड़ा। स्वामीजी तथा उनके सेवक-सेविकाओं के स्वागत में गाँव की सारी जनता उमड़ पड़ी थी। चना और गुड़ का जलपान करके कार्यकर्त्ता गाँव में अपने उद्देश्य की पूर्ति के हेतु निकल गए। सोनिया स्वामीजी की निजी सेवा में तत्पर हो गई।

सन्ध्यासमय प्रार्थना के बाद स्वामीजी का प्रवचन शुरू हुआ—"भूदान

से हमें ग्रामदान के सोपान पर चढ़ना है। ग्रामदान एक महत्वपूर्ण कदम होगा, मगर फिर भी वह साधन ही है; साध्य है ग्राम-राज्य, यानी रामराज्य; स्वराज्य से सुराज। जमीन किसी व्यक्ति-विशेष की न होकर समूचे गाँव की हो जाय, एक की मालकियत समाज की व्यापकता पा ले। फिर सन्त विनोबा के ही शब्दों में हमें कहना है—

*"ग्रामदान होने के बाद जमीन का फिर से बँटवारा होगा और हर परिवार में कितने मनुष्य हैं, यह देखकर हर परिवार को समान रूप से जमीन दी जायगी। किसी के घर में पाँच मनुष्य हों तो उसे पाँच एकड़ जमीन दी जायगी और किसी के घर में दस मनुष्य हों तो उसे दस एकड़ जमीन दी जायगी। यह काम गाँव के लोग ही करेंगे। हमारा आदमी सिर्फ वहाँ हाजिर रहेगा और आपको मदद देगा।

इस तरह हर परिवार में जब जमीन बाँटी जायगी तब फिर आज की हालत में और उस हालत में क्या फर्क रहेगा, यह सवाल पूछा जा सकता है। फर्क यही पड़ेगा कि आज तो किसी के पास जमीन है और किसी के पास नहीं; ऐसी हालत तब नहीं रहेगी, सबको जमीन मिलेगी। दूसरा फर्क यह होगा कि आज किसी के पास बहुत ज्यादा जमीन है, किसी के पास कम है, तो किसी के पास कुछ नहीं है; ऐसी हालत तब नहीं रहेगी। हर परिवार में कितने मनुष्य हैं, यह देखकर उस हिसाब से समान रूप से जमीन बँटेगी। तीसरा फर्क यह होगा कि आज लोग जमीन बेच सकते हैं या रेहन रख सकते हैं; वे भविष्य में ग्रामदान के बाद ऐसा नहीं कर सकेंगे। इसलिए कोई भी जमीन खोयेगा नहीं।

---

*'भूदान पत्रिका' से साभार।

कुछ लोग सोचते हैं कि ग्रामदान के बाद जमीन गाँव की बन जायगी तो फिर बैलों के बदले ट्रैक्टर चलेगा। लेकिन ऐसी मूर्खता हमें नहीं करनी है। आज अलग-अलग मालकियत है तो उसका जो काम होता है वह भी हमें चाहिए। इसलिये हम हरेक को काश्त करने के लिए जमीन देते हैं। वह उससे छीनी नहीं जायगी। लेकिन आज मालकियत के कारण जो हानियाँ होती हैं वे सब नहीं होंगी, क्योंकि जमीन बेची नहीं जायगी, रेहन नहीं रखी जायगी। आज तो हर कोई पड़ोसी के बैलों से अपनी फसल की रक्षा करने के लिए रात को जागता है। हर कोई एक दूसरे का डर रखता है। लेकिन ग्रामदान के बाद मालकियत की यह मूर्खता नहीं रहेगी। सारे गाँव का एक परिवार होगा। किसी को किसी से डरने की जरूरत नहीं रहेगी। लेकिन आज एक अच्छी बात होती है कि हरेक के हाथ में खेत होता है तो वह उसमें प्राण लगाता है। ग्रामदान के बाद भी सबको अलग-अलग जमीन दी जायगी, इसलिए वह लाभ इसमें रहेगा ही।

हरेक को काश्त करने के लिए जमीन दी जायगी, वह उससे छीनी नहीं जायगी। किसी के घर में दो मनुष्य कम हुए तो वह स्वयं गाँव से कहेगा कि मेरी दो एकड़ जमीन ले लो और किसी के घर में दो मनुष्य ज्यादा हुए तो वह दो एकड़ अधिक जमीन माँगेगा और गाँववाले उसे दे देंगे। इस तरह कुल गाँव का एक परिवार है, ऐसी भावना रहेगी। सरकार भी कुल गाँव को एक ही समझेगी। हम यही चाहते हैं कि आज जो दिल अलग हुए हैं, टूटे हैं, वे जुड़ जायँ। सब लोग मिल-जुल कर काम करेंगे तो गाँव के उद्योग भी बढ़ेंगे।"

× × × ×

दीखती। तुम जैसे हृदय के तार की एक झंकार से गद्गद् होकर कलम उठा लेते हो, भाव की गहराई में डूबकर मोती निकाल लेते हो, वैसे ही मैं भी प्रेम का दीप लिए घर-घर जाता हूँ और जो मेरी लौ को अपनी लौ में मिला लेता है वह इस यज्ञ की महिमा को पहचान लेता है। जैसे तुम्हें सहृदय पाठक की जरूरत है वैसे ही मुझे भी सहृदय साधक की आवश्यकता है। विधवा की सूनी माँग में, बेबस माँ की छाती में, अनाथ बालकों के मुखड़े में तथा टूटे हुए हृदय के कोने में तुम जिस वेदना, जिस रहस्य की खोज करते हो; वही वेदना, वही रहस्य तुम्हें मेरी पदयात्रा में भी मिलेगा। जिन्दगी का जो तरंग तुम्हारे हृदय में उठता रहता है उसे तुम अपनी आँखों से मेरी हर सन्ध्या-सभा में देख सकते हो। फिर जिन्दगी की इस लहर से तथा वेदना के इस प्रखर सन्ताप से तुम्हारे हृदय से झरणी नहीं फूट पड़ती तो यह कमी मेरी ही होगी, कुछ तुम्हारी नहीं। भूदान की वेदी पर साहित्यकार और भूदानी कार्यकर्त्ता का एक ही स्वरूप है।

देखो, धरती को माता के पद से वंचित कर मेरी-तेरी और ले-दे की गंदी गली में घसीट कर तथा धन को समाज का धन न मानकर निजी स्वार्थ का एक मुख्य साधन बनाकर पृथ्वी-पुत्रों ने जो विषमता फैला रखी है, जो घृणा की आग जगा दी है वही आज विश्व के तमाम झगड़ों का मूल है तथा तमाम समस्याओं की जड़। तुम साहित्यकार हो, यानी द्रष्टा ही नहीं, स्रष्टा भी हो, इस विषमता को दूर करने में यदि तुमने हाथ नहीं बँटाया तो तुम्हारा साहित्य भी पूर्ण न हो सकेगा। साहित्य से जीवन कहीं ऊँचा है, फिर मानव-जीवन के स्तर को उठाने में यदि तुमने योगदान न दिया तो तुम्हारा साहित्य अधूरा ही रह जायेगा। इसीलिए मैं तुमसे बुद्धिदान, वाणीदान, हृदयदान की

अपेक्षा करता हूँ। मैंने तुमको कोई नई बात नहीं बताई। सिर्फ तुम्हारी महिमा का गान किया। क्या तुम्हारा हृदय पिघला नहीं साहित्यकार?"

स्वामीजी उन्हें बड़ी कौतूहल-भरी दृष्टि से देखने लगे। शेखरजी ने गम्भीर होकर कहा—"आज सन्ध्या-सभा में उपस्थित भूमिहीनों की सूरत पर मैंने एक नई आभा, एक नई विभा देखी। मुझे उपन्यास के लिए एक नया प्लॉट मिल रहा है यहाँ। आज जिन्दगी ने नई करवट ली है और आप सत्य मानें, मैं भी उस तरंग को साकार कर दूँ तो अपने को धन्य-धन्य मानूँ। इस विश्व-कल्याण-योजना में जो सहयोग न देगा, जो योगदान न देगा वह मानव कहलाने के हक से अपने को वंचित कर लेगा। आपकी आनन्द-यात्रा का मैं भी आज से एक पथिक बनूँगा। योगिराज, आप धन्य हैं, धन्य हैं।"

और, शेखरजी आज के आये फिर वापस न हुए।

स्वामीजी की टोली आगे बढ़ी और बढ़ती ही चली गई कि एक दिन हमीरपुर भी आ गया।

स्वामी गोकुलदास के पधारने के कई-एक दिन पहले ही भूदानी- कार्यकर्त्ता हमीरपुर पहुँच चुके थे। गाँव में खलबली मच गई थी। भूमिहीनों की टोली में नव जागरण का संदेश फैल गया था। दीवानबहादुर को नींद हराम थी—यह नई बला कहाँ से सर पर आई? जमींदारी तो गई ही, अब जमीन पर भी आफत! उधर नवीन, निजाम, मँगरू तथा भगत जैसे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता भी बेचैन हैं। आखिर यह नई बिजली कहाँ से आ गिरी!

नवीन ने कार्यकर्त्ताओं की एक सभा जनकार्य-विभाग के डाकबंगले में बुलाई और कहा—"साहब, सालाना चुनाव की कनवासिंग को छोड़कर अब गाँव-गाँव जमीन माँगते चलिए। भला यह भी कोई प्रोग्राम है? वोट भी गड़बड़ा जायगा। सन्त विनोबा के दिमाग़ में भी अजब फितूर समा गया है। जमीन का सवाल आज उठाने से फायदा? अजीब खोपड़ी है। एक नया

झमेला सर पर आ गिरा। अपना काम तो पूरा होता नहीं—ऊपर से यह नया प्रोग्राम पहुँच गया। कहो भाई, क्या राय है ?"

भगत ने कुछ सोच-विचार कर कहा—"मुझे तो इस प्रोग्राम में कोई तथ्य नहीं मिलता। खैर, हमें करना ही क्या है ? चलो, दो-चार गाँवों में घूम आएँ—जो मिल जाये। आखिर, एक स्वांग तो रचना ही पड़ेगा वरना हम स्वार्थी कहकर पुकारे जायेंगे। चलो, जैसे छप्पन-वैसे घप्पन !"

मँगरू ने राय दी—"भई, घूमने से कुछ न होगा, कुछ मुल्ले फँसाने होंगे। ऐसा किया जाय कि कुछ बड़े लोगों को मिला-जुलाकर कुछ दान-पत्र सही करा लिए जायँ। ख़राब ही जमीन सही, गिनाने को कुछ हो तो जाएगा, नहीं तो बड़ी शिकायत होगी। सन्त विनोबा को आप मामूली सन्त न समझें।"

मँगरू की राय की हर एक ने दाद दी। फिर स्वांग रचने की तैयारी शुरू हो गई।

इधर कार्यकर्त्ताओं की सभा हो रही थी, उधर दीवानबहादुर का दरबार भी गर्म था। डेविड ने सर खुजलाते हुए कहा—"यह भी खूब रहा ! जमींदारी तो छीन ही ली, अब जमीन पर भी यारों की नजर आ गड़ी। क्या किया जाय डैडी ?"

"दिमाग खराब हो रहा है डेविड, कुछ समझ में नहीं आता।"

"समझ में क्यों नहीं आता ? वाह, खूब ! अजी साहब, भगत को दान-पत्र लौटा दें और साफ-साफ कह दें कि यह मेरे मान का नहीं। जमींदारी तो चली ही गई, अब क्या हमें भिखमंगा बनाकर छोड़ेंगे वे—टेरीबुल !" —मंजुला का चेहरा तमतमा गया, आँखें लाल हो आईं।

दीवानबहादुर चुप हैं। माथे पर हाथ दिये ज्यों-के-त्यों बैठे-के-बैठे हैं,

कुछ सूझता नहीं। उन्हें चुप देखकर मंजुला ने फिर छेड़ा—"आप भी क्या सोच रहे हैं पापा जी? मैं अभी नवीन बाबू को बुलाकर कहे देती हूँ कि आखिर जमीन माँगने के लिए ही आप हमसे इतनी दोस्ती गाँठते रहे और जब जरूरत पड़ी हमसे रुपये की सहायता लेते रहे? आखिर कौन दाढ़ीजरा है जो हमारे चन्दे पर न पला?"

दीवानबहादुर ने सिगार का धुँआ उड़ाते हुए कहा—"नादान न बनो बेटी! इस चुनाव में नवीन की जीत रखी है। उसके बाद हमें कौंसिल के लिए खड़ा होना है। नवीन को नाराज़ कर देना ठीक न होगा।"

"पापा जी! इसी डर के चलते तो आप घर लुटा रहे हैं। यह बर्बादी मुझे पसंद नहीं।"

"तुम बेवकूफ हो, बेवकूफ! अजी, दीवानबहादुर कोई जंगल का टट्टू नहीं। सब खेल जानता है। ठहरो, माँगपुर वाली जमीन लिखे देता हूँ। २०० एकड़ बंजर भूमि और साथ-ही-साथ झगड़े की भी जमीन। जाएँ ये भूदानी अपनी टाइटिल कोर्ट से ठीक कराएँ। मैं तो उन्हें लिखे देता हूँ। उस जमीन के लिए लड़नेवाले किसानों का माथा ठंढा हो जायेगा। बारह साल से दखल करना चाहता था मगर आजतक झमेला लगा ही रहा। अब वे भी समझेंगे कि किसी काला जमींदार से पाला पड़ा था!"

दीवानबहादुर बड़े जोर से हँस पड़े। फिर तो ऐसा जान पड़ा कि सारा हॉल टूट पड़ेगा। मंजुला और डेविड डर-से गये। अपने पापा की ऐसी हँसी से वे आजतक अनभिज्ञ थे।

स्वामी गोकुलदास की टोली हमीरपुर पहुँच चली है। गाँव के सिवान पर लोग चार बजे भोर से ही जुटने लगे हैं। स्वागत के लिए सबसे आगे नवीन है, उसके बाद माला लिए दीवानबहादुर तथा मंजुला हैं। उनके पीछे अपार जनसमूह।

स्वामी गोकुलदास सोनिया के कन्धे पर हाथ रखे आते हुए दूर से ही दिखाई पड़े। सब उसी ओर दौड़ पड़े।

नवीन ने जब स्वामी के रूप में प्रोफेसर गोकुलदास को तथा उनकी प्रमुख सेविका के रूप में सोनिया को देखा तो सन्न हो गया। उसके जी में एकाएक तरंग उठा कि कहीं भाग जाये, मगर यह एक भावधारा थी, ऐसा होना मुश्किल था। जब वे पास आ गये तो झुककर उसने प्रोफेसर साहब के चरण छुए। स्वामीजी ने हँसते हुए कहा—"कहो भई नवीन! अच्छे तो हो?"

नवीन हँसकर रह गया। सोनिया ने उसे कनखी से देखकर मुस्कुरा दिया। फिर तो स्वामीजी के गले में मालाओं का जाल बिछ गया। सोनिया एक-एक कर उतारती जाती और लोग लगातार पहनाते जाते। फूलों की वर्षा से जमीन-आसमान पट-सा गया।

फिर जब भगत सामने आये तो सोनिया ने उनके चरण छुए। उनकी आँखों में आँसू छलक आये। पुत्री के त्याग और तपस्या के इस ज्वलंत उदाहरण को देखकर कौन पिता पिघल न पड़ता? आदर-सत्कार के बाद स्वामी गोकुलदास गाँव की प्राइमरी पाठशाला में टिकाए गए और सेविकाएँ सारे प्रबन्ध के निरीक्षण में लग गईं।

आज के प्रोग्राम में ठीक नौ बजे स्वामीजी को डॉ० सतीशचन्द्र तथा सीता देवी से मिलना था। प्रोग्राम के मुताबिक डॉ० सतीश और सीता देवी स्वामीजी के कैम्प में पधारे। उन्हें देखते ही स्वामीजी ने हँसते हुए कहा—"कहो भई डॉक्टर, कैसे हो? तुमसे तो मिले एक युग बीत गया। प्रसन्न तो हो?"

"जिन्दा हूँ प्रोफेसर साहब! आज आपको देखते ही बीते दिन याद आ गये। प्रसन्न मैं क्या खाक रहूँगा? प्रसन्नता तो आपकी सौम्यमूर्ति में झलक रही है।"

"वाह, विज्ञान के इस युग में भला वैज्ञानिक अप्रसन्न रहे? यह कैसी विडम्बना!"

"यही विडम्बना तो मुझे भी समझ में नहीं आती। हम अप्रसन्न हैं क्योंकि हमारी चल नहीं पाती। हमारी चोटी राजनैतिकों की लट तले दबी है। वरना संसार में इतनी खूनखराबी नहीं होती। हम तो आज जैसे दूसरों

के हाथ के हथकंडे हैं। हमारा अपना कोई अस्तित्व नहीं, कोई व्यक्तित्व नहीं।

मैं भी तो आजकल राजनीतिज्ञों की इसी मनोवृत्ति का शिकार हूँ। सीता मेरी अभिन्न मित्रों में से है। या यों कहिये कि वह एक प्रश्न है और मैं उसका उत्तर हूँ।...खैर, जाने दीजिए इन बातों को। हाँ, तो इस इलाके में पिछले पाँच साल से नवीन तथा उसके मित्रों एवं पिठ्ठुओं ने कुछ ऐसी तूफान-बदतमीजी मचा रखी है कि यहाँ की सारी जनता ऊब गई है। और, इस परिस्थिति का नाजायज फायदा कम्यूनिस्ट उठाना चाहते हैं। उन्होंने सीता को यहाँ लाकर नवीन के खिलाफ अगले चुनाव के लिए खड़ा कर दिया है। फिर नवीन बाबू मुझपर नाराज़ हो गए। भला इसमें मेरी खता क्या? मगर उन्होंने मेरी एक न सुनी और मेरी सरकारी अनुसंधानशाला की नौकरी भी आज छूटने पर लगी है। यहाँ तो जिसकी लाठी उसकी भैंस। मेरा कद्रदाँ आज कोई भी नहीं। मेरी सारी मिहनत, सारा अनुसंधान भूसा हो गया। क्या कहूँ प्रोफेसर साहब! यहाँ तो सभी पद के मद में मदहोश एक दूसरे को देखकर झाँव-झाँव करते रहते हैं।"

स्वामी गोकुलदास कुछ देर तक गम्भीर मुद्रा में रहे। फिर धीमे स्वर में उन्होंने कहना शुरू किया—"तुम आज शोषित हुए और वह भी नवीन के हाथों—यह सुनकर बड़ा दुख हुआ। आखिर नवीन ने ऐसा क्यों किया? राजनीति में नैतिक चेतना चाहिए। गाँधीजी ने हमें बराबर यही सिखाया है। फिर एक चोर का भी अपना एक नैतिक स्तर होता है। डाक्टर, युद्ध और शोषण मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है। जबतक मस्तिष्क और हृदय में परिवर्त्तन नहीं होगा तबतक न युद्ध बन्द होगा और न शोषण। भूदान-

आन्दोलन का लक्ष्य है मनुष्य के हृदय तथा मस्तिष्क में परिवर्त्तन लाकर प्रेम का बीज बोना जो शोषण को मिटाकर विश्व में शान्ति कायम करने में सहायक सिद्ध होगा। भूदान तो कभी भी विज्ञान का विरोधी नहीं है बल्कि यों कहो कि वह तो स्वयं एक विज्ञान है। विज्ञान का विकास तो बुद्धि के विकास का सूचक है। मगर हम कदापि नहीं चाहते कि बुद्धि हिंसात्मक हो अथवा विज्ञान हिंसात्मक कार्यों में लाया जाये। यदि संसार के राजनैतिक, वैज्ञानिकों को शान्ति के पैगम्बर मानकर उनके आविष्कारों का शान्तिमय जीवन के लिए उपयोग करें तो संसार से युद्ध की लम्बी परम्परा ही मिट जाये। आज तो विज्ञान इस नरमेध-यज्ञ में आहुति का काम कर रहा है। इधर आपके बिरादरियों ने अमेरिका तथा यूरोप में अणुबम और हाइड्रोजन बम का निर्माण कर विध्वंस की जो कलाबाजी दिखायी हो मगर उससे मानवता आगे नहीं बढ़ी है। समझौते तो आए दिन होते रहते हैं, मगर वे भी पैंतरेबाजी की निशानी हैं। मस्तिष्क और हृदय में तो युद्ध और शोषण के बीज छिपे पड़े हैं। मेलजोल की बात भी एक-दूसरे को भुलाकर मारने की ही बदनीयती छिपाये रहती है।

स्वार्थ आज हमारे जीवन का ध्रुव तारा बन गया है। आदमी का स्वार्थ, समाज का स्वार्थ, कौम का स्वार्थ और राष्ट्र का स्वार्थ। फिर दो राष्ट्रों के निरन्तर संघर्ष के चलते अणुबम का विस्फोट हो जाय तो आश्चर्य ही क्या! इस स्वार्थ के मूल में संग्रह की भावना है—पूँजीवादी व्यवस्था का विकसित विकराल रूप। लोभ और मोह पर जबतक जातियाँ विजय न पायेंगी या संग्रह की भावना से ममत्व कम न होगा तबतक न अन्याय मिटेगा, न शोषण रुकेगा, न विषमता जायेगी और न अणुबम और हाइड्रोजन बम

का विस्फोट ही बन्द होगा। भूदान मानव की इसी कमजोरी पर प्रहार करता है। यह महत् सम्भावनाओं से भरा एक ज्योतिपुंज है जो धीरे-धीरे प्रकाश बिखेर रहा है। इस पुंज से ग्रामदान, श्रमदान, बुद्धिदान, प्रेमदान, सम्पत्तिदान तथा मनुष्यदान की किरणें फूट रही हैं।

सर्वोदय की इस योजना में मैं कवि और कलाकार, वैज्ञानिक और राजनेता—सभी का योगदान चाहता हूँ। कवि से कहता हूँ कि तुम्हें इस यज्ञ में अपनी कविता के लिए नित नई-नई प्रेरणाएँ मिलेंगी। कलाकार से कहता हूँ कि तुम रंगसाज हो, अपनी तूलिका-पट पर इस नए रंग को भी घोलो तो सही। वैज्ञानिकों से कहता हूँ कि इस यज्ञ में योगदान दो, तुम्हारे आविष्कारों को हम नई दिशा देना चाहते हैं। और, राजनेताओं से अपील करता हूँ कि तुम्हारा ताज काँटों की सेज पर रखा है, उसे, ऐ भले जीव, कोमल सुमन की पंखुड़ियों पर हमें रखने दो। इस पारस को छूकर देखो तो जरा, घृणा प्रेम में पलट जायेगी, कठोरता करुणा की धारा बन जायेगी, स्वार्थ परमार्थ की भावना में परिणत हो जायेगा और कटुता मित्रता का रूप ले लेगी।"

इतना कहकर स्वामीजी सीता की ओर मुड़े। बोले—"सीता की कहानी मुझे मालूम है। शायद नवीन ने मुझे कह सुनाया था। आन्दोलन के समय अपनी जान की बाजी लगाकर तुमने जो जनता की सहायता की थी वह प्रशंसनीय है। आज तो तुम कम्यूनिस्ट हो गई हो। यह भी अच्छा ही है 'जाकी रही भावना जैसी।' जहाँ तक जन-सेवा का सवाल है, तुम भी मेरे साथ हो—मैं ऐसा मानता हूँ; मगर तुम्हारे रास्ते और मेरे रास्ते में बहुत भिन्नता है। तुम्हारे लोग हिंसा को अपने कार्यक्रम में मुख्य स्थान देते हैं और अपनी प्रेरणा हजारों मील दूर की मिट्टी से लेते हैं, मगर मैं तो इसी मिट्टी से पैदा हुआ हूँ,

इसी मिट्टी पर पला हूँ और एक दिन इसी मिट्टी की गोद में सो जाने वाला हूँ। इसलिए मैं इसी मिट्टी से प्रेरणा लेता हूँ और अहिंसा को अपना अस्त्र मानता हूँ।"

इतना कहकर स्वामीजी चुप हो गये। सामने सोनिया घड़ी लिए खड़ी थी। कैम्प के सभी कार्यकर्त्ताओं के खाने का समय हो गया था।

भोजन के उपरान्त भगतजी ने सोनिया को बुलाकर बड़े दुलार से कहा—"बेटी, अब भी तो घर चलो। तुम्हारे बिना मेरा घर सूना हो गया है। वह बड़ा है मगर हरा नहीं, भरा नहीं।"

"बाबा, मेरा रास्ता अब बदल चुका है। मैं अब सेवा-व्रत ले चुकी हूँ। मेरे लिए अब आंगन और प्रांगन—भवन और भुवन में कोई फर्क नहीं। मेरी जिन्दगी अब एक नये साँचे में ढल चुकी है। फिर तुम्हारे नए मकान में जाने की मुझमें हिम्मत नहीं। शहादत की पुरानी झोपड़ी तो अब जलकर खाक़ हो गई है। आज जो इमारत तुमने बनाई है वह तो महज़ 'पाप' का घर है। वहाँ ठहराकर मेरा धर्म न बिगाड़ो। स्वामीजी के आश्रम की कुटिया ही अब मुझे ज्यादा प्रिय है।"

भगत ने बेटी को घर चलने के लिए लाख समझाया-बुझाया, मगर वह टस से मस न हुई। जब वे अपना रुआँसा मुँह लिए चले गये तो नवीन ने आकर बड़ी आत्मीयता जताते हुए कहा—"मेरी सोनिया, तुम्हें खोकर मैंने सब-कुछ खो दिया। अब एक बार फिर यदि तुम मेरे जीवन में प्रवेश न करोगी तो सच मानो, मैं मिट जाऊँगा। अब मेरे प्राणों का पौधा तुम्हारा ही प्रेम-पीयूष पाकर फिर से पनप सकता है। क्या तुम अपने नवीन पर दया न करोगी? आज वह तुमसे अपने जीवन की भीख माँगने आया है।"

सोनिया ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"मुझे आपकी अटपटी वाणी समझ में नहीं आती। 'साफ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं!' जरा कहिये भी तो, मामला क्या है?"

"मैं चुनाव में फिर खड़ा हुआ हूँ सोनिया! यहाँ की हवा बड़ी बिगड़ी हुई है। हालत नाज़ुक है। अब इसको सम्हालने की शक्ति तुम्हारे ही सबल हाथों में है। बस, अपने महिला-समाज का एक बार फिर संगठन करके गाँव-गाँव में घूमकर मेरे लिये वोट माँग दो—वरना मैं तो गया। आज लाज तुम्हारे हाथ में है।" और वह मुजरिम की तरह अपने न्यायाधीश से फैसला सुनने को घबड़ा उठा।

"नवीन बाबू! एक भूदानी कभी भी राजनैतिक झगड़ों में अथवा चुनाव-चक्कर में नहीं पड़ता। जब समय था, हम दोनों एक साथ थे, आपने ध्यान दिया नहीं, अब तो हमारे क्षेत्र ही अलग-अलग हो गए। कहाँ आप राजनैतिक योद्धा और कहाँ मैं भूदानी सेविका—मेरा और आपका साथ कैसा? आपको वोट चाहिए, मुझे प्रेम चाहिए। आपको दल की सत्ता

चाहिए, मुझे दिल की महत्ता। आप ठहरे व्योमविहारी और हम सूखी धरती के बासी! आपके लिए राजनीति एक लहर है, हमारे लिये आत्म-विकास का रास्ता। आपको पद चाहिए, तिकड़म चाहिए और मुझे सच्चाई चाहिए, सेवा चाहिए। आज तो हम दोनों की सारी संभावनाएँ, सारी वेदनाएँ और सारी समवेदनाएँ अलग-अलग हैं। फिर भला मैं आपको कैसे क्या सहयोग दे सकूँगी?"

सोनिया अपनी बेबसी जाहिर कर चुप हो गई। नवीन आरजू-मिन्नत करता थककर बैठ रहा।

सोनिया से हारकर नवीन स्वामीजी की कुटिया में गया। स्वामीजी शान्तिपूर्वक बैठे थे। उनके चेहरे पर शान्ति और सौम्यता खेल रही थी। तेज से ललाट चमक रहा था।

नवीन को देखते ही उन्होंने चट कहा—"मैं तुम्हारा ही इन्तजार देख रहा था नवीन! आओ, पास बैठो। तुमने मेरे चरण छुए, मगर मैं आशीर्वाद क्या दूँ! मेरा मन तुम्हारा हाल सुनकर बड़ा दुखी है। आखिर तुम किस ऊँचाई पर थे और आज कहाँ आ गिरे? मुझे तुमसे कभी भी ऐसी उम्मीद न थी।"

"आप भूलते हैं प्रोफेसर साहब! स्वराज्य के पहले और स्वराज्य के बाद की राजनीति में बहुत अन्तर हो आया है। कल के दिन न आज-से रहे और न आज के दिन आनेवाले कल-जैसे रहेंगे।"

"यही तो तुम्हारी उलटी सूझ है। भाई, परिस्थिति जो बदले मगर सत्य कभी नहीं बदलता। जिस लक्ष्य को सामने रखकर हमने आजादी का संग्राम जीता यदि उसकी रक्षा आजादी के बाद न हुई, यदि उस मंजिल पर हम

स्वतंत्र हो पहुँच न सके तो मैं तो यही मानूँगा कि हम संग्राम हार ही गये। आजाद होते ही सेवा की भावना तुम्हारे मन से जाने कहाँ भाग निकली और आज तुम्हें पद चाहिए, त्याग का पुरस्कार चाहिए और सेवा के बदले नाम चाहिए। यह कैसी विडम्बना ! जरा सोचो तो सही—तुम किधर बहे जा रहे हो ?

तुम नेता हो—तुम जो रास्ता दिखाओगे, उसीपर जनता चलेगी। तुमने सत्य और अहिंसा का अलख जगाया, जनता ने उसी का झण्डा उड़ाया। आज सुना है, इस इलाके में चुनाव के चलते तुमने जातीयता की आग भड़का दी है, इसीलिए तो आज उसीकी लहर है। तुम और भगत, दोनों ने सीट के लिए कोशिश की और जब तुम्हें सीट मिल गई तो भगत भीतर-ही-भीतर तुम्हें हराने की साजिश कर रहा है; इधर तुम भी जब किसी ओर से सहायता की उमीद नहीं पा रहे हो तो अब जातिवाद का नारा लगा कर वोट बटोरना चाहते हो। यह भी सुनने में आया है कि कहीं-कहीं तुम पुलिस की भी मदद ले रहे हो। धन्य हो नवीन, तुम धन्य हो ! क्या इसी आदर्श के प्रचार के लिए हमने सत्याग्रह की लड़ाई लड़ी थी ? क्या इन्हीं विचारों के प्रसार के लिए देश ने इतनी कुर्बानी की थी ? यदि आजादी के बाद यही सब होना था जो आज इस अभागे मुल्क में हर तरफ़ हो रहा है तो भई, उस परतन्त्रता में ही ज्यादा आनन्द था, इस स्वतन्त्रता में नहीं। आज तो हम कहीं के न रहे। दलों में बँटकर हम दलदल में आ फँसे हैं। मुझे तो लगता है कि आज यदि तुम भागना भी चाहोगे तो इस दलदल से निकल न पाओगे। यह पॉलिटिक्स है या कफस—यह तो तुम जानो, मगर मेरा तो यही ख्याल है कि जबतक तुम दलबन्दी से ऊपर उठकर दिल

की दुनिया में नहीं पहुँचते हो, पद की लिप्सा को ठुकरा कर फिर से निःस्वार्थ सेवा का बाना नहीं पहनते हो, बेईमानी को ताक पर रखकर ईमानदारी को नहीं अपनाते हो तबतक इस देश का कल्याण कभी होने का नहीं। आज हमारा देश अपने राजनैतिक लीडरों से बस, एक ही याचना करता है—'ईमान सम्हालो !'

"आखिर इन तीन अक्षरों में क्या रखा है—एम० एल० ए०। जो जहाँ है वह वहीं से इन तीन अक्षरों की माला जप रहा है। एक अजीब जादू का कुआँ है यह, जिसमें अपनी ही परिछाई देख बेधड़क कूद रहे हैं सब-के-सब ! इस खन्दक से, इस चहारदीवारी से निकल भागो नवीन ! बाहर सेवा का क्षेत्र बड़ा विशाल है—बड़ा विराट्। पद की मर्यादा सच्ची सेवा और त्याग की देहली पर आकर माथा टेक देती है। उठो, आकाश में अभी भी लाली है।"

प्रोफेसर साहब कहते-कहते मुस्कुराने लगे, मगर नवीन सर नीचा किये चुप है। शायद इन बातों में अब उसे दिलचस्पी नहीं। उसकी नजरों के सामने तैर रहे हैं सजे-सजाये सपने—हाथ जोड़े जी-हुजूरों की कतार, लाखों-लाख करतालियों की आवाज, पैरवीकारों का हुजूम, हुकूमत का रोब और मंजुला के कोमल करों में इतराता हुआ जूही का गजरा। फिर इस बार चुनाव में जीत गया तो मंत्री का पद तो उसके पैरों पर अनायास ही आकर लोट पड़ेगा।

"तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया नवीन !"—स्वामीजी ने फिर टोका।

"स्वामीजी, ये बातें फिर कभी होंगी, प्रार्थना-सभा का समय टला जा रहा है। वहीं चला जाय, बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई है।"

"नवीन ! देखो, तुम फिर कतरा गये ! अच्छा, चलो, तुम्हारी जैसी मर्जी !"

और, वह ठहाका मार कर हँस पड़े—कुछ इस जोर से कि नवीन भय-भीत हो सिहर उठा।

उपसंहार

नवीन किधर जा रहा है—उसे खुद पता नहीं। मंजिल और राह दोनों हर पग पर एक-दूसरे से दूर सरकती चली जा रही हैं। अपने नए रास्ते पर वह तेज़ी से दौड़ता है, बेतहाशा दौड़ता है, मगर जितनी तेजी से वह मंजिल की ओर बढ़ता है, उतनी ही तेज़ी से मंजिल उससे दूर भागती जाती है। इस दौड़-पकड़ के खेल में वह जिन्दगी की बाज़ी, देश की बाज़ी हारता चला जा रहा है। पर, अपनी तृष्णा के तैश से उसे मुहलत ही कब है जो वह सर खपाये कि कहाँ क्या पाया और कहाँ क्या खोया! नशे का शरूर जब उतरता है तभी शराबी जान पाता है कि वह पत्नी के तन का आभूषण भी पी चुका है; यह बात और है कि जब आँखें खुलती हैं, उस समय तो सब ओर घुप्प अन्धेरा ही अन्धेरा रह जाता है।

हाँ, भरी रोशनी में जो अन्धेरे को पहिचाने, वही जीने का जौहर जानता है। सोनिया ने इस जौहर को जान लिया था। भूदान-यज्ञ में उसे सेवा का एक विशाल क्षेत्र मिला और साथ-ही-साथ अपने स्वार्थ को ताक पर रखकर अपने को तपा देने का एक रास्ता भी। स्वामी गोकुलदास के चरणों का आश्रय पाकर वह जान गई कि दान और न्यास भूदान-यज्ञ के दो बिन्दु हैं। दान में किसी पर उपकार करने की भावना रखना उचित नहीं। दान तो हम समाज का ऋण चुकाने के लिए देते हैं। समाज से हम सब-कुछ पाते हैं। समाज का ऋण हमारे खाते बढ़ता जाता है और जैसे-जैसे हम संग्रह करते जाते हैं वैसे-वैसे उससे निवृत्त होने की योजना हम बनाते हैं जिसे

दान कहते हैं। जैसे भोगना सतत चलता रहता है, दिन-प्रतिदिन होता रहता है, उसी तरह दान की क्रिया भी अखंड होनी चाहिए। फिर भोग से जो मलिनता आती है उसे दान से धो देना आवश्यक है नहीं तो जीवन में कलुषता आ जाएगी।

न्यास में संग्रह का यानी मालकियत का पूर्ण विसर्जन है। जो मिला उसे परित्याग कर नारायण-शरण हो जाना। सर्वोदय-जीवन का यह अन्तिम विन्दु है। परन्तु आज लोग संन्यास का गलत अर्थ समझ बैठे हैं। आज संन्यासी संसार और समाज से दूर भागकर केवल भिक्षा माँगने समाज में जाता है। वह समाज की सेवा न कर उससे ही अपनी सेवा कराता है। यह कैसी विडम्बना! वास्तव में संन्यास का अर्थ ही है पूर्ण अभय तथा समाजमय हो जाना। अहंकार, आसक्ति तथा स्वार्थ को तजकर सेवामय बन जाना। इसी का नाम है नारायणपरायण जीवन और यह सब तपस्याओं में श्रेष्ठ है।

"न्यास इति ब्रह्मा ब्रह्मा हि परः परो ब्रह्मा तानि वा एतान्यवराणि तपांसि न्यास एवात्यरं च यत् य एवं वेदेत्युपनिषद्।"*

× × × × × ×

"तस्मान्न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः।"†

आज सोनिया का जीवन उपनिषदों में गाये गए न्यास की महिमा पर अवलम्बित है। वह नारायणाश्रित होकर पूर्ण समाजमयी तथा सेवामयी हो गई है। उसके अहंकार और स्वार्थ तो कबके मिट गए और वह एक की न होकर अनेक की हो गई है। सर्वोदयजीवन की साधना की यही अन्तिम कड़ी है।

---

*न्यास (त्याग) ही ब्रह्म है। ब्रह्म सबसे परे है, अतः यह न्यास भी सारी तपस्याओं से परे (महान्) है। सारी तपस्यायें न्यास से अवर अर्थात् निम्न हैं। न्यास सबसे बड़ा है। जो इसको समझता है, वही ब्रह्म के उपनिषद् अर्थात् समीप है।

† सबसे श्रेष्ठ तत्त्व न्यास है। (महानारायणोपनिषद्)